HARIVANSH KATHA

(An Abridged Hindi Edition)

by

Miadayal Jain

Price Rs 7 50

Copy right 1970.

प्रकाशक : अहिंसा मंदिर प्रकाशन,
१, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली—६
(दूरभाष . २७३५३७)

संस्करण : प्रथम १९७०

मुद्रक · उद्योगशाला प्रेस, हरिजन सेवक संघ,
किंग्सवे कैम्प, दिल्ली—९

मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

आद्यमिताक्षर

'हरिवंशकेतुरनवद्य विनयदमतीर्थ नायक' ।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुंजरोऽजरः ॥'
—बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, अरिष्टनेमिजिनस्तोत्र, १२२

भारतीय वशो का इतिहास उस वट बीज के समान है, जो विशाल वृक्ष का रूप धारण कर क्रमश अपनी शाखा-उपशाखाओ से भू-मडल के विस्तृत क्षेत्र को व्याप्त कर लेता है और कालान्तर मे जिसकी सन्तान परम्परा की गणना अशक्य हो, सर्वथा अनुमान मात्र का विषय रह जाती है। ऐसी स्थिति मे इस युग मे कर्मभूमि के प्रारम्भ से अब तक कितने वशो का उदय और कितनो का अस्त हुआ, यह जानना सर्वथा दुरूह कार्य है।

साधारणतया माना जाता है कि युग के आदि मे कुलकर (मनु) नाभिराज से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का उदय हुआ और इनके नाम से 'पुरुवश' की उत्पत्ति हुई। पुरु का अर्थ होता है 'आदि' या प्रथम। राजा श्रेयाश ने इक्षुरस का दान दिया अथवा 'इक्षु' की विधि बतलायी, इस हेतु वश का नाम 'इक्ष्वाकु वश' पड़ा। इस प्रकार कभी प्रमुख के नाम से तो कभी प्रमुख के कार्य से वशो के नामकरण होते रहे। सूर्यवश, वानरवश, हरिवश और यदुवश आदि सभी का इतिहास ऐसा ही रहा है।

हरिवश-कथा हमारे सामने है। इस वश के इतिहास का प्रारम्भ दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ के युग से प्रारम्भ होता है। वश के नामकरण मे तत्कालीन राजा 'हरि' प्रमुख कारण हैं। कालान्तर मे बहुत से राजा-महाराजा और तीर्थंकर आदि अनेको लोकोत्तर महापुरुषो ने इस वश मे जन्म लिया। तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ इसी वश के अवतस थे। मूल रूप मे बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भी इसी वश के थे, जो कालान्तर मे यदुवशी नाम से प्रसिद्ध हुए।

वशो के इतिहास-ज्ञान से हमारी प्राचीन सस्कृति और सभ्यता के सरक्षण और वर्धन को पूरा-पूरा बल मिलता है। हमे अपनी प्राचीन सुपरम्पराओ का ज्ञान होता है और हम अपने कर्तव्यमार्ग पर दृढ रह सकते है।

हरिवश के इतिहास-ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा मे लेखक श्रीयुत माईदयाल जैन का साहसिक प्रयत्न है। वे सिद्धहस्त लेखक हैं। यद्यपि वस्तु-स्वरूप अगम्य और छद्मस्थज्ञान के अगोचर है। उसका निरन्तर मनन-चिन्तन करने पर भी नवीन-नवीन बाते सामने आती रहती हैं। ऐसी स्थिति मे किसी निश्चित कथन का दावा करना सर्वथा असम्भव है। तथापि हमे इतना विश्वास होता है कि लेखक ने ग्रन्थ-गुन्थन में पर्याप्त छानबीन और परिश्रम किया है।

नि सदेह प्रकाशक धर्मानुरागी लाला राजकृष्ण जी जैन की रुचि धर्म-प्रभावना और सन्मार्ग मे विशेष है। उन्होने पहिले भी अनेको सास्कृतिक और सामाजिक कार्य किये हैं। आज भी उनकी रुचि धर्म मे है। पाठकगण प्रस्तुत कृति के प्रकाशन से अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करें, ऐसी हमारी भावना है।

आशीर्वाद।

—विद्यानन्द मुनि

रामपुर मनिहारान
चैत्र वदि ९ वृषभ-जयन्ती
वीर निर्वाण सवत् २४९५

प्रकाशकीय वक्तव्य

जैन साहित्य इन चार भागों मे विभक्त है : (१) कर्णानुयोग, (२) द्रव्यानुयोग, (३) चरणानुयोग और (४) प्रथमानुयोग । कर्णानुयोग मे ससार रचना और भूगोल आदि का वर्णन है, द्रव्यानुयोग मे जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, काल और आकाश छह द्रव्यो का वर्णन है । चरणानुयोग मे मुनियो तथा गृहस्थो (श्रावको) के आचरण का उल्लेख है और प्रथमानुयोग मे पुराण, चरित्र तथा कथाए आदि है ।

जैन साहित्य जहां अति विपुल, विशाल और भारत की प्राचीन भापाओ जैसे प्राकृत तथा सस्कृत मे है, वहा अपभ्र श और आधुनिक भारतीय भापाओ हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी आदि तथा द्राविड भापाओ कन्नड, मलयालम, तमिल और तेलगु मे भी है । जैन आचार्यो तथा लेखको ने किसी विशेप भापा का आग्रह न करके सभी भाषाओ को अपनी रचनाओ से समृद्ध किया है । उन्होने जैन धर्म, दर्शन, सिद्धान्त, नय, तर्क आदि विषयो के अतिरिक्त दूसरे लौकिक विषयो गणित, ज्योतिप, आयुर्वेद, वनस्पति शास्त्र और स्थापत्य कला आदि-आदि को भी अपनी रचनाओ मे स्थान दिया है । इन की रचनाओ के माध्यम तथा अध्ययन से भारतीय 'साहित्य,' दर्शन, इतिहास आदि तथा भाषाओ के पूर्ण विकास का चित्र देख सकते है । पर खेद है कि जैन साहित्य के इस ढग से अध्ययन की ओर विदेशी तथा भारतीय विद्वानो का ध्यान उतना नही गया है, जितना उनका ध्यान वैदिक और वौद्ध साहित्य के अध्ययन की तरफ गया है ।

जैन आचार्य तथा लेखक महान् पुराण लेखक और कथाकार भी थे । इनके माध्यम से वे पाठको तथा श्रोताओ को न केवल धर्म की वाते बताते थे, वरन् मानवीय अनुभव वताते थे और

कहानियों के द्वारा उनका मनोरजन करने के अतिरिक्त उन्हे शिक्षा भी देते थे। इतना ही नही, उन्होने राम, कृष्ण, पाण्डवो तथा कौरवो आदि की सुप्रसिद्ध कथाओं को अपनाकर उन्हे जैन साहित्य का अग बनाया और लोककथाओ को भी अपने साहित्य मे इस ढग से स्थान दिया है कि वह उसका अभिन्न अग बन गया है। उनकी 'हाथी और सात अधों की कहानी' अनेकान्त दर्शन को इतने अच्छे तथा हृदयग्राही ढग से पेश करती है, कि वह विश्वसाहित्य मे स्थान पा गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि पुराण, चरित्र तथा कथासाहित्य मे जैन आचार्यो तथा लेखको का अपूर्व तथा प्रशसनीय योगदान है।

हमारा विचार है कि इन जैन पुराणो, चरितो तथा कथाओ को नई शैली में सरस-सरल तथा रोचक भाषा मे पाठको को दिया जाय, जिससे अधिक सख्या मे पाठक उससे लाभान्वित हो सके। हमारा यह भी विचार है कि इस साहित्य को नाटको, एकाकियो तथा उपन्यास आदि विधाओ मे भी प्रकाशित किया जाय। जैन कथा-साहित्य में इतनी विपुल मात्रा मे सामग्री मौजूद है कि उसके लिए लेखकों की टीमें (मण्डलियां) हो और प्रकाशन के लिए अनेक संस्थाएं हों।

अपने उपर्युक्त विचार को कार्यान्वित करने के लिए हम सुप्रसिद्ध हरिवश पुराण को 'हरिवश-कथा' के रूप मे जैन समाज और हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध लेखक श्री माईदयाल जैन से लिखवाकर साहित्य जगत् को भेट कर रहे है। वे पचासो पुस्तको के लेखक होने के साथ-साथ शिक्षा शास्त्री भी है। हमे आशा है, साहित्य प्रेमी हमारे इस प्रकाशन का न केवल स्वागत करेगे, वरन् वे अपने स्वाध्याय मे इसे उचित स्थान देगे।

हमे यह बात बडे खेद से लिखनी पड़ती है, कि हरिवश-कथा के मुद्रण मे प्रेस ने विलम्ब किया, जिससे हमे अपनी प्रकाशन योजना

को कार्यान्वित करने मे बड़ी रुकावट हुई। अच्छे कामों मे कितने विघ्न आते हैं, उसका यह एक उदाहरण है।

हम मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज के अत्यन्त आभारी है, जिन्होने अपने अत्यन्त मूल्यवान् क्षण हमे देकर इस रचना के लिए आशीर्वचन लिखे और इस पुस्तक को सम्मान प्रदान किया।

राजकृष्ण जैन

नयी भूमिका

आचार्य श्री जिन सेन द्वारा वि० स० ८४१ मे रचित सस्कृत हरिवश पुराण के नये रूप हिन्दी हरिवश कथा की यह नयी भूमिका है। इसे नयी भूमिका इस लिए कहा गया है, कि इसके साथ एक प्रचीन पुराण को नये ढग से लिखकर साहित्य जगत् को भेट किया जा रहा है।

अहिसा मन्दिर, दिल्ली, के सस्थापक और मेरे पुराने मित्र श्री राजकृष्ण जैन का यह विचार है, कि जैन पुराणो, चरितो और कथा-साहित्य को नयी शैली मे सरस, सरल और रोचक भाषा मे प्रकाशित किया जाय, जिससे पाठक रुचिपूर्वक उसे पढ कर लाभान्वित हो सके। इतना ही नही वहुत से जैन-अजैन विद्वानो का यह मत भी है क इस पुराण आदि साहित्य मे वर्णित कथानकों को योग्य अधिकारी लेखको के द्वारा लिखवाकर साहित्य की नयी-नयी विधाओ जैसे नाटक, एकाकी और उपन्यास आदि के रूप मे भी प्रकाशित किया जाय। मैं श्री राजकृष्ण जैन और दूसरे विद्वानो के इन दोनो विचारो से पूरे रूप से सहमत हूँ और इसकी आवश्यकता को भी अनुभव करता हूँ।

जब श्री राजकृष्ण जैन ने मुझ से इस हरिवश पुराण को कथा रूप मे सक्षिप्त करके लिखने को कहा, तो मैने इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया और मैं अपनी सीमाओ को जानते हुए भी इस महान् काम को हाथ मे लेने को तैयार हो गया।

जैन पुराणो मे मुख्य कथा उप-कथाए तो होती ही है, उनमे दर्शन, सिद्धान्त, त्रिलोक वर्णन और मुनियो तथा गृहस्थो के आचरण आदि का भी वड़ी मात्रा मे वर्णन होता है। प्राचीन पुराण शैली मे यह अनिवार्य था। पर आज कथा के सम्बन्ध मे

यह विचार है, कि कथा मे न अप्रासगिक सामग्री हो और न उपदेश हो। पाठक कथा पढ़ ले, श्रोता कथा सुन ले और फिर उन के हृदयो पर कथा के उपदेश या शिक्षा का प्रभाव स्वय पड जाय। इसके अतिरिक्त वडे-वडे पुराण या चरित्र पढ़ने-सुनने के लिए भी आज किसी के पास समय नही है। इसलिए कथाओ को सक्षेप मे देने की परिपाटी वढ रही है।

हरिवश पुराण के आधार पर रचित या पुनर्कथित—रिटोल्ड (Retold) प्रस्तुत हरिवश कथा मे उपर्युक्त वातो का ध्यान रख कर उसे सक्षेप मे सरस, सरल और रोचक भापा मे लिखा गया है। पुराण को सक्षिप्त करते हुए मुख्य कथा तथा उपकथाओ को यथेष्ट रूप मे दिया गया है जिससे कथा मे कोई कमी न आने पाये। सक्षिप्त होते हुए भी यह हरिवश कथा वड़ी ही मालूम होगी। पर इससे अधिक सक्षिप्त करना मैंने उचित नही समझा। मैं अपने इस प्रयत्न मे कहा तक सफल हुआ हूँ, इस का निर्णय मैं विद्वानो तथा योग्य पाठको पर छोडता हूँ।

अहिसा मन्दिर प्रकाशन के सचालको तथा उसके उत्साही मत्री श्री प्रेमचन्द जैन का मै आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस साहित्य-सेवा का प्रशसनीय अवसर दिया। जैन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् पडित राजेन्द्र कुमार जैन, न्याय तीर्थ, से भी मुझे समय-समय पर इस काम मे जो परामर्श मिला है, उसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ।

यदि साहित्य जगत् ने मेरे इस प्रयास को पसन्द किया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूगा और इस प्रकार की दूसरी पुराण-कथाए भी आगे देने का प्रयत्न करूगा।

माईदयाल जैन

४५६६, डिप्टी गंज, दिल्ली—६

विषय-सूची



: १ :

हरिवंशकी उत्पत्ति

अतिम और चौबीसवे तीर्थकर महावीर स्वामी विहार करते-करते मगध देशके प्रसिद्ध नगर राजगृह पधारे। मगध देशको भारतकी धर्म भूमि, पवित्र भूमि और स्वर्ग भूमि होनेका गौरव प्राप्त है। इस देशको जम्बूद्वीपका भूषण कहा है। यहाके पर्वत वृक्ष पक्तियोसे सुशोभित हैं। अनेक नदियाँ, सघन वन, विभिन्न प्रकारके धान्य और खाद्यान्नोके हरे-भरे खेत, आम, जामुन तथा केले आदि फलोके बाग-बगीचे मगध देशके प्राकृतिक सौन्दर्यको चार चाद लगाते हैं, देशको सब प्रकारसे समृद्ध और खुशहाल बनाते है। मगध देश न केवल सभी प्रकारकी आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक विभूतिवाला था, वरन् यहा तत्व-चर्चा, स्वाध्याय, तप और आध्यात्मिकताका खूब प्रचार था। उस समय मगध देश जैन धर्म और जैन सस्कृतिका महान केन्द्र था, जिसके प्रमाणमे यहाके अनेक जैन तीर्थ जैसे वैशाली, कुण्डलपुर, राजगृह और पावापुरी आदि हैं। आज भी सहस्रो स्त्री-पुरुष यात्री इन तीर्थोकी वन्दनाके लिए हर वर्ष आते हैं। वीसवे तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ और चौबीसवे तीर्थंकर महावीर स्वामीने अपने जन्म, तप और विहारसे इस देश-की मिट्टीके कण-कणको पवित्र किया। महावीर स्वामी के समकालीन महात्मा बुद्धके जन्म का गौरव भी मगध देशको ही प्राप्त है।

उस समय राजगृह मगधकी राजधानी थी। राजगृहकी शोभा इन्द्रपुरीके समान थी। यहा पृथ्वीपर स्वर्ग उतर आनेकी बात चरितार्थ होती थी। यहाके महल और सुन्दर भवन तथा इसके आस-पास के प्राकृतिक सौन्दर्यका वर्णन करना लेखनीकी शक्तिसे बाहर है।

इसी राजगृहमे तीर्थकर महावीरका समवसरण—प्रवचन मण्डप, सभा मण्डप—बना। इस समवसरणमे कई कक्ष थे, जिनमे देवता, गणधर, मुनि, आर्यिकाए, राजा, विद्वान, जनता और पशु-पक्षी बिना किसी भेदभाव और वैरभावके भगवानके उपदेशामृतका पान करनेके लिए बैठते थे। वहा धर्मोपदेशामृतकी सरिता बहती थी। सबकी शकाओ और सभी प्रकार की जटिल समस्याओ का समाधान वहा होता था। समवसरणमे तीर्थकरकी दिव्यध्वनि सबको आत्मिक सुख-शाति देनेवाली, मोक्षमार्ग बतानेवाली होती थी। दिव्यध्वनि सर्व भापामय होती थी और सभी उसको आसानीसे अपनी-अपनी भापामे समझते थे। यह इसकी विशेषता कही जा सकती है।

इसी सभामे भगवान महावीरने अपने उपदेशमे बताया कि यह जीव और सृष्टि अनादि है और इसका कर्त्ता या नाशक कोई नही है। यह जीव अनादि कालसे कर्मोंके वन्धनके कारण आवा-गमनके चक्रमे घूमता रहता है। कर्म सिद्धान्त यह है कि जो जैसा कर्म करता है उसको उसका वैसा ही फल मिलता है। अच्छे कर्म-का फल अच्छा और वुरे कर्मका फल वुरा होता है। इन कर्मोंके वन्धनको काटकर यह जीव मोक्ष प्राप्त करता है। मोक्ष जानेके पश्चात् कोई जीव ससारमे दोवारा जन्म नही लेता। मोक्ष ही जीवका परम लक्ष्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र तीनों मिल कर मोक्षका मार्ग वनाते हैं। महाव्रत रूप मे मुनिधर्म ओर अणुव्रत रूपमे श्रावक धर्म हैं। मुनि धर्म उत्कृष्ट धर्म है। मुनियोको अहिसा, सत्य, अपरिग्रह, व्रह्मचर्य और अचौर्य पाच व्रत महा व्रत रूपमे पालने होते हैं। परन्तु हर एक स्त्री-पुरुष मुनि धर्मका पालन नही कर सकता। इसलिए उनके लिए अणुव्रत रूप धर्मका उपदेश है। अहिसा परम धर्म है। इसका आशय यह है कि किसी भी जीवको प्रमाद से मन, वचन और कायासे स्वयं या

दूसरेके द्वारा कष्ट मत दो और न उसका अनुमोदन करो। प्राणी मात्रके प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए। विपय और वस्तु-स्वरूप को ठीक तौर पर समझने के लिए उन्होने अनेकान्त अथवा स्याद्वाद का प्ररूपण किया।

भगवान महावीरके उपदेशके पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य गौतम गणधरने तत्व-चर्चा और शका-समाधान किया। समवसरण मे श्रोताओमे राजगृहके राजा श्रेणिक भी थे। तीर्थकर महावीर स्वामीका उपदेश सुननेके पश्चात् उसने श्री गौतम गणधर से प्रार्थना की, "महराज! हरिवशकी उत्पत्ति और उसका वर्णन बताने की कृपा करे।" श्री गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे हरिवश की उत्पत्ति-की कथा कहने लगे।

सब देशोमे अति सुन्दर वत्स देश था। उसमे यमुनाके किनारे कोशाबी नगर था। यह नगर वत्स राज्यकी राजधानी थी। कोशाबी नगरकी रक्षाके लिए कोट, परिकोट और खाई बनी हुई थी। कोशावी नगर की सुन्दरताका वर्णन करना कठिन है। उसमे बडे-बडे तथा ऊँचे-ऊँचे अनेक भवन थे और रातके समय उसमे जो प्रकाश होता था वह रत्नोके प्रकाशके समान था।

वत्स देश के राजाका नाम सुमुख था। इसके राजमे समस्त प्रजा सुखी थी। बहुत से नरेश राजा सुमुखके आधीन थे। राजाका धनुष इन्द्रधनुषसे उत्तम था, क्योकि उसमे कोई दोष न था। राजा-का महा सुन्दर शरीर और नव यौवन देखने योग्य थे। वह धर्म-शास्त्रमे प्रवीण, विशेष कलाओको जाननेवाला और महा गुणवान था। वह सुजीवो पर अनुग्रह करने मे समर्थ और प्रजाका पालक था, पर दुष्टोको दबानेमे भी कुशल था। राजा सुमुखके अनेक गुणोके कारण प्रजा उसे हृदयसे चाहती थी और सदा आशीर्वाद देती थी और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति और चिर आनन्दकी हृदयसे कामना करती थी।

एक दिन राजा सुमुख अपने नगरमे भ्रमण कर रहे थे।

राजाको देखकर सबके मन आनन्दसे भर गये। सभी राजाको बिना पलक मारे देख रहे थे, पर उनके मन नही भर रहे थे। उन नर-नारियों मे एक अत्यन्त रूपवती नवयुवती दोनो नेत्रों से राजाके रूपामृतको अतृप्तसी पी रही थी। जब राजाकी दृष्टि उस पर पडी, तो उसका मन भी उस स्त्रीपर अनुरक्त हो गया। राजाके पांव न आगे बढ रहे थे और न पीछे हट रहे थे। राजा मनमे विचारने लगा कि यह अत्यन्त रूपवती कौन है, जिसने अपने रूप और नवयौवनके फन्दे मे मेरे मनको फसा लिया है?पर स्त्रीका सेवन समस्त जगतमे महा पाप माना गया है। मन भी जव विपयाभिलाषा से चलायमान होता है, तो उसे वशमे करना अत्यन्त कठिन होता है। विषयासक्ति से राजाकी बुद्धि मन्द पड गई और उसे लोकापवादका भी डर न रहा। वह उसे सहनेको तैयार हो गया, पर अपने मनको वशमे न कर सका। राजा अपने मनकी पीडा जीतनेमे असमर्थ वन गया।

अव राजा उस स्त्रीको हरनेकी विधि सोचने लगा। जैसे सूर्य प्रभावान और दैदीप्यमान है, पर अस्त समय मन्द पड जाता है, वैसे ही राजा सुमुख भी लौकिक आचार, धर्म तथा नीतिको जाननेवाला होते हुए भी कामके आतापसे मन्द बुद्धि हो गया।

उस महा रूपवती स्त्रीका नाम वनमाला था और वह नगरके एक सेठ वीरककी धर्मपत्नी थी। जव वनमालाने राजा सुमुखको उस भीडमे देखा था, तव वह भी अपने हृदयको राजाको सौप चुकी थी। वह भी राजाको पानेके लिए आतुर थी।

दोनो एक दूसरेके अनुरागसे व्यथित थे।

राजा वहाँ से वन-उपवनमे गया। यद्यपि वहाँ वहुत प्राकृतिक सौन्दर्य था, पर वहाँ भी राजाका जी न लगा। वह अपने महलोमे आगया, पर तव भी वेचैन। उसके मनमें तो विषयाग्नि धधक रही थी, उसे शान्ति कैसे मिलती?

राजाका सुमति नामका अति बुद्धिमान और चतुर मन्त्री था। राजाका यह हाल देखकर वह बडी विनयसे राजासे पूछने लगा, "हे प्रभो! आज आप चिन्ता मे क्यो हैं? आपको अपने प्रताप से सब सुख प्राप्त हैं। आपकी प्रजा सुखी है, आप सबका सम्मान करते हैं। सभीको आपसे अनुराग और प्रेम है। फिर आज यह उदासी और चिन्ता क्यो? अपने दु खको अपने प्राण समान मित्रसे कहकर उसका उपाय करने से दुख मिटता है। यह जगत की रीत है। इसलिए अपने मनकी बात मुझसे कहो, जिससे उसका यथोचित उपाय करू।" तब राजाने नगरमे स्त्री समूहमे देखी हुई उस रूपवती नवयुवतीका वर्णन किया और मन्त्रीसे कहा कि उस स्त्रीको प्राप्त किये बिना उसे चैन नही पडेगा। मन्त्री राजाकी बात सुनकर दग रह गया। मन्त्री सुमतिने पर स्त्री सेवनकी बुराइयो और राजाके पवित्र कर्तव्यकी बात राजा को समझाई, पर राजाके सिर पर तो विषयका भूत सवार था। उसने मन्त्रीके अच्छे परामर्श को न मानना था न माना। अपनी ही बात और सेठानी वनमालाकी रट लगाता रहा। राजाने कहा कि यदि मुझे आज उसका सयोग न हुआ, तो उसके बिना मेरा एक दिन भी जीना कठिन है। राजाने मन्त्रीको यह भी बताया, कि मेरे बिना वह भी इसी प्रकार तडप रही होगी। राजाने कहा, "मैं जानता हू कि इस बुरे कामसे लोकमे अपयश और परलोक मे पाप का फल मिलेगा, परन्तु विषयासक्त मूढ जीव अन्धेके समान कार्य-अकार्यको नही देखते। यदि मेरा जीवन रहा तो इस पापको शात करनेके अनेक यत्न बादमे कर लिये जायगे। अब मेरी इच्छा पूरी करो।"

मन्त्रीने यह जानते हुए भी कि राजाकी मनोकामनाको पूरा करना बुरा काम है, पर राजा के प्राणोकी रक्षा करना भी मन्त्रीका कर्तव्य है, इसलिए उसने राजाको वनमाला दिलानेका

आश्वासन देते हुए उसे नहाने-धोने और भोजन आदि करनेको कहा ।

मन्त्री सुमुखने राजाकी आज्ञासे दूत कार्यमे अति निपुण दूती आत्रेयीको बनमालाके पास भेजा । वनमालाने दूतीका बडा सम्मान किया । आत्रेयीने बनमालाके रूप, स्वभाव और गुणोकी प्रशसा करते हुए बड़े प्रेमसे उसकी चिन्ता और उदासीका कारण पूछा । दूतीने उसे वेटी कहते हुए अपने मन की बात उसे कहनेको कहा । दूतीने शीघ्र ही बनमालाका विश्वास प्राप्त कर लिया । वनमाला उससे राजाके प्रति अपने अनुरागकी बात कहने लगी । सेठानीने अपनी प्रेमपीडा और मनकी व्यथा को दूती से दिल खोल-कर कहा और राजा सुमुखसे मिलाने की प्रार्थना की । साथ ही वनमालाने समस्त बातको गुप्त रखनेका भी आग्रह किया । बन-मालाने दूतीसे कहा कि जहाँ तक मेरा अनुमान है राजा सुमुख भी मुझपर अनुरक्त है और जैसे मैं तडप रही हू वैसे ही मेरे बिना वह भी वेचैन होगा । दूती बनमालाका राजाके प्रति अनुराग और उसकी कामपीडाकी वात सुनकर समझ गई कि उसे अपने कार्यमे सफलता आसानीसे मिल जायगी । वह मनमे वडी हर्पित हुई । आत्रेयी वनमालासे कहने लगी, "पुत्री ! राजा सुमुखने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है । तेरे रूपपर वह वडा आसक्त है । तेरे विना उसका जीना भी कठिन है । इसलिए तु मेरे साथ अभी चल । मैं तुम दोनोकी अभिलापा पूरी करूगी ।" दूती अपनी सफलता पर मन ही मन प्रसन्न थी ।

कामातुर वनमाला दूतीके वचन सुनकर विना आग-पीछा सोचे पतिके पीछे दूतीके साथ राज महलके लिए चल पड़ी । जब वनमाला राजा सुमुखके महलमे पहुंची, राजाने वडे प्रेम और आदरसे उसका स्वागत किया । दोनो एक दूसरे को देख कर वडे प्रसन्न और हर्पित हुए । प्रेम और काम वासना की वृद्धिके लिए वे

दोनों अनेक हाव-भाव प्रकट करते रहे। वे दोनो अनेक प्रकारकी प्रेम क्रीडा करते रहे और कामाग्निको शान्त करते रहे। सभी शास्त्रोमे निज स्त्रीके सेवनको भी सीमित रखने का उपदेश है, उसे भी भवभ्रमणका कारण बताया है, फिर परदारा सगम तो महा पाप कहा गया है। यह तो प्रत्यक्ष ही कुगतिका कारण कहा गया है। धिक्कार है उस काम वासनाको जो मनको मोहित और धर्म विमुख करके स्त्री-पुरुषोको अधर्म मार्गपर प्रवृत करती है। सुमुख जैसे नीतिवान, न्यायशील और धर्मके ज्ञाताके लिए तो यह पाप कर्म और भी निन्दनीय था। पर कामवश बुद्धिमान से बुद्धिमान स्त्री-पुरुष भी अन्धे बन जाते हैं।

रात भर राजा सुमुख और बनमाला रगरलियोमे मस्त रहे। भोर हुआ पर राजा सुमुखने बनमालाको वापस उसके घर न जाने दिया। मन वान्छित दुर्लभ वस्तु मिलने पर कौन छोड़ना चाहता है? राजा ने उसे अपनी पटरानी बनाया। सब राजलोकमे सेठानी शिरोभाग बनी। यहा जो उसकी प्रतिष्ठा थी, वह सेठ वीरकके घरमे उसे कहाँ प्राप्त थी? वह भी अपने पति सेठ वीरकको भूल गई।

कुछ दिन बीतने पर कोशाबी नगर मे वरधर्म नामके एक जैन मुनि बिहार करते हुए पधारे। बरधर्म तपो निधि, व्रतोको पालनेवाले, एक वस्त्र तक के परिग्रहके भी त्यागी, महान शान्त और अध्ययनादि तप रूप लक्ष्मीसे सुशोभित थे। वे आहार-भोजन के लिए घूमते-घूमते राजा सुमुखके राजमहलके द्वारपर आये। जब राजाने मुनि महाराजके अपने महलके द्वारपर पधारनेका शुभ सम्वाद सुना, तब वे वडे हर्षित हुए और उन्होने मुनिके आगमनको अपना अहोभाग्य और पुण्योदय समझा। झट से राजा सुमुख अपनी विवाहिता धर्मपत्नी सहित मुनिकी प्रदक्षिणा दे विनय सहित मुनिराजको बडी श्रद्धासे महलमे ले गया। राजाने शुद्ध जल

से मुनिके चरण धोये, मुनिकी धर्म विधि पूर्वक अष्ट द्रव्योसे पूजा की। मन, वचन और कायासे मुनिको बार-बार बन्दना करके उन्हे विधि पूर्वक आहार कराया।

सेठानी वनमालाने भी राजाके द्वारा मुनिको आहार कराने पर बड़ा हर्ष माना।

मुनि तो आहार करके वहां से बनकी ओर चले गये। इधर राजा सुमुख और वनमालापर दैव योगसे विजली गिरी और उन दोनोकी तत्काल मृत्यु हो गई।

यद्यपि पर स्त्री और पर पुरुषके समागमके पापके कारण राजा सुमुख और वनमाला की कुगति होती, परन्तु उन दोनो ने अन्तिम कालमे इस पापके लिए बढा पश्चाताप किया था, राजाने मुनिको आहार दिया था और वनमालाने मुनि आहारके अच्छे कामपर हर्ष प्रकट किया था, उसका अनुमोदन किया था, इसलिए मरनेके पश्चात् उन दोनोने विजयार्द्धगिरिमे विद्याधरोके यहा जन्म लिया। विजयार्द्धगिरिमे हरिपुर नगर मे राजा पवन गिरि विद्याधर था। उसकी महा गुणवती, कलावती और कुलवन्ती मृगावती रानी थी। उनके यहाँ सुमुखका जीव पुत्र रूपमे उत्पन्न हुआ।

विजयार्द्धगिरिमे मेघपुर नगरमे राजा वेग विद्याधर था, जिसकी महा सुन्दर रानीका नाम मनोहरी था। उन दोनो के घर वनमालाका जीव मनोरमा पुत्री हुआ। वे दोनो राजाओके घर सुखमे पलते रहे। ज्यूँ-ज्यूँ वे बढते गये, उनके शरीर सुगठित होने लगे और गुण बढने लगे और वे भिन्न विद्याओमे निपुण होने लगे।

जब वे दोनो बडे हुए, तब उनकी सगाई हो गई। फिर उन दोनोका बडे समारोहके साथ विवाह हुआ और वे दोनो राज महलमे बडे सुखसे रहने लगे। अनेक रम्य सुन्दर स्थानोपर वे दोनो वर-वधु घूमने गये। उनके दाम्पत्य जीवनके सुखकी कोई सीमा न थी।

दुतीके साथ छुप कर बनमालाके घरसे चले जानेके पश्चात् सेठ वीरक अपनी पत्नीके वियोग और विरहसे व्याकुल और दुखी रहने लगा। उसे दिनको चैन न रातको नीद। ठण्डी आहे भरते-भरते उसका समय बीतने लगा। "हाय बनमाला! तू कहा गई, तूने क्या किया?" यही रट उसकी जुबानपर रहने लगी। मारे चिन्ता और वियोगके उसका खाना-पीना बन्द-सा हो गया और उसका शरीर सूखने लगा। उसकी तमाम धन-सम्पत्ति और उसके घरके सभी सुख उसके हृदयकी जलनको शान्त न कर सके। जिस प्रकार स्त्रीको पति वियोगसे महा दु.ख होता है, उसी प्रकार पुरुषको भी पत्नी वियोगसे महा दु ख होता है। अब वीरकको घर और ससारकी कोई भी वस्तु अच्छी न लगती थी, वरन उनसे विरक्ति हो गई। अब वीरक सेठने गृह त्याग कर जैन मुनिका धर्म अगीकार किया। ससारसे विरक्त पुरुषोके लिए मुनि धर्म और स्त्रियोके लिए आर्यिका धर्म बडा शरण है। अब वीरक सेठ नही वीरक मुनि बन गया। वह अपने मन और सभी इन्द्रियोको वशमे करने का अभ्यास करने लगा। उसने महान तपसे शरीरको सुखा कर काटा बना दिया। मर कर वीरक मुनि का जीव पहले स्वर्ग मे देव हुआ। जो मुनि अपने जन्ममे मोक्ष प्राप्त नही करते, वे स्वर्गके सुख भोग कर निर्वाण पद अर्थात् मुक्ति पाते हैं।

एक दिन वह देव अपने पूर्व जन्मकी बातोपर विचार करने लगा। उसे अपनी पहली पत्नी बनमालाकी याद आ गई। सुमुख राजाने उसकी सेठानीको हरकर उसका अपमान किया था, वह भी देवको याद आ गया। उसने अपने ज्ञानसे यह भी जान लिया कि सुमुख और बनमालाके जीव मरने के पश्चात् विद्याधरोके घरमे जन्म लेकर फिर पति-पत्नी रूपसे रह रहे हैं। इन सब बातोकी यादसे उस देवके मनमे द्वेषकी आग भडक उठी और उसने अपने अपमानका बदला लेने का निश्चय किया।

उस देवने अपने ज्ञानसे यह जान लिया कि वे पति-पत्नी उस समय मध्य लोकमे हरिवर्ष क्षेत्रमे आनन्द मना रहे थे। देवने सोचा कि वे दोनो नवयौवन हैं, इसलिए मारने योग्य नही हैं। तव उसने अपनी अखड देव मायासे उनकी आकाश गामिनी विद्याका नाश कर दिया। फिर उस देवने पूछा, "हे सुमुख!, क्या तू मुझे जानता है? मैं वही सेठ हू जिसकी प्रिया पत्नी बनमाला तूने हरी थी। वनमाला तू पापिनी है। तूने अपने शील धर्मको खोया, इसलिए तुझे धिक्कार है। मैंने तुम्हारी विद्या तो हर ली है अब वताओ तुम्हे क्या दु.ख दू?" ऐसा कहकर उस देवने उन दोनोको इस तरह उठा लिया जैसे गरुड आदमियोके जोडे को उठा लेता है। वह उनको उठाकर दक्षिण भारतकी ओर ले गया। फिर वह उन्हे लेकर चपापुरी नगरमे आया।

सयोगकी वात है कि उसी समय चम्पापुरीके राजा चन्द्र कीर्तिका निधन हो गया था। चम्पापुरी अव अनाथ थी। उसे एक राजाकी आवश्यकता थी। इसलिए वह देव चम्पापुरीका राज्य सुमुखके जीवको देकर आप वापिस देवलोक आगया। वे दोनो पति-पत्नी अपनी आकाशगामिनी विद्याके छिन जाने से पखहीन पक्षियोके समान देव लोक जाने मे असमर्थ होकर वही चम्पापुरीमे स्थायी रूपमे रहकर राज्य करने लगे। उस मण्डलके अनेक राजाओ ने उनकी आधीनता स्वीकार कर ली।

यह वात दशवे तीर्थंकर श्री शीतलनाथके समयकी है। राजा-रानीने अनेक वर्षो तक वहाँ सुखसे राज किया। उनके घर एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरि रखा गया। कुछ वर्षोके वाद वे दोनो राजा-रानी परलोक सिधारे। और राजा हरि चम्पापुरी पर राज करने लगा। राजा हरि वडा प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ। अपने वशका मुख्य राजा होनेके कारण उसका वश हरिवंश नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजा हरिके पुत्रका नाम महागिर था। उसके वेटेका नाम हिमगिर था। हिमगिरके बसुगिर पुत्र हुआ और उसके गिर नामका पुत्र हुआ। ये राजा स्वर्ग लोक पधारे। इनके पश्चात् इस वंशमे सैकडो और राजा हुए। इन राजाओने इन्द्रके समान वैभव प्राप्त किया और सुखसे राज कर अपने-अपने समयमे मुनि दीक्षा लेकर तप करके वे मोक्ष या स्वर्ग लोक गये। इस हरिवंशमें अनेक राजा अद्भुत चरित्रके धारक हुए थे।

: २ :

तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ

वहुत समयके पश्चात् मगध देशमे कुशाग्र नगरमे हरिवंशमे एक वडा प्रसिद्ध, शस्त्रविद्यामे निपुण और पुरुषार्थी राजा सुमित्र हुआ। उसकी रानीका नाम पद्मावती था। वे दोनो बडे सुखसे राज कर रहे थे। प्रजा हर तरहसे सुखी थी। राजा और रानी दोनो जैन धर्मके अनुयायी और बड़े भक्त थे।

तीर्थंकर शीतलनाथके पश्चात् तीर्थंकर श्रेयासनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शातिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ और मल्लिनाथ हुए।

इन्द्रको यह मालूम हुआ कि राजा सुमित्रके घर रानी पद्मावतीके गर्भमे वीसवे तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ आयगे, इसलिए इन्द्रने धनपति कुवेरको राजा सुमित्रके घरमे मणियोकी वर्षा करने की आज्ञा की।

एक रातको रानी पद्मावती अपनी सेजपर निद्रामग्न थी। उसने पिछली रातमे सोलह स्वप्न देखे। उन स्वप्नोमे रानीने हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चान्द, सूर्य, मछली, कलश, कमलोसे भरा सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देव विमान, फनीन्द्र भवन, रत्न राशि और निर्धूम अग्नि देखे। रानी पद्मावती इन स्वप्नोको देखकर बड़ी आनन्दित हुई। उसकी उस समय की कातिका वर्णन करना अति कठिन है, क्योंकि उसके गर्भमे तीर्थंकर आनेवाले थे।

प्रात काल रानी पद्मावती अपने पति राजा सुमित्रके पास गई और उसने बडी विनयसे राजाको प्रणाम किया। राजा-ने भी रानीका बड़ा आदर-मान किया और अपने पास सिंहासन-पर स्थान दिया।

आपस मे कुशल मगलकी बात पूछने पर रानीने सोलह स्वप्नोका हाल राजाको बताया और उनका फल पूछा। राजा उन स्वप्नोंको सुनकर बडी प्रसन्नतासे कहने लगा, "हे प्रिये ! तीन लोक के स्वामी जगत गुरु तीर्थंकर तेरे गर्भमे आये हैं। तू धन्य है। हमारा वश धन्य है।" रानी भी स्वप्नोका यह फल सुन कर बडी हर्षित हुई। राजाके बचनोने सूर्यकी किरनोके समान रानीको उल्लसित किया। रानी अपने जन्मको सुफल मानने लगीं। गर्भवती रानी पद्मावती शरद ऋतुकी जलसे भरी मेघ मालाके समान सुन्दर और बिजलीसे भी अधिक प्रभावान दिखाई देती थी।

रानी पद्मावतीने माघ मासके शुक्ल पक्षमे द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमे बीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथको जन्म दिया।

तीर्थंकरको जन्म देने के कारण रानी पद्मावतीके हर्पकी सीमा न थी। उसे तीर्थकर जननी होने का महान गौरव प्राप्त था। राजा सुमित्र भी तीर्थंकर श्री मुनि सुव्रतनाथके जन्मका शुभ समाचार सुन कर हर्षसे फूले न समाये। राज्य भर मे प्रजाने खुशीसे वडे उत्सव मनाये। तीर्थंकरके जन्मके समाचारसे देव लोक तकमे आनन्द मनाया गया। इन्द्रादि देवोके मुकट विनयसे झुक गये और उनके सिंहसान कापने लगे।

नवजात शिशु मुनिसुव्रतनाथ अति सुन्दर थे और उनके शरीरमे शख चक्रादिक एक हजार आठ शुभ लक्षण थे। उनके शरीर का रग नीलमणि समान श्याम सुन्दर था।

यहा यह वता देना आवश्यक है, कि महान शुभ विशेष कर्मके बन्धने से ही जीव तीर्थंकरके रूपमे जन्म लेते हैं, अन्यथा नही। इन्हे महामानव कह सकते हैं। तीर्थकरोके गर्भ, जन्म, तप, केवल ज्ञान प्राप्ति और मोक्षके पाच कल्याणक कहलाते हैं। कल्याणक अर्थात कल्याण करने वाले समय तीर्थकरोके जीवनमे पच कल्याणकोका वड़ा महत्व होता है। पच कल्याणको पर सभी नर-नारी, देवी-देवता और इन्द्रादि हर्प मनाते हैं, उत्सव करते हैं।

वीसवे तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथके पच कल्याणकोपर खूब हर्ष मनाया गया ।

जगतकी दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुभी मुनि सुव्रतनाथको बाल्यावस्थामे सुलभ थी । ज्यू-ज्यू उनका शरीर बढने लगा, उनके गुणोमे वृद्धि होने लगी । युवावस्था प्राप्त करने पर उनका विवाह एक महा मनोग्य नवयुवतीसे किया गया । मुनिसुव्रतनाथ और रानी ऐसे मिले, जैसे महानदी समुद्रसे मिलती है । मुनि सुव्रतनाथके समान पृथ्वीपर कोई पुरुप नही था और रानीके समान कोई स्त्री न थी ।

फिर हरिवशके सूर्य मुनि सुव्रतनाथ राजसिहासनपर बैठे । सव राजाओ और समस्त प्रजाको सुख देते हुए वे राज्य करने लगे । राजाकी आज्ञा अखण्ड थी । राजा-रानी बडे सुखसे समय विताने लगे ।

एक दिन शरद ऋतुमे राजा मुनिसुव्रतनाथ अपने महलमे रानी सहित आनन्दसे वैठे शरद कालकी प्राकृतिक सुन्दरता देख रहे थे । आकाशमे मेघमण्डलको देखकर राजा-रानीके मन बडे हर्पित हुए । परन्तु उसी समय वह मेघमण्डल प्रचण्ड पवनके चलनेसे विलय हो गया । वह इस तरह छिन्न-भिन्न हो गया, जैसे आगकी ज्वालासे तप्त मक्खनका पिण्ड पिघल जाता है । इस प्रकार वादलोके विलयके दृश्यको देखकर राजा मुनिसुव्रतनाथ सोचने लगे कि वादलोका इस तरह छिन्न-भिन्न होना जगतको विनाशकी सूचना देता है । आयु और काया सव विनिश्वर हैं । ये वादल निर्मल वुद्धि आदमियोको ससारकी अनित्यता स्पष्ट रूपसे दिखाते हैं । यह शरीर छोटे-छोटे महा तुच्छ पुदगल परमाणुओका समूह है । रागादिक परिणामोसे पैदा हुए ज्ञानावरणादि कर्मोके सयोगसे इस शरीरकी उत्पत्ति है । मृत्यु रूपी पवनके वेगसे यह शरीर वादलोंके समान शीघ्र विघट जाता है । इस शरीरकी शक्ति ही

क्या है ? यह नाशवान है। इससे स्नेह करना व्यर्थ है। जैसे-जैसे आयु बढती है, वैसे-वैसे आयु घटती है। साधारण आदमियोकी तो बात ही क्या है, पर्वतके समान दृढ राजा भी काल रूपी वज्रके घातसे चूर्ण हो जाते हैं। इस लोकमे बडे महलोके स्वामी राजा, प्राणोसे प्यारी सुन्दर स्त्री, प्राण समान मित्र और पुत्र सब ही काल रूपी पवनसे सूखे पत्तोकी तरह उड़ जाते हैं। मनुष्योकी तो शक्तिही क्या, देवोके इष्टका भी वियोग होता है। देखते-देखते ही प्राणियोकी देह नष्ट हो जाती है। फिर भी यह मूढ मति जीव मृत्युसे नही डरता। कर्मके दृढ बन्धनोमे बन्धा यह जीव ससारमे अनेक दुःख भोगता है। जीवको एक इन्द्रीकी विषयासक्ति ही मौतके चुंगलमे फँसा देती है, फिर पुरुष तो पाच इन्द्रियोके जीव हैं। उनको ससारमे भटकानेके तो अनेक साधन हैं।

राजाने सोचा कि इन्द्रियोसे मिलनेवाला सुख तृप्तिका कारण नही है। यह विषयोका ईधन भोगाभिलाषाकी आगको भडकाता ही है, कम नही करता। विषय-भिलाषाको दबाने और इन्द्रियोको जीतने से ही विषयाग्नि बुझती है। ऐसा सोचते-सोचते राजाका मन ससारसे विरक्त हो गया। राजा सुव्रतनाथने असार सुखको त्याग कर मोक्ष मार्गपर चलने का निश्चय किया। राजा मुनि सुव्रतनाथको अपने आप ही बोध प्राप्त हुआ।

अब राजा मुनि सुव्रतनाथने अपने सुव्रत पुत्रका राज्याभिषेक किया। इधर सुव्रत राजसिहासनपर बैठे और उधर मुनि सुव्रत नाथ ससार तजकर तपके लिए वनको चल पडे। उन्होने स्वय अपने हाथोसे अपने केशोका लोच किया। अब उनका तप कल्याणक आरम्भ हो गया। उनके घोर तपसे कर्म मल कट गये। उन्होने तेरह महीने तप किया। इसके पश्चात् उन्हे मगसिर सुदी पचमीके दिन केवल ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। इसे ही ज्ञान कल्याणक कहते हैं। केवल ज्ञानकी प्राप्तिसे वे समस्त लोकालोकको प्रत्यक्ष देखने लगे। इस शुभ अवसरपर सबने उनकी पूजा

की । अव वे सर्वज्ञ हो गये । तीर्थंकरोंके प्रवचन मण्डप को समवसरण कहते हैं । उसमें सभी जीव-जन्तु आपसी वैर-भावको छोड़कर भगवानका कल्याणकारी उपदेश सुनते हैं ।

तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथके बड़े गणधरका नाम विशाखा था । उन्होने भगवानसे धर्मोपदेश देनेकी प्रार्थना की और उन्होंने महाव्रत रूप मुनि धर्म और अणुव्रतरूप श्रावक (गृहस्थ) धर्मको वताया । ससारके जीवोको अहिसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और चोरी न करनेका उपदेश दिया । तीर्थंकर मुनिसुव्रत नाथ माघसुदी तेरसके दिन पिछले पहर सम्मेद शिखरसे मोक्ष गये ।

: ३ :

राजा वसु और पर्वत-नारद विवाद

मुनि सुव्रतनाथका पुत्र सुव्रत काम, क्रोध, लोभ और मद आदि को वशमे करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको साधता हुआ राज्य करने लगा। फिर वह अपने पुत्र दक्षको राज्य सौप कर अपने पितासे जिन दीक्षा लेकर मोक्षको गया।

राजा दक्षकी रानीका नाम इला था। उनके एलय पुत्र और मनोहरी पुत्रीने जन्म लिया। वे पुत्र और पुत्री महा रूपवान और गुणवान थे। पर राजा दक्ष जैन धर्मसे विमुख होकर मिथ्या मार्गपर चलने लगा। इससे रानी इला अपने पुत्र एलयको साथ लेकर देश-देशान्तरमे घूमती हुई एक जगह पहुँची। वहा उसने एला वर्धन नगर बसाया। एलयने भी अग देशमे ताम्रलिप्त शहर बसाया और नर्मदा नदीके किनारे महिष्पती नगरी बसायी। राजा दक्षके बसाये हुए ये दोनो नगर बडे सुन्दर और प्रसिद्ध थे।

राजा दक्ष अपने पुत्र कुणिमको राज्य सौप कर तप करने बनमे चला गया। कुणिमने विदर्भ देशको जीता और नर्मदाके किनारे कुण्डलपुर नगर बसाया।

इस प्रकार इस वशमे अनेक राजा हुए। फिर इसी वशमे एक राजा अभिचन्द्र हुआ। अभिचन्द्रने विध्याचलकी पीठ पीछे वेदीपुर नगर बसाया और सुक्तिमती नदीके किनारे सुक्तिमती पुरी बसाई। राजा अभिचन्द्रका विवाह उग्रवशी राजाकी राजकुमारी वासुमती से हुआ था, जिससे बसु नामका पुत्र हुआ। राजा वसु बडा प्रसिद्ध राजा हुआ। उसके समयकी नीचे लिखी घटना भी प्रसिद्ध है।

सुक्तिमती पुरीमे शास्त्रोंका पाठी एक प्रसिद्ध ब्राह्मण क्षीर-कदव रहता था। उसकी पत्नीका नाम स्वस्तिमती था। वह शास्त्र पाठी ब्राह्मण बहुत से शिष्योको विद्या पढाता था। यो तो उसके बहुतसे शिष्य थे, परन्तु उनमे तीन शिष्य मुख्य थे, जिनके नाम राजपुत्र वसु, क्षीरकदवका पुत्र पर्वत और ब्राह्मण नारद। गुरुने इन तीनो शिष्योको शास्त्रके रहस्यमे प्रवीण किया और इनको आरण्यक नामका शास्त्र भी पढाया।

उस समय वहा आकाशगामी चारण मुनि आकाशमे बिहार करते थे। तब उन गुरु-शिष्योके पढने की ध्वनि सुनकर मुनिने अपने एक बडे ज्ञानी शिष्य मुनिसे पूछा, "इनमें एक गुरु है और तीन शिष्य हैं। इनमे से कौन स्वर्ग लोकको जायगे और कौन नरक जायगे ?" तब शिष्यने उत्तर दिया, "क्षीरकदव गुरु और नारद शिष्य स्वर्ग जायगे और राजपुत्र वसुदेव और अध्यापक पुत्र पर्वत नरक जायगे।" मुनि तो तत्काल ही आगे चले गये पर गुरु क्षीरकदव मुनिके वचन सुनकर ससारसे भयभीत और विरक्त हो गया। गुरु क्षीरकदव अपने शिष्योको घर जानेकी आज्ञा देकर स्वयम् उन मुनियोको ढूढने वन चला गया।

ब्राह्मणकी पत्नी स्वस्तिमतिने अपने पति क्षीरकदवके वापस न आनेपर चिन्तित होकर शिष्योसे पतिके न आनेका कारण पूछा। शिष्योने गुरुआनीको बताया कि गुरुजीने हमें घर जाने की आज्ञा देकर भेज दिया है और स्वयम् भी पीछे आते होगे। यह उत्तर सुनकर स्वस्तिमतीको तसल्ली हो गई। पर जब एक दिन-रात बीतने पर क्षीरकदंब घर न लौटा, तब उसकी पत्नी समझ गई कि अवश्य ही उसके पतिने जिन दीक्षा लेली होगी। वह बड़ी चिन्तित हुई और रात भर रोती रही। प्रात काल उसने अपने बेटे पर्वत और नारदको क्षीरकदवको ढूँढने वनकी ओर भेजा। वनमे फिरते-फिरते उन्होने देखा कि क्षीरकदंब महामुनिके निकट साधु बनकर शास्त्र पढ रहा है। गुरुका पुत्र पर्वत तो पिताको

साधु बना देखकर उलटे पाव माके पास आगया और उसे सब हाल कह सुनाया। परन्तु नारदने अति विनयसे मुनि महाराज और अपने गुरु क्षीरकदबको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर उसने मुनि महाराजसे कुछ व्रत लिये और उन्हे नमस्कार करके लौट आया। नारद अपनी शोकातुर गुरुआनीको धैर्य बन्धाकर अपने स्थानपर चला गया। यह नारद बडा निर्मल चित्त था।

कुछ समय पश्चात् राजा अभिचन्द्रने ससारसे विरक्त होकर अपने पुत्र वसुको राज्य देकर जिन मुनिकी दीक्षा लेली और तप करने बनमे चला गया। राजा वसु राजनीतिमे बडा निपुण था और वह बड़ी कुशलतासे राजकार्यको चलाने लगा। राजा वसु कुछ प्रपची था। उसने स्फटिक मणिका एक ऊँचा सिहासन बनवाया और उस पर बैठा हुआ राजा वसु ऐसा लगता था, मानो कि वह सत्यके प्रताप से पृथ्वीसे अधर बैठा हो। इससे उसकी कीर्ति ससारमे फैल गई कि राजा अपने धर्मके प्रसादसे पृथ्वीसे अधर विराजते हैं। स्फटिक मणिके सिंहासनका रहस्य किसीने नही जाना, उसके प्रपच-को लोगोने सत्य समझा।

राजा वसुके दो रानिया थी, एक इक्ष्वाकुवशकी राजकुमारी थी और दूसरी कुरूवशकी राजपुत्री। उनसे राजा वसुके दस पुत्र हुए, जो शास्त्र विद्यामे बडे निपुण और राजप्रशासन कार्यमे बडे कुशल थे। ये दसो पुत्र राजकार्यमे पिताका अच्छी तरह हाथ बटाते थे।

एक दिन नारद गुरु प्रेम वश अपने शिष्यो सहित अपने गुरुके पुत्र पर्वत और गुरुआनी स्वस्तिमतीका सुख-समाचार जानने और कुशल-मगल पूछने उनके घर आया। पहले तो नारदने उसका और गुरुआनी स्वस्तिमतीका कुशल मगल पूछा, पर परस्पर कुछ बातचीतके बाद ही नारदने देख लिया कि पर्वतको अपनी विद्याका बड़ा अभिमान है। वह वेदार्थका भी व्याख्यान कर रहा

था। तभी वह नारदसे "अजैर्यष्टव्य" इस वेद वचनका अर्थ करने लगा। उसने कहा, 'अजा बकरी का बेटा बकरा है। स्वर्गाभिलाषी द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य लोग उनका यज्ञ करे।"

नारद उसके मुँहसे ऐसा अयोग्य तथा पापपूर्ण अर्थ सुनकर कहने लगा, "विद्वान तथा भद्र पिताके पुत्र ऐसा अयोग्य, युक्ति-हीन तथा शास्त्रविरुद्ध अर्थ तूने कहा से सीखा? यह सम्प्रदाय विपरीत व्याख्या तेरे पास कहा से आई ? मेरा और तुम्हारा गुरु तो एक ही था और उसने सदा हमे धर्मका उपदेश ही दिया। हमारे गुरु क्षीरकदब तो अज शब्दका अर्थ तीन वर्षकी वह शालि अर्थात् जो है, जो बोने से न उगे, करते थे और उसका होम करने को कहते थे। यही अर्थ बडे पुरुष और विद्वान सदा करते आये हैं। फिर तू यह विपरीत पापपूर्ण व्याख्यान कैसे करता है ?"

नारदकी युक्तियुक्त तथा शास्त्रानुकूल बात सुनकर भी हठी तथा अभिमानी पर्वत अपने अर्थपर डटा रहा। जब दोनोमे इस अर्थपर वाद-विवाद बढ गया, तो पर्वतने कहा, कि यदि इस विवादमे तू जीते और मैं हारू तो मैं अपनी जिह्वाको छेद दूंगा। नारदने विवादमे न पडनेको कहा, पर पर्वत नही माना। दोनोमे यह निर्णय हुआ कि राजा वसुके सामने वे अपना-अपना पक्ष पेश करें और जो निर्णय वह दे, वह दोनोको मान्य होगा।

नारद तो अपने स्थानपर चला गया और पर्वतने सारी बात अपनी मासे कह सुनाई। स्वास्तिमती बडी विदूषी थी। वह अपने बेटेकी बात सुनकर बडी दुखी होकर उसकी निन्दा करती हुई कहने लगी, "तू विपरीत मार्गी है। तेरा पिता समस्त शास्त्रोको जाननेवाला इस वाक्यका वही अर्थ करता था जो नारद करता है।"

पर्वतने माकी बात न मानी। उसने माको राजा वसुके पास जाकर गुरु दक्षिणामे उसके पक्षमें निर्णय देनेको कहा। मां भी प्रात. राजा वसुमे अपने बेटेका पक्ष लेने को कहने गई। राजा-

ने गुरुआनीका बडा आदर किया और आने का कारण पूछा । तब उसने पर्वत और नारदके विवादकी सब बात राजासे कह सुनाई और गुरु दक्षिणा मागी। स्वास्तिमतीने राजासे कहा, "राजन् ! आप शास्त्रकी बात जानते हो । बात तो नारदकी सत्य है, परन्तु आप पर्वतका पक्ष लेकर उसके वचनको प्रमाणित करना, नारदके वचनको नही ।"

राजा वसुका बुरा होनहार था । उसने धर्म-अधर्म और न्याय-अन्यायपर दृष्टि न रखकर अपने कर्त्तव्यको भूलकर गुरुआनीको गुरुदक्षिणामे पर्वतका पक्ष लेने का वचन दिया ।

राजा वसुके दरबारमे पर्वत और नारद अपना विवाद लेकर राजाके निर्णयके लिए आये। राजा सिहासनपर बैठा था । सभामे मन्त्रियोके अतिरिक्त बडे-बडे विद्वान, वेदपाठी ब्राह्मण और कमण्डल-जटा धारी तपस्वी बैठे थे। पर्वत और नारद राजाको आशीर्वाद देकर सभामे अपने स्थानपर बैठ गये । फिर ज्ञान और आयुमे बडे विद्वान राजासे कहने लगे, "हे राजन् ! नारद और पर्वत दोनो पण्डित और शब्द शास्त्रके जाननेवाले आज अपना विवाद लेकर आपके सामने आये हैं । कुछ शब्दोके अर्थपर इनका मतभेद और विवाद है । आप भी वेदोके अर्थके ज्ञाता हैं । आप सभी सम्प्रदायोको जाननेवाले हैं। इस लिए आप इसके पक्ष-विपक्षकी युक्तिया सुनकर अपना निर्णय दे, जिससे सबको सत्य बात मालूम हो जाय ।"

राजा वसु तो पहले से ही पर्वतका पक्षपाती था । इसलिए पर्वतने बडे गर्वसे अपना पक्ष पेश किया। वह कहने लगा, "महा-राज ! वेदोमे अजका अर्थ बकरा है । ससारमे भी यही अर्थ प्रसिद्ध है । वेदोमे कहा है कि स्वर्गका अभिलापी जो "अग्निहोत्रं जुह्यात्" कहा है, उसका अर्थ भी "अग्नि मे होम करो है ।" इससे अनादिसे अजका होम है । यह वेदवाक्य है ।" फिर पर्वत कहने लगा, "पशु-को अग्निमे होमने से महा दु ख होता है—यह आशका नही करनी

चाहिये । मन्त्रके प्रभावसे पशुको पीडा नही होती । यज्ञसे प्रत्यक्ष सुखकी अवस्था होती है । इतना ही नही, जीव तो महा सूक्ष्म है । इसलिए वह अग्निमे नही पडता । मन्त्रोके प्रतापसे होममे जीव नही गिरता, जीव तो अमर है । देहके जो अग अग्निमे गिरते हैं, वे अपने-अपने देवताओको जाते हैं । मन्त्रमे होम किये पशु स्वर्ग लोकके सुखको पाते हैं । जैसे यज्ञको करनेवाला बहुत काल स्वर्गमें सुख पाता है, वैसे ही ये पशु भी स्वर्गसुख भोगते हैं ।" पर्वत अपने पक्षमे युक्तियां देकर अपने स्थानपर बैठ गया ।

नारद भी वड़ा विद्वान, श्रावकके व्रतोको पालनेवाला और विचक्षण व्राह्मण था । वह समस्त सभा और राजाको सम्वोधन करके कहने लगा, "आप सव वुद्धिमान हैं । मेरी वात साव-धान होकर सुने । पर्वतने अन्याय रूप जो वात कही है, उसे आपने सुना है । मैं उसका खण्डन करता हू । अज शव्दके अनेक अर्थ हैं । इमका एक अर्थ करना व्यर्थ है । जैसे हरि शव्दके अनेक अर्थ इन्द्र, नारायण, सिह और मर्कट हैं, वैसे ही अज शव्दके भी कई अर्थ है । पर्वतने अज शव्दका जो बकरा अर्थ किया है, वह अर्थ यहा नही लगता । यहा अज शव्दका अर्थ वह तिवर्षा जौ है, जो वीज अकुर शक्तिसे रहित हो और न उगे, उसे अज कहते हैं । उससे ही होम करने को कहा गया है । भगवानकी पूजाका नाम यज्ञ है और पूजामे जीवधारी सामग्री नही पडती, अचित्त सामग्री ही पडती है । इस विधानसे किया होम स्वर्ग सुख-को देनेवाला होता है, दूसरा नही । भगवान वीतराग देव मुक्ति-मार्गके उपदेशक ससारसे सवको पार करनेवाले हैं । उसके अनन्त नाम ब्रह्मा, विष्णु, ईश, सिद्ध और वुद्ध आदि हैं । उसके प्रसादसे सवको सुख होता है । यज्ञोमे पशु होमने की वात तो दूर, आटेका पशु भी वनाकर उसकी होम न करना चाहिये । वुरे परिणामो अर्थात भावोसे पाप और अच्छे परिणामोसे पुण्य होता है । और पर्वतने जो यह कहा कि मन्त्रके प्रभावमे पशुको दुःख नही होता,

यह भी ठीक नही है। दु खके बिना मृत्यु होता ही नही। जो मृत्यु है, वही दु ख है।" इससे आगे फिर नारदने पर्वतकी इस युक्ति "आत्मा सूक्ष्म् है, वह् मरती नही," का खण्डन करते हुए कहा, "पर्वतकी यह युक्ति भी गलत है। आत्मा अविनाशी और अमूर्तिक है। न सूक्ष्म् है, न मोटी है। परन्तु शरीरके सम्बन्धसे आत्मा सुक्ष्म या स्थूल दोनो प्रकारकी होती है। जैसे दीपकका प्रकाश अपने स्थानके समान छोटा-बडा होता है, वैसे ही आत्मा अपने शरीरके समान छोटी-बड़ी होती है। चीवटीकी आत्मा और हाथी की आत्मा तो एक समान है, पर शरीरके अनुपातसे छोटी-वडी बन जाती है।, आत्माके इस देहका वियोग ही उसका मरण है। इसलिए मन्त्र, तन्त्र, शस्त्र, विष और अग्नि आदिके योगसे इसकी देह छूटने से दु.ख ही है। पर्वतने यज्ञका फल स्वर्ग बताया है। जीव की हिंसासे स्वर्ग कैसे मिल सकता है ? यदि हिंसा करनेवाले स्वर्ग जायगे, तो फिर नरक कौन जायगा ? सुखकी प्राप्तिका कारण धर्म है। और धर्म दया रूप है। पशुयज्ञ करनेवाले को न दया है, न धर्म।"

इस तरह नारदने पर्वतकी सभी युक्तियोका खण्डन कर दिया। सभामे दोनो विद्वानोके वाद-विवादको सुनने और उसकी परीक्षा करनेवाले धुरधर विद्वान वैठे थे। उन्होने राजा वसुसे पूछा, "हे राजन् ! आपने क्षीरकदबसे इस वाक्यकी जो व्याख्या सुनी हो, उसके अनुसार अपना निर्णय दे।" पर वह मूर्ख दुष्ट बुद्धि पक्षपाती राजा वसु गुरुके सत्य वचनको जानते हुए भी कहने लगा "हे सभाके विद्वान सदस्यो ! नारदने जो कहा है, वह तो युक्तिपूर्ण है, परन्तु पर्वतने जो कुछ कहा है, वह गुरुकी आज्ञाके अनुसार प्रमाण रूप है। राजाके मुखसे ऐसे पक्षपातपूर्ण निर्णयके निकलते ही राजाका स्फटिक सिंहासन पृथ्वीमे धस गया और राजा वसु पाताल मे गड गया। सच है पापसे पतन ही होता है। ऐसा अन्यायपूर्ण निर्णय देने से राजा वसु सातवे नरकको गया। यदि ऐसा पक्षपाती अन्यायी राजा नरक न जाय, तो और कौन जाय ? जनता भी

"हाय ! हाय ! और धिक्कार-धिक्कार" कहने लगी । उसने महा दुष्ट पर्वतको धिक्कार देकर नगरसे निकाल दिया । समस्त जनता-ने सत्यवादी निष्कपट नारदकी दिल खोल कर प्रशसा की ।

इसके वाद सभी विद्वान और नारद आदि अपने-अपने स्थानोको चले गये ।

पण्डित पर्वत सुक्तिमती पुरीसे निकाले जाने के बाद अनेक स्थानोमे घूमता-फिरता एक स्थानपर पहुचा । वह जनताके हाथो अपने निरादर और अपमानको न भूल सका । सयोगसे उसकी भेट महा काल नामके एक क्षुद्र देवसे हुई । इस देवके परिणामो और स्वभावमे निर्दयता और जीवोसे द्वेष भरा हुआ था । उसका भी पतन हुआ था । जैसा वह था, वैसा ही उसे पर्वत मिल गया। उन दोनोमे शीघ्र मित्रता हो गई । उन दोनोने मिलकर हिसा-का शास्त्र वनाकर हिसाका उपदेश दिया । इस हिसा पापके फलस्वरूप पर्वत सातवे नरकमे गया, जहा राजा बसु पहले ही पहुच चुका था । इस प्रकार दोनो वहा मिल गये । पापी पापका प्रत्यक्ष फल पाते है, फिर भी वे पापको नही छोडते । दूसरे आदमी भी उनसे कम शिक्षा प्राप्त करते है ।

नारद अपने धर्मकार्यके फलसे स्वर्ग मे गया । नारदके समान सबको धर्मके काममे सदा सावधान रहना चाहिये ।

४

राजा अधकवृष्टिके जन्म-जन्मान्तरकी कथा

पहले बताया गया था कि राजा वसुकी दो रानियोसे उसके दस पुत्र हुए थे, जो राजकाजमे राजाको सहायता देते थे। इनमे दसवे पुत्रका नाम वृषध्वज था। वह मथुरामे जाकर राज्य करने लगा। इसके वशमे अनेक छोटे-बडे राजा हुए। वे सब राजा बीसवे तीर्थंकर मुनिमुव्रत नाथके तीर्थमे हुए। फिर इक्कीसवे तीर्थंकर नमिनाथ हुए। उनके समयमे हरिवशमे राजा यदु बडे प्रसिद्ध राजा हुए थे, और उसका व श जगतमे यदु वश नामसे विख्यात हुआ। इस राजाका पुत्र नरपति हुआ। उसके दो पुत्र शूर और सुवीर राजा हुए। वे दोनो भाई बडे शूरवीर थे। बडे भाई शूरने छोटे भाई सुवीरको मथुराका राज्य सौप कर स्वयम् कुसम्म्य देशमे शौर्यपुर नगर बसाया। राजा शूरके अन्धकवृष्टि आदि कई पुत्र हुए। और मथुराके राजा छोटे भाई सुवीरके भोजक वृष्टि आदि महा योद्धा पुत्र हुए। कुछ वर्षोके पश्चात् राजा शूर अपने ज्येष्ठ पुत्र अन्धकवृष्टिको और राजा सुवीर अपने पुत्र भोजक वृष्टिको राज सौप कर एक महामुनि सुप्रतिष्ठित स्वामीके पास साधु बन गये। राजा अन्धक वृष्टिके घर सुभद्रा रानीसे दस पुत्र हुए, जिनमे से बडे पुत्रका नाम समुद्रविजय था। राजा अन्धकवृष्टि-के दो राजकुमारिया कुन्ती और माद्री हुई। राजा सुवीरके पुत्र भोजक वृष्टिके हा रानी पद्मावतीसे तीन पुत्र हुए। यह राजा वसुके दसवे पुत्र वृषध्वजका विस्तार कहा। इसी प्रकार राजा वसुके नौ वेटोके व श फैले।

महा मुनि सुप्रतिष्ठित रमते-रमते शौर्यपुर नगरके उद्यानमे

एक पहाडीपर आविराजे। जब वे रातके समय वहां तप कर रहे थे, तब सुदर्शन नामके एक यक्ष देवने अपने पूर्व जन्मके वैरके कारण मुनि सुप्रतिष्ठितको आग, हिम और मेघपातसे बड़े कष्ट दिये, पर महा मुनिने उन सब कष्टोको बडी शान्तिसे सहन कर लिया। इस तपसे उनके कर्मोका विनाश हो गया और उन्हे केवल ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया। इसपर जगतमे बडा हर्ष हुआ।

शौर्यपुरका राजा अन्धकवृष्टि सपरिवार केवल ज्ञानी सुप्रतिष्ठित महा मुनिके दर्शनके लिए उद्यानमे आया और उनसे धर्म उपदेश सुना। अपने उपदेशमे उन्होने मुनियो और गृहस्थोके धर्मका स्वरूप बताया। फिर राजा अन्धक वृष्टिने उनसे अपने पूर्व जन्मोका वृत्तान्त पूछा। केवल ज्ञानी सुप्रतिष्ठित मुनि राजाके पूर्व जन्मोका बडा रोचक हाल उनसे कहने लगे, "हे राजन्! अयोध्यामे राजा रत्नवीर राज करते थे। उसके राजमे सुरेन्द्रदत्त नामका एक सेठ था। यह कहानी बहुत पुरानी पहले तीर्थंकर आदिनाथके वादकी और दूसरे तीर्थकर अजितनाथके जन्म लेने से पहले की है। सेठ सुरेन्द्रदत्तके धनका पार न था। वह जैन धर्मका पक्का अनुयायी था। उस सेठका मित्र रुद्रदत्त नामक ब्राह्मण था। वह सेठ अष्टमी, चौदश, दूसरे पर्वो पर और वर्षाकालके चातुर्मास मे पूजा आदि पर बडा खर्च करता था।

"एक बार जब वह सेठ व्यापारके लिए विदेश गया, तो उसने अपने मित्र रुद्रदत्तको बारह वर्षके लिए पूजा आदि के खर्चके लिए प्रर्याप्त धन दे दिया। रुद्रदत्तने जूवे, और भोग-विलास आदि मे सब धन नष्ट कर दिया और सेठके कहे अनुसार पूजा आदि मे कुछ भी खर्च न किया। जब रुद्रदत्तने समस्त धनको नष्ट कर दिया तो वह अपने व्यसनोको पूरा करने के लिए चोरीमे धन लाने लगा। कोतवालने उसे कई बार पकड़ा और छोड़ा। फिर

वह उल्कामुख वनमे जाकर डाकू-भीलोमे मिलकर उनके साथ बड़े डाके डालने लगा। उसने जनताको बडे कष्ट दिये। उसके डाकोसे सब जगह हाहाकार मच गया। अयोध्याके राजाके सेनापति अश्रेणिकने बहुतसे भील-डाकुओको मार दिया, जिनमे वह रुद्रदत्त ब्राह्मण भी मारा गया। इस प्रकार सेनापतिने जनताको डाकुओके कष्टसे छुटकारा दिलाया।

"पूजाके लिए दिये गये मित्रके धनको व्यसनादि मे नष्ट करने के पापके फलस्वरूप रुद्रदत्त मर कर सातवे नरकमे गया। नरकमे कष्ट भोगकर वहां से मरकर फिर अपने अनेक पापकर्मोके फलस्वरूप पशुगतियोमे गया। एक पाप ही जीवको बडा कष्ट देता है, पर जब जीव अनेक महा पाप करता है, तो उनका कष्ट तो उसे बड़े काल तक भोगना पडता है।

"रुद्रदत्तका जीव अपने पाप कर्मोंका फल भोगकर अपने किसी अच्छे कर्मके पुण्योदयसे हस्तिनापुरमे कापिष्टवायन ब्राह्मणके घरमे उसकी अनुमती स्त्रीसे गौतम नामका पुत्र हुआ। बाल्यावस्थामे ही गौतमके माता-पिता मर गये और उसने बडे कष्ट झेले। उसे खाने तक के लाले पड गये और वह भिक्षा माग कर अपना पेट भरने लगा। भिक्षाके लिए घूमते-घूमते एक दिन उसे नगरमे समुद्रदत्त नामके मुनि मिले। गौतम भी उनके पीछे-पीछे होलिया और उनके आश्रममे पहुच गया। गौतमने मुनि समुद्रदत्तसे हाथ जोड विनती की, 'हे नाथ! मुझे भी अपने जैसा बना लो और मेरा उद्धार करो।" मुनिको उस पर दया आगई और उसने यह समझकर कि अब उसके अच्छे दिन आये हैं, उसे भी मुनि-दीक्षा दे दी। गौतम अब जी-जानसे घोर तप करने लगा। गुरु समुद्रदत्त और शिष्य मुनि गौतमने अपने तपके फलसे स्वर्गमे जन्म लिया।"

महामुनि सुप्रतिष्ठित कहने लगे, "हे राजन् अधकवृष्टि! गौतममुनिका जीव तो तू है और मैं तेरे गुरु समुद्रदत्त मुनिका जीव हू।"

अपने पहले जन्मोका वृत्तान्त सुनकर, राजा अन्धकवृष्टिने अपने दस पुत्रोके पूर्व जन्मोकी बात भी सुपतिष्ठित मुनिसे पूछी ।

महामुनि सुप्रतिष्ठितने कहा, 'हे राजन् ! अब तू अपने दस पुत्रोके पूर्व जन्मको बात भी सुन । भद्रलपुर नगरमे राजा मेघरथ अपनी रानी सुभद्रा सहित रहता था । उसका दृढरथ पुत्र था । उसी नगर मे धनदत्त सेठ भी अपनी पत्नी नन्दयशा सहित रहता था । सेठके दो पुत्रिया सुदर्शना और सुज्येष्ठा थी और नौ पुत्र थे ।

"एक दिन उस नगरमे एक मुनि स्वामी सुमन्दिर आ गये । उनके उपदेशके प्रभावसे राजा मेघरथ और सेठ धनदत्त अपने नौ वेटो सहित सब साधु बन गये । मुनिके सघमे सुदर्शन आर्यिका भी थी । उससे रानी सुभुद्रा और सेठकी दोनों बेटियो सुदर्शना और सुज्येष्ठाने भी दीक्षा ले ली । सेठानी नन्दयशा उस समय गर्भवती थी । इसलिए उसने दीक्षा न ली । उसके धनमित्र पुत्र हुआ । फिर वह भी साध्वी बन गई । एक दिन अपने नौ पुत्रोको साधुवेश मे ध्यान करते देखकर साध्वी नन्दयशाको वडी प्रसन्नता हुई । धर्म स्नेहसे उसने ऐसी भावना की, कि अगले जन्मसे भी ये मेरे पुत्र हो । सुदर्शना और सुज्येष्ठा दोनो साध्वियोने भी उनको देखकर यही चाहा, कि अगले जन्मने सब हमारे भाई हो । तप करने के बाद ये बारह जीव अर्थात मा, दो पुत्रिया और नौ पुत्र एक ही स्थान पर जन्मे ।"

महामुनि सुप्रतिष्ठितने आगे कहा, "हे राजन् अन्धकवृष्टि ! फिर आगे जन्म लेने के पश्चात् नन्दयशाका जीव तो तेरी रानी सुभद्रा हुई और नन्दयशाकी दोनो पुत्रिया सुदर्शना और सुज्येष्ठाके जीव तेरी राजकन्याए कुन्ती और माद्री हुई और नन्दयशा के नौ पुत्रोके जीव तेरे समुद्रविजयादि नौ पुत्र हुए है ।"

इस प्रकार इन बेटे-बेटियोके पूर्वजन्मकी बात सुनकर

राजा अन्धकवृष्टिने उत्सुकतासे अपने दशवे पुत्र बसुदेवके पूर्वजन्मकी कथा मुनि सुप्रतिष्ठतसे पूछी।

मुनि सुप्रतिष्ठित कहने लगे, "हे राजन्! इस ससारमे मनुष्य देह पाना बडा कठिन है। वसुदेवका जीव मगध देशमे सालिग्राममे एक अति दरिद्री ब्राह्मणके घर पुत्र हुआ। उसका नाम नन्दिसेन रखा गया। जब वह गर्भ मे आया, उसके पिताका देहान्त हो गया और बाल्यावस्थामे ही उसकी माकी मृत्यु हो गई। यह अनाथ हो गया। उसकी मावसीने उसको पाला। दुर्भाग्यबश आठ वर्षकी आयुमे उसकी मावसी भी चलती बनी। इस प्रकार उस वच्चेको थोडा-सा भी सुख न मिला। फिर वह बालक अपने मामाके घर राजगृहमे आ गया और उसकी मामीने उसका प्रतिपालन किया। अनाथ जीवनने इस लडकेका हाल-वेहाल कर दिया। महा मलीन और दुर्गंधपूर्ण शरीर। रुखे-सूखे विखरे बाल, मैले-कुचैले वस्त्र। उसके गाल पिचके-पिचके और आखे पीली-पीली अन्दरको धसी हुई। उसके मामाका नाम दमरक्त था। दमरक्तकी एक लड़की थी। जब यह लडका नन्दिसेन और दमरक्तकी लडकी कुछ बडे हुए, तो उस लडकेने अपने मामाकी लडकीसे विवाह करने की बात कही। लडकीको इस मलीन दुर्गंधपूर्ण लडकेसे पहले ही घृणा थी। विवाहकी बात सुनकर तो उसने उस लडकेको घरसे ही निकलवा दिया। उसके मनमे अपने जीवनसे बडी ग्लानि हुई। अपने दूर्भाग्यकी आगसे जलता हुआ वह गिरकर आत्मघात करने के लिए वाभार पर्वतपर चढ गया।

"वहा पर्वतपर एक महामुनि अपने शिष्य मुनियो सहित तप कर रहे थे। उन शिष्योमे शख और निर्नामिक दो मुनि थे। मुनिने शख और निर्नामिकको इस लडकेकी तरफ सकेत करते हुए कहा, "देखो, यह लडका अगले जन्ममे तुम्हारा पिता होगा।" इस पर शख मुनिने उसे गिरने और आत्महत्या करने से रोका और

धर्मका उपदेश दिया। फिर शख उसे अपने गुरुके पास ले गया। गुरुने उसे तसल्ली देते हुए निराशाको छोडकर अपने जीवनको सुधारने का उपदेश दिया। गुरुके उपदेशको सुनकर इसने अपने जीवनको सुधारने की ठानी। इसने धर्म-अधर्मको सुनकर गुरुसे चरित्रपालनके व्रत लिये। नदिसेनने जैसा कठोर तप किया, वैसा तप कम ही आदमी कर सकते हैं। वह भूख-प्यास, गर्मी-सरदी, डास-मच्छरके और तरह-तरहके कष्ट सहने लगा। मुनि संघमें मुनिसे लेकर आचार्य तक जो अनेक पद धारी साधु थे, उन सबकी सेवा वह दिन रात करता। साधुओकी सेवा-सुश्रुषा ही उसका कर्म वन गया। साधुओकी इस सेवाको ही शास्त्रोमे वैयावृत कहा गया है। इस वैयावृतको वडा तप माना गया है। रूग्न साधुओकी सेवा करना आसान काम नही है। विना घृणा उनके मल-मूत्रको उठाना और घाव आदिको साफ करना भी वैयावृतमे आते हैं। सेवासे मेवा मिलती है। वैयावृत तपसे नन्दिसेनको महा लब्धि प्राप्त हुई, अर्थात् जो कुछ वह सोचे वही उसे मिल जाय। लब्धि प्राप्त होने पर भी नन्दिसेनने इस वैयावृतको न छोडा। इसके वैयावृत की चर्चा मध्यलोक और इन्द्रलोक तक में होने लगी। एक दिन इन्द्रने सभामे नन्दिसेनके वैयावृतकी वडी प्रशसा की। इन्द्रने कहा कि जो गृहस्थ होकर दूसरोंकी हर प्रकार सेवा करता है, वह वड़ा है। और नन्दिसेन तो साधु होकर भी मुनि-साधुओकी खूब सेवा करता है। इस लिए वह प्रशंसनीय है। नन्दिसेनकी प्रशसा सुनकर एक देव उसकी परीक्षा करनेके लिए मध्य लोकसे नन्दिसेनके पास आया। देवने कहा, "हे मुनि नन्दिसेन! मैं पीड़ासे ग्रस्त हूँ, रूग्न हूँ। मुझे रोगमुक्त करो। मुनि नन्दिसेनने गृहस्थोंको कहा कि इसको भोजनमे वढ़िया चावल, मूंगकी दाल, दूध और घी दो। वह रोगी देव उस भोजनको न पचा सका और आश्रममें नन्दिसेनके निकट आकर उसने सब खाया-पिया वमन कर दिया। उसका समस्त शरीर गन्दा हो गया। पर नन्दिसेन मुनिने जरा भी घृणा या संकोच

किये बिना उसके समस्त शरीरको धोया और अपने हाथोसे साफ किया। देवने देखा कि इन्द्रने जैसा कहा था, नन्दिसेन उससे भी बडा वैयावृती है, सेवा धर्ममे प्रवीण है। देवने कहा, "हे ऋषीश्वर ! वैयावृतमे आप अद्वितीय हो। आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ।"

" वह देव इस प्रकार मुनि नन्दिसेनकी प्रशसा और नमस्कार करके वापिस देवलोक चला गया।

"नन्दिसेन घोर तप करके और अन्तमे छह महीने आहार आदि सब कुछ छोडकर स्वर्गमे गया। वहा से आकर यह जीव तेरे हां सुभद्रा रानीसे तेरा दसवा पुत्र हुआ है।"

राजा अन्धकवृष्टि इस प्रकार महा मुनि सुप्रतिष्ठितसे अपने बेटोके जन्म-जन्मान्तरकी कथाए सुनकर अपने राज भवनमे लौटा। उसके मनमें विरक्तिके भाव पैदा होगये। अपने वशके पूर्वगामी राजाओके समान उसने भी युवराज समुद्रविजयको राज सौप दिया और वसुदेवको उसके सरक्षणमे छोड दिया। फिर राजाने महा मुनि सुप्रतिष्ठितके पास आकर उनसे दीक्षा ली और साधु बन गया। जिस प्रकार अन्धकवृष्टिने सौर्यपुरका राज त्यागा, वैसे ही उसके छोटे भाई भोजक वृष्टिने मथुराका राज्य उग्रसेनको सौंप कर मुनिके महाव्रत धारण किये।

राजा समुद्रविजय पटरानी शिव देवी सहित सौर्यपुरपर राज्य करने लगा। उसके राजमे सभी सुखी थे। वह अपने छोटे भाईयोको सब प्रकार से योग्य बनाने लगा। छोटे भाई भी उससे बडे प्रसन्न थे।

: ५ :

वसुदेवका चरित्र

गौतम गणधर राजा श्रेणिकको वसुदेवका चरित्र कहने लगे, "हे राजा श्रेणिक ! सौर्यपुरमे राजा समुद्रविजयने राज करते समय अपने नौ छोटे भाईयोंमे से आठके विवाह कर दिये। वसुदेव का विवाह नही किया। वसुदेव शहरमे चारो तरफ रूप बदल-बदल कर घूमता रहता था। उसके रूप-सौन्दर्यकी कोई सीमा न थी। उसके साथी भी सभी रूपवान थे। वे सब जिधर जाते उधर ही स्त्री-पुरुष उन्हे देखते रह जाते। उनके इस तरह नगरमे घूमते रहने से जनताके घरोके सब काम ठप्प हो गये, क्योकि स्त्रियाँ और बालक अपने सभी कामोको छोडकर उन्हे देखने लगते। इस पर सौर्यपुरके कुछ मुखिया राजा समुद्रविजयके पास आकर निवेदन करने लगे, "हे राजन् ! आपके राजमे हम सभी प्रकारसे सुखी है। धन, धान्य और व्यापार आदिकी वृद्धि है। हमे किसी बातकी कमी नही है। पर हम आपसे अभय मागते हैं।" राजाने सबसे बडे मुखियासे बिना सकोच और भयके अपनी बात कहने को कहा। तब सबसे बड़े मुखियाने कहा, "हे राजन् ! वसुदेव अति सुन्दर और रूपवान है। जब वह शहरमे घूमने निकलता हैं, तब हमारी स्त्रिया अपने सब कामोको छोडकर उसे देखने लगती हैं, घरके सब काम-काज चौपट हो गये हैं। कुछके तो मन भी चलायमान हो जाते है। वसुदेव सुचरित्रवान है, उसमे कोई दोष नही। पर जैसे सूर्यको किसीसे द्वेष नही, पर उसकी गर्मीसे पित्तकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही यद्यपि कुमारमे कोई विकार नही है, पर उसके रूप-लावण्यके अतिशयसे स्त्रियोका चित्त चलायमान होजाता है। अब आप जो

उचित समझे करे, जिससे कुमारको सुख मिले और नगरकी व्याकुलता मिटे।"

"राजाने मुखियाओको वसुदेवको समझाने का आश्वासन देकर विदा कर दिया और फिर जब वसुदेव बडे भाईके पास आया, तब राजाने उसे अपने खाने-पीने की सुध रखने और बाहर न घूमते रहने को समझाया। राजा उसे अपने साथ अपनी रानीके पास ले गया और महलके उद्यानमे ही घूमने को कहा। वसुदेवने भाईकी बात मानकर बाहर घूमना-फिरना बन्द कर दिया और महल तथा उद्यानमे रहकर आनन्द मनाने लगा।

"एक दिन रानीकी कुब्जा नामकी एक दासी रानीके लिए सुगन्ध आदि लिये जा रही थी। वसुदेवने उससे वह सुगन्ध छीनली। तब वह क्रोधसे वसुदेवको ताना देती हुई कहने लगी, "तुम्हारी इन्ही चेष्टाओके कारण तो राजाने तुम्हे यहा महलमे बन्दी बना रखा है, तुम्हारा बाहर आना-जाना सब बन्द है। लोगोकी शिकायतपर ही राजाने तुम्हे यहा बन्द कर रखा है।" दासीकी यह बात सुनकर वसुदेव उदास होकर भाईसे छुटकारा पाने को तैयार होगया। वसुदेव एक नौकरको साथ लेकर छलसे रातके समय मन्त्र सिद्ध करने के बहाने घरसे निकल गया व एक मसान भूमिमे गया। वसुदेवने नौकरको तो एक जगह बिठा दिया और स्वय मसानमे कुछ दूर जाकर बैठ गया। फिर उसने एक मृतकको अपने वस्त्र और आभूषण पहिना दिये और वसुदेवने उस मृतकको आगमे डाल दिया। वसुदेवने नौकरको सुनानेके लिए जोर-जोर से कहा, "राजा निष्कपट है, वह मेरे पिता समान है। वह सुख से रहे। नगरके लोग भी सुखी और सन्तुष्ट रहे। जो हमारे शत्रु हैं वे भी सुखी रहे। हम तो अग्निमे प्रवेश करते हैं।" यह कहकर वसुदेवने दौडकर नौकरको ऐसा दिखाया, मानो वह स्वय अग्निमे प्रवेश कर रहा है। फिर वसुदेव वहा से छिप कर निकल गया। नौकरने समझा कि वसुदेव-

ने अग्निमे प्रवेश करके प्राण त्याग दिये ।.नौकर भागा-भागा शहर राजा समुद्रविजयके पास आया और सब हाल राजाको कह सुनाया। प्रात काल ही राजा अपने भाइयो, राजदरबारियो और शहरके लोगोको साथ लेकर रोते-रोते मसानमे वसुदेवकी चिताकी ओर आया। वहा भस्ममे वसुदेवके आभूषण आदि देख कर राजाने समझा कि वसुदेव अवश्य ही जल कर मर गया है। तब उसने बहुत रोते-रोते भाईकी अन्तिम क्रियाए की और पश्चाताप किया।

"वसुदेव ब्राह्मणका भेष भर कर पश्चिमकी ओर चल पड़ा। आगे जाकर स्वेदपुर नगर निवासी सुग्रीव नामके गधर्व विद्याके आचार्यसे सगीत कला सीखने लगा। सुग्रीव भी उसके रूपको देख-कर उसपर मोहित होकर उसे दिलसे सगीत विद्या सिखाने लगा। उसकी दो लडकिया सोमा और विजयसेना गधर्व विद्यामे बडी निपुण थी। उनके पिताकी यह प्रतिज्ञा थी, कि जो नवयुवक इन्हें गधर्व विद्यामें जीतेगा, उससे उनका विवाह करेगा। वसुदेवने दोनो लडकियोको सगीतमे पराजित करके उनसे विवाह किया और ससु-रालमे ही बडे आनन्दसे रहने लगा। वसुदेवकी दूसरी पत्नी विजय-सेनासे अक्रूर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर वसुदेव वहासे अकेला ही बिना किसीको कुछ कहे-सुने चला गया। वसुदेव शूरवीर और गुणवान था। उसे कही भी जाने मे डर न था।

"घूमते-घूमते वह एक सरोवरके किनारे आया। सरोवरमे उसने खूब क्रीडाए की और किनारे बैठकर जल तरग और मृदंग बजाये। बाजोकी मधुर ध्वनि सुनकर एक जगली हाथी जाग उठा और उसने वसुदेवपर आक्रमण किया। परन्तु वसुदेवने उसे शीघ्र वशमें कर लिया और उसके कुम्भ स्थल पर जा बैठा।

"तब वसुदेवके मनमे विचार आया, कि जंगलमे मेरे इस पराक्रमको कौन देखेगा? यदि मैं यही वीरताका काम सौरपुरमें करता, तो सारे नगरमे मेरी प्रशसा होती। तभी दो विद्याधर वहां

आकर वसुदेवको हाथीके मस्तकपर से उठाकर ले उडे । उन विद्याधरोके नाम अर्चिमाली और वायुवेग थे । उन्होने कुजरावर्ती नगरके बाहर एक वनमे अशोक वृक्षके नीचे वसुदेवको उतारा । फिर उन्होने वसुदेवको नमस्कार करके कहा, "स्वामिन्, यहाके राजा अशनिवेग विद्याधरकी आज्ञासे हम आपको यहा लाये हैं। उस राजाके एक सुन्दर पुत्री है। राजा उस पुत्रीका विवाह आपसे करेगा । यह कहकर एक विद्याधर तो वसुदेवके पास ही रह गया और दूसरा विद्याधर राजाको वसुदेवके लाने का समाचार सुनाने शहरमे चला गया । राजाके पास जाकर विद्याधरने वसुदेवके रूप, यौवन और वीरताकी प्रशसा की । राजाने उस विद्याधरको यह काम करने और शुभ समाचार सुनाने पर बडा पुरस्कार देकर विदा किया और स्वय वनमे जाकर वसुदेवको वडे आदर-मानसे नगरमे लाया । एक दिन शुभ महूर्तमे उसने वसुदेवसे अपनी श्यामा पुत्रीका विवाह कर दिया । विवाहके बाद वसुदेव और श्यामा बडे आनन्दसे वही विवाहित जीवन बिताने लगे । श्यामाने यह सोचकर कि उसके पतिको वीणा सगीतसे बडा प्रेम है, उसने सप्तश तत्री वीणा बजाई, जिसे सुनकर वसुदेवने बहुत प्रसन्नतासे उसे कोई वर माँगनेको कहा । श्यामाने अपने पतिसे यह वर माँगा, कि दिन-रात कभी भी वह उससे अलग न रहे । श्यामाकी यह बात सुनकर चचल और घुमक्कड स्वभाववाले वसुदेवने आश्चर्यसे इसका कारण पूछा ।

श्यामाने पतिसे कहा, "हे प्राण प्यारे ! इस वर मागनेका एक कारण है । अगारक नामका एक वैरी है । वह मौका पाकर तुम्हे ले उडेगा । इस बातकी भी एक कथा है, जिसे आप सुने । किन्नरगीत नगरमे विद्याघरोका राजा अर्चिमाली अपनी प्रभावती रानी सहित रहता था । उस राजाके दो पुत्र ज्वलनवेग और अशनिवेग थे । राजा बड़े पुत्रको राज्य और प्रज्ञप्ति विद्या और छोटे पुत्रको युवराज

पद देकर स्वामी अरिन्द मुनिसे दीक्षा लेकर साधु बन गया। राजा ज्वलनवेगके रानी विमलासे अगारक पुत्र हुआ और अशनिवेगके रानी सुप्रभाके मैं श्यामा पुत्री जन्मी। कुछ समय बाद राजा ज्वलनवेग अपने छोटे भाई अर्थात् मेरे पिता अशनिवेगको राज्य और अपने पुत्र अगारकको युवराज पद और प्रज्ञप्ति विद्या देकर स्वयम् मुनि बन गया। अगारकको यह व्यवस्था पसन्द न आई। उसने युद्धमे मेरे पिताको जीतकर राज छीन लिया। मेरा पिता राजभ्रष्ट होकर जरावर्त पट्टनमे है। हे प्राणपति! मेरा पिता बडा चिन्तित ऐसे रहने लगा, जैसे पिजरेमे पक्षी रहता है। एक दिन मेरा पिता कैलाश पर्वतपर गया जहा उन्हे अगिरि नामके त्रिकाल-दर्शी चारण मुनिके दर्शन हुए। उनको नमस्कार कर मेरे पिताने उनसे पूछा, "हे नाथ! मेरा पूर्व राज्य स्थान मुझे कैसे हाथ आयेगा?" तब मुनिने उससे कहा, "तेरी पुत्री श्यामाके पति द्वारा तुम्हे तुम्हारा राज्य प्राप्त होगा।" फिर मेरे पिताने मुनि महाराजसे पूछा, "मेरी पुत्रीका पति कौन होगा और वह कहा है?" तब साधुने उत्तर दिया, "जो युवक अलावर्त सरोवरके किनारे मस्त हाथीको वशमे करेगा, वह तेरी पुत्रीका पति होगा। मुनिका यह उत्तर सुनकर मेरे पिताने उस दिनसे दो विद्याधर मस्त हाथीको जीतनेवाले नव-युवकको लाने के लिए उस सरोवरके पास नियत किये। ये विद्याधर आपको देखने के बडे अभिलाषी थे, इसलिए आपको देखते ही वे आपको ले आये और सब मनोरथ सिद्ध हो गये। मुनियोके वचन कभी अन्यथा नही जाते। यह बात मेरे ताऊके लडके और मेरे पिताके राज्यको छीननेवाले अगारकने भी अवश्य सुनी होगी। वह क्रोधमे अग्निके समान जल रहा है। वह बडा कपटी है और महा विद्याके बलपर उद्धत है। आपको आकाश गामिनी विद्या आती नही। मैं उस विद्याको जानती हूं। इसलिए मेरे बिना अकेले मत रहना, वरना अंगारक मौका देखकर तुम्हे उडा ले जायगा।" अपनी पत्नी श्यामाके ये वचन सुनकर राजा वसुदेवने उससे कहा

कि हम तुम्हारे विना कभी अकेले न रहेंगे । इसके पश्चात् वे दोनो पति-पत्नी आनन्दसे सावधानतापूर्वक रहने लगे । वसुदेवने श्यामा-को गधर्व विद्या सिखाना भी आरम्भ कर दिया । होनहार वलवान होती है । एक रातको बहुत समय गये वसुदेव और श्यामा सो गये । उस समय शत्रु अगारकने आकर वसुदेवको श्यामाके पाससे उडाकर आकाशमे ऐसे ले उडा जैसे गरूड नागको ले उड़ता है । जब वसुदेवको चेतनता आई तो वह समझ गया कि उसे कोई आकाशमे उडाकर ले जा रहा है । वसुदेवने उससे उसका नाम और उडाकर लेजाने का कारण पूछा । वह समझ गया कि यह अगारक ही होगा । वसुदेवने उसे मारनेके लिए मुट्ठी बाधी, पर यह सोच कर उसे न मारा कि इससे तो दोनो नीचे गिर जायेगे । इतनेमे श्यामाकी आखे खुल गई । वह पतिको अपने पास न पाकर समस्त वात समझ गई । झट से वह एक हाथमे खडग और दूसरेमे ढाल लेकर अपनी आकाशगामिनी विद्याके बलसे अगारक ओर वसुदेवके पास पहुच गई । उस समय श्यामाका तेज, वीरता और पराक्रम देखने योग्य थे । उसने ललकार कर कहा, "हे दुराचारी ! हे चोर ! निर्लज्ज ! निर्दयी विद्याधर ! तु खडा रह । तू मेरे जीते जी मेरे प्राणनाथको क्यो हरता है ? तू हमारा राज्य छीनकर भी तृप्त न हुआ । सदा हमे दुःख देने मे उद्यमी रहा है । आज तुझे बहुत दिनोमे देखा है । अव मेरे आगे से जीते जी कैसे जायेगा ? मैं आज तुझे नही छोडूंगी । ऐसा कहकर वह म्यानसे तलवार निकाल उसके सिरपर आई । तव वह वैरी अपनी रक्षा करता हुआ कहने लगा, "हे श्यामा ! स्त्रीको मारने मे बडा पाप है । इसलिए पापिनी परे हट । प्रथम तो तुम स्त्री जाति हो, दूसरे मेरे चाचाकी वेटी हो । मैं तुम्हे कैसे मार सकता हूँ ? मेरे हाथ तुझे मारने को नही उठ सकते ।" इस पर श्यामा कडककर बोली, 'कौन भाई, कौन बहन ? जो अपना शत्रु हो, उसे मारने मे अपयश नही । सिंहनी और व्याघ्री भी स्त्री जातिकी हैं, परन्तु जब वे किसी सामन्तपर भी आक्रमण करती हैं, तो वह भी उनको

मारने को तैयार होजाता है। इसलिए तू वृथा ही न्यायकी बात कहता है। जो तेरेमे सामर्थ्य और शक्ति है, तो मेरेपर शस्त्र चला। तू हमारा वैरी है, मेरे पिताका शत्रु है और मेरे पतिका अपहर्ता है।" ऐसा कहकर श्यामाने उसका मार्ग रोक लिया। तब उसने श्यामापर तलवारसे वार किया। उन दोनोमे वह युद्ध हुआ कि तलवारसे तलवार बजने पर आग निकलने लगी। उनके युद्धको देखकर वसुदेवने मुक्के मार-मार कर उसका हाल-बेहाल कर दिया। तब अगारकने वसुदेवको छोड दिया, पर श्यामाकी सखी श्याम लच्छियाने उसे ऊपर ही सम्भाल लिया। वह सखी उसे श्यामाके नगरमे ले जाना चाहती थी, पर इतनेमे आकाशमे देववाणी हुई, कि इस वसुदेवको इस क्षेत्रमे बहुत लाभ है, इसे यही रखो। तब श्याम लच्छियाने अपनी विद्यासे उसको पृथ्वीपर उतारा।

वसुदेव चम्पापुरीके उद्यानमे अम्बुज सगम सरोवरमे पडा। उसमे से निकलकर वह किनारेपर आया। वहा उसने तीर्थकर वासपूज्यका चैत्यालय देखा, जिसकी प्रदक्षिणा देकर उसने चैत्यालयमे दर्शन किये। वहा प्रात काल एक ब्राह्मण मदिरमे पूजन करने आया। तब उससे वसुदेवने उस नगरीका नाम पूछा। ब्राह्मणने कहा, "यह अग देश है और यह उसकी प्रसिद्ध नगरी चम्पापुरी है। क्या तू इसे नहीं जानता ? क्या तू आकाश से पडा है ?" ऐसा उस ब्राह्मण ने उससे पूछा। इसपर वसुदेवने उसकी प्रशसा करते हुए कहा, "तूने तो ज्योतिष शास्त्र भी पढा मालूम होता है। मैं तो सचमुच आकाशसे ही गिरा हू। दो विद्याधर कुमारियोने मेरे रूपपर मोहित होकर मुझे आकाशमे हरा। फिर उन दोनोमे झगडा हो गया और मैं नीचे गिर पडा।"

"वहा से वसुदेव ब्राह्मणका भेष भर कर चपापुरीमे गया जो राग-रगमे डूबी हुई थी। सभी लोग वीणा बजाते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। और चम्पापुरी गधर्वपुरी-सी लग रही थी। तब

वसुदेवने एक नगर निवासीसे लोगोके वीणा बजाते घूमने का कारण पूछा। उस नगर निवासीने उत्तर दिया, "चारूदत्त नाम-का एक सेठ कुवेर समान धनी यहा रहता है। उसकी गधर्वसेना पुत्री गधर्व-विद्यामे अति प्रवीण है। वह अपने रूपके मदसे वहुत अभिमानिनी है। उसकी यह प्रतिज्ञा है कि जो पुरुष गधर्व-विद्या-मे उसे जीत लेगा, वह उससे विवाह करेगी। इसलिए बहुत से गधर्व-विद्या विशेषज्ञ अनेक देशोसे यहा आये हैं। ये सब बडे-बडे सेठो और राजाओके पुत्र हैं। गधर्वसेना रूप-लावण्यके समुद्र समान और सबके मनोको हरनेवाली है। यह हर महीने सगीत सभा लगाती है, जिसमे बहुत से वीणा बजानेवाले इसे जीतने के लिए इकट्ठे होते हैं और यह जयध्वजा लिये साक्षात् सरस्वती-सी सगीत की परीक्षा लेती है। आज की सभा समाप्त हो गई। अब महीने बाद सगीत सभा होगी।" तब वसुदेवने उससे वहा के गधर्व-विद्याके गुरुका नाम पूछा। उसने उसका नाम सुग्रीव बताया। वसुदेवने जाकर सुग्रीव उपाध्यायसे गधर्वविद्या सिखाने की प्रार्थना की। वसुदेवका रूप-यौवन देखकर वह उपाध्याय उसे बडे घरका भद्र नवयुवक समझकर उसपर दया करके उसे गधर्वविद्या सिखाने को राजी हो गया। यो तो वसुदेव स्वय गधर्वविद्यामे पहले ही प्रवीण था, वह अनजान बनकर वेसुरी वीणा बजाने लगा, जिससे वहा के सभी दूसरे सगीतज्ञ हसने लगे। महीना वीतने पर सगीत सभाका दिन आया। वसुदेव भी उसमे भाग लेने गया। प्रतियो-गितामे सभी लोग वसुदेवको उपस्थित देखकर चकित हो गये। उन्होने इतना रूपवान सुन्दर पुरुष पहले कभी नही देखा था। वहा सभामे वीणा बजानेवाले, वादित्र और नर्तक थे। फिर निर्मल प्रभायुक्त गधर्वसेना वस्त्राभूषणोसे सुसज्जित सभामे ऐसे आई जैसे वर्षा ऋतुमे बिजली मेघ मण्डलमे निकलती हैं। उसने साक्षात् गधर्व-विद्याके समान सभामे प्रवेश किया। जब वह गधर्वविद्यामे वहुत से सगीतज्ञोको पराजित कर चूकी, तब वसुदेव अपनी बारी पर प्रति-

योगितामे भाग लेने के लिए श्रेष्ठ सिहासन या मचपर आ विराजा। उसके सामने जो भी वीणाए और वाजे गधर्वसेनाने रखे, वसुदेवने उन सबमे कोई न कोई दोष निकाल दिया। तब गधर्वसेनाने उसके सामने सुघोषा नामकी महा मनोहर देवोपनीत सप्तदशतन्त्री वीणा वजाने के लिए रखी। कुमारने उसकी परीक्षा की और हर्षित होकर कहा, "यह वीणा निर्दोष है। अब जो तू कहे और जो तेरी अभिलाषा हो, वही मैं इस वीणा पर गाऊ और वही बजाऊ। मेरे रूप और गुणोसे यह वीणा मेरे वशमे है और मुझे विश्वास है, कि तू भी मेरे वशमे हो जायेगी। इसलिए हे पण्डिते! कहिये कि मैं क्या वजाऊ?" गधर्वसेनाने कहा, "जिस दिन विष्णुकुमार मुनिने वलिको बाधा, उस दिन तुम्बरु और नारद गधर्व जातिके देवोने वीणा वजाकर विष्णुकुमारकी स्तुति की। यदि वैसी वीणा वजाने की तुममे प्रवीणता है, तो वजाओ। यह कथा पुराणोमे प्रसिद्ध है। इसलिए उससे अच्छा वजाने का विषय क्या होगा?"

वाजे चार प्रकार के होते है, (१) तारवाले जैसे वीणा, सितार, सारंग आदि, (२) मढे हुए जैसे ढोलक और तबला आदि, (३) कासीके वाजे जैसे मजीरे और नूपुर आदि और (४) फूँकके वाजे जैसे तुरही, वसरी आदि। ये चार प्रकारके वाजे प्राणजीवोके श्रोतोको तृप्त करते है और गधर्व शास्त्रके शरीर कहे गये हैं। स्वर, ताल और पद ये गधर्व के त्रिविध स्वरूप है। वसुदेव इन सब बाजोको बजाने मे निपुण और गधर्वविद्यामे अति कुशल था। इस लिए, जो स्वर जिस स्थानके योग्य थे, वसुदेवने उन्हे वही पर लगाया और उसने गधर्वविद्याका विस्तार श्रोताओके सामने गाया, जिसे सुनकर सभी विस्मित और दग रह गये। सबने उसके वीणा बजाने की प्रशसा करते हुए कहा कि यह तो गधर्व जातिके देवोमे से तुंबरु, नारद या किन्नर देव ही है। ऐसी वीणा बजानेवाला और कौन हो सकता है? फिर गधर्वसेनाने कहा,

"विष्णुकुमार स्वामीकी स्तुतिके लिए तुबरू और नारदने जैसी वीणा बजाई थी और गाया था वैसे ही आप बजाओ और गाओ।" वसुदेवने उसी तरह वीणा बजाई और गाया। यह सुनकर गधर्व-सेना बहुत प्रसन्न और हर्षित हुई। वह निरुत्तर हो गई। उसके मनकी चिर अभिलाषा पूरी हुई। जैसा वर वह चाहती थी, वसुदेव उससे भी अधिक गुण-रूप-यौवन सम्पन्न था। तीन लोक-मे उसे वसुदेवसे अच्छा वर कहा मिलता? अब गधर्वसेनाने जयध्वजा वसुदेवके हाथमे दी, मानो वह अपने हृदयको ही वसुदेवको सौप रही हो। समस्त सभा वसुदेवकी प्रशसाके गम्भीर नादसे गूज उठी। अब गधर्वसेनाने बडे अनुरागसे वसुदेवके गलेमे वरमाला पहनाई, जैसे गधर्व देवागना गधर्व देवको वर रही हो।

इसके पश्चात् सेठ चारुदत्तने विधि अनुसार इन दोनोका विवाह कर दिया। सुग्रीव और यशोग्रीव चम्पापुराके-जो गधर्व-विद्याके दो प्रसिद्ध अध्यापक थे, उन दोनोने भी सगीतमे निपुण अपनी कन्याए वसुदेवको व्याह दी। उन तीनो नव वधुओके साथ वसुदेव बडे आनन्दसे रहने लगा।

छोटे से पापके कारण वसुदेव विद्याधरके द्वारा हरा गया और ऊपर से गिराया गया, पर पुण्योदयसे ही वह महा सरोवरमे गिरने पर भी बच निकला और तीन रानियोका पति बना।

: ६ :

विष्णु कुमार महात्म्य

राजा श्रेणिकने गौतम गणवरसे पूछा, "हे प्रभो ! गधर्व-सेनाने जो विष्णु कुमार स्वामीके बलिको बाधने की बात कही थी, वह कथा क्या है ?" गौतम गणधर कहने लगे, "विष्णु कुमारकी कथा सुनने योग्य है। मैं तुम्हे सुनाता हूं। उज्जयनी नगरीमे राजा श्री धर्म और उसकी पटरानी श्रीमती राज करते थे। राजाके चार अति बुद्धिमान मन्त्री बलि, बृहस्पति नमुचि और प्रहलाद थे। एक दिन समस्त शास्त्रोके पाठी अकम्पनाचार्य अपने सात सौ सयमी मुनियो सहित नगरके बाहर उपवनमे पधारे। नगरकी समस्त जनता उनके दर्शनोके लिए समुद्रके समान उमड पडी। यह देख कर राजाने मन्त्रियोसे इसका कारण पूछा। वलि मन्त्रीने वताया कि नगरके वाहर उपवनमे एक अज्ञानी यति आये हैं जिनके दर्शनको ये अज्ञानी लोग जा रहे हैं। राजा श्री धर्मने भी उन साधुओके दर्शनके लिए जाने की इच्छा प्रकट की। मन्त्रियोने दर्शनके लिए न जाने को वहुत कहा, पर राजा न माना और मन्त्रियोको साथ लेकर अकम्पनाचार्यके दर्शन-को गया और धर्मकी चर्चा करने लगा। पर आचार्यने पहले ही सव मुनियोको समझा दिया था, कि इस नगरीमे दुर्जनोका अधिकार है, इस लिए तुम सव मौन रहना। आचार्यके आदेशा-नुसार सव मुनि मौन रहे और किसीने भी राजा या मन्त्रीकी चर्चाका उत्तर न दिया। राजा मन्त्रियो सहित वापिस लौट आया।

"सघके श्रुत सागर नामके एक मुनिने अकम्पनाचार्य-की यह आज्ञा न सुनी थी। वह शहरमे विहार करके लौट रहा

था। इस लिए राजाके सामने वे मत्री श्रुत सागर मुनिसे चर्चा करने लगे। उनकी सब चर्चा मिथ्या मार्गकी थी। इसपर उस मुनिने उन्हे धर्मके युक्तिपूर्ण सत्य स्वरूपको समझाने का प्रयत्न किया। फिर वह मुनि गुरु अकम्पनाचार्यके पास लौट कर आया और उनसे समस्त वृतान्त कहा। गुरुने कहा कि तुमने उनसे विवाद करके अच्छा नही किया और इससे सघपर विपत्ति आयेगी। श्रुतसागर मुनि वापिस उसी स्थानपर जाकर ध्यानमे बैठ गया, जहा उससे मन्त्रियोका विवाद हुआ था। रातको वे पापी मन्त्री उस मुनिको मारने आये। बनके देवने उन्हे कील दिया। प्रात जब लोगोने इस घटनाका हाल सुना, तो उन्होने उन मन्त्रियोको बडा धिक्कारा। राजाने भी उन्हे दण्ड देकर देशसे निकाल दिया।

"चलते-चलते ये हस्तिनापुर आये। हस्तिनापुरमे उस समय राजा महापद्म चक्रवर्ती राज करता था। उसके आठ कन्याए थी, जिन्हे विद्याधर हर कर ले गये। पर उन्हे राजाके योद्धा सकुशल ले आये और वे साध्विया बन गई। और वे आठो विद्याधर भी साधु बन गये। यह देखकर राजा महा पद्म अपने बडे राजकुमार पद्मको राज देकर छोटे राजकुमार विष्णु कुमार सहित साधु बन गया।

"विष्णु कुमार तप करते-करते अनेक ऋद्धियोका स्वामी बन गया।

"पर राजा पद्मका नया राज्य था। इधर-उधर से शत्रु उपद्रव करने लगे। उसके राज्यमे एक गढपति सिहवल अपने गढ-की शक्तिके अभिमानसे उपद्रव करने लगा। राजा पद्मको इससे बडी चिन्ता हुई। इसी समय बलि आदि वे चारो मन्त्री राजा पद्म-के पास आगये और वे सिहवलको जीतकर और बाधकर राजा-के पास लाये। राजा उनसे वडा प्रसन्न हुआ। ये चारो मन्त्री देश-

कालको समझनेवाले और राजप्रशासनमे निपुण थे। वे राजा पद्मके प्रधान बन गये। जब बलि सिंहबलको बाधकर लाया था, तब राजाने प्रसन्न होकर बलिसे एक वर मागनेको कहा। बलिने राजासे एक वचन धरोहरके तौर पर अपने पास रखने का वचन ले लिया कि जब मै चाहूगा, तब ले लूँगा।

कुछ समय बीतने पर श्री अकम्पनाचार्य अपने साधु सघ सहित हस्तिनापुरके उद्यानमे वर्षाके चतुर्मासके लिए पधारे। इनके आने का वृतान्त सुनकर चारो मन्त्री अपने पूर्व अपराधसे डरे और उन्हे आशका हुई कि कही ये मुनि हमारे पहले उपद्रवोका दंड राजासे हमे न दिलवादे। पर यह आशका निराधार थी। पर वे उसके निराकरणका उपाय सोचने लगे। मन्त्री बलिने जाकर राजा पद्मसे अपना वर मागा कि मुझे सात दिनका राज दे दो। राजा पद्म मन्त्री बलिको हस्तिनापुरका सात दिनका राज देकर स्वयम् घरमे अदृश्यके समान रहने लगा। जब बलि मन्त्रीसे राजा बन गया और उसने अकम्पनाचार्य और मुनियोपर उपद्रव करने की सोची। इस लिए जहा मुनि ठहरे हुए थे, वहा उनके गिर्द यज्ञ आरम्भ कर दिया। इससे मुनियोको धुंएका बडा कष्ट हुआ। यज्ञमे आये लोगोकी जूठी पतलो और मिट्टीके मटकने साधुओपर डलवाए। पर वे साधु उपसर्गोके सहनेवाले थे, वे उनको मनुष्यकृत उपसर्ग जान ध्यानमे बैठ गये। उन्होने मनमे यही निश्चय किया, कि यदि इस उपसर्गमे बचेगे तो आहार-पानी लेगे, वरना अनशन और समाधिमरण।

"जब साधु सघ सहित अकम्पनाचार्यपर हस्तिनापुरमे यह उपद्रव हो रहा था तब विष्णु कुमार मुनिके गुरु अपने सघ सहित मिथिलापुरीमे विराज रहे थे। वे महा दिव्यज्ञानी गुरु दया कर कहने लगे कि अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियोपर भयकर उपद्रव हो रहा है। गुरुकी यह बात सुनकर पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक

श्रावकने व्याकुल होकर उपद्रवका स्थान और उसे दूर करने का उपाय पूछा। इस पर गुरुने कहा कि उपद्रव हस्तिनापुरमें होरहा है और बताया कि मुनि विष्णु कुमारको विक्रियाऋद्धि—शरीरको इच्छानुसार छोटा-बडा करने की शक्ति प्राप्त हो गई है। सो उसके प्रभावसे वह उपद्रव दूर होगा। यह शक्ति इन्द्रमे भी नही हैं। वह पुष्पदन्त क्षुल्लक श्रावक भी विद्याधर था, पर व्रत लेते समय उसने अपनी लौकिक विद्याको तज दिया था, परन्तु धर्मके निमित उसको उपयोग करने की छूट रखी हुई थी। इसलिए उस पुष्पदन्त क्षुल्लकने तत्काल विष्णु कुमार मुनिके पास जाकर गुरुका कहा सब वृतान्त बताया। मुनि विष्णु कुमारको अपनी विक्रियाऋद्धि प्राप्तिका पता भी न था। तब उसने परीक्षाके लिए अपनी भुजा पसारी। उसकी भुजा इतनी लम्बी हो गई कि कही भी न अटकी। तब विष्णुकुमार स्वामीने अपनी विक्रियाऋद्धिकी प्राप्तको जाना।

तत्काल विष्णु कुमार मुनि अपने भाई राजा पदमके पास गया। राजा पदमने उसका बडा आदर-मान किया। विष्णु कुमार ने कहा, "हे राजन्! आपने यह क्या किया कि आपके राज्य मे मुनियोपर उपद्रव हो रहा है। कुरूवशमे ऐसा राजा कभी नही हुआ, जिसके राजमे भक्तजनोपर उपद्रव हुआ हो। पृथ्वी पर ऐसा कभी नही हुआ कि दुर्जन पापी लोग तपस्वियोपर उपसर्ग करे और राजा उस उपद्रव को न मेटे। वह राजा किस कामका? जलती अग्नि महा प्रचण्ड है, वह भी जलसे बुझजाती है। पर जब जल ही से अग्नि प्रज्वलित हो, तो आग कैसे बुझे? विना आज्ञाका राजा वृक्षके ठूठके समान है। हे पदम! इससे तू आप उठकर इस दुराचारी वलिको मना कर। यह तेरा मन्त्री भी पशु समान है, क्योकि वह सब जीवोपर समभाव रखनेवाले साधुओसे भी द्वेप रखता है। ये साधु जलके समान शीतल स्वभाववाले हैं, परन्तु जब जल तपता है, तो वह अग्निके समान जलानेवाला बन जाता है! ऐसे ही ये शीतल स्वभावी साधु कोप करे तो आगके समान

भस्म कर दे। ये महाधीर और सामर्थ्यवान है। इनमे त्रिलोकको उठानेकी शक्ति है। यदि साधु कदाचित क्रोध करे तो प्रलयकी अग्नि के समान भस्म कर दे। इससे बलि आदि मंत्रियोका नाश न होने से पहले उन्हे कुमार्गसे हटा, देर मत कर।"

"तब राजा पद्मने मुनि विष्णुकुमारसे कहा, 'हे प्रभो! मैंने सात दिनका राज्य बलिको दे रखा है, इसलिए अब मेरा वश नही चलता। आप ही जाकर उसे समझाओ। वह आपकी आज्ञा मानेगा।" इसपर मुनि विष्णुकुमार बावनेका रूप बनाकर बलिके पास गया और कहने लगा, "तुमने थोडे दिन जीनेके लिए चार दिनका राज पाकर ऐसा पाप क्यो किया? उन तपोनिष्ठ महा पुरुषोने तेरा क्या अनिष्ट किया? ये तो सबका हित चाहते हैं। जो तपस्वी मन, वचन और कायासे महातप करे, उनसे कौन द्वेष करता है? इससे तुम उनका उपसर्ग दूर करो। देर न करो। जो काम तुमने किया है, उसे छोडो। बलिने उत्तर दिया, "यदि ये मेरे राज्यसे चले जाये, तो यह उपसर्ग टल सकता है, अन्यथा नही।" इस पर वामन रूप विष्णुकुमारने उत्तर दिया, "ये तपस्वी योगारूढ हैं। चतुर्मासमे गमन नही करते। ये व्रती साधु शरीरका त्याग तो कर देते हैं, परन्तु अपना व्रत भग नही करते। इसलिए तुम यह करो कि मैं वामन हू, मेरे पावसे मापी तीन पग पृथ्वी उनके रहनेको दे दो। मेरी इतनी याचना तो मान लो। बलिने विष्णुकुमारकी यह बात मान ली और कहा कि उस तीन पग पृथ्वीके सिवाय एक पैर भी अधिक न विचरे। यदि वे तीन पैर पृथ्वीसे बाहर विचरेगे तो मैं उन्हे मारूगा। उस अविनयी, कपटी, सर्प समान महा दुष्ट स्वभाववाले बलिको वशमे करने के लिए विक्रियाऋद्धिके धारक वामन मुनि विष्णुकुमार अपनी विक्रियाऋद्धिका रूप उसे दिखाने लगे। पहले उन्होने अपने शरीरको इतना ऊचा किया कि वह आकाश को छूने लगा। फिर उनके तीनो पैरोमे समस्त पृथ्वी आकाश और स्वर्गोंक तक आगये। इस पर समस्त जगतमे, "यह क्या है? यह

क्या है?" की ध्वनि गूज उठी। देवोने तरह-तरह के बाजे बजाकर गान करके मुनि विष्णु कुमारकी स्तुति की और हाथ जोडकर अपनी ऋद्धिको सकोचने की प्रार्थना की। मुनि विष्णु कुमारने अपने शरीरको सकोचा और मुनियोका उपसर्ग दूर किया। देवतागण बलिको बाँधकर दूर डाल आये। देवोने घोषा, सुघोपा और महाघोषा वीणाए ससारको दी। इस प्रकार विष्णु कुमार मुनि अकम्पनाचार्य और साधुओका उपसर्ग दूर करके साधुप्रेमके कर्त्तव्यको पूरा करके अपने गुरुके पास गये और समस्त वृतान्त कह सुनाया। विक्रियाऋद्धिको काममे लाने का गुरुसे प्रायश्चित लेकर तब विष्णु कुमारने घोर तप किया और केवल ज्ञानी हुए। फिर वे मोक्ष गये।

मुनि विष्णु कुमारकी कथा साधुकी अतुल्य शक्ति और सकटमे फसे साधुओंके कष्ट निवारणकी कथा है।

: ७ :

चारूदत्त चरित्र

गधर्व सेनाके साथ अपने श्वसुर सेठ चारूदत्तके पास रहते हुए वसुदेवने सेठकी विपुल धन-सम्पत्तिसे विस्मित होकर पूछा "हे पूज्य ! राजाओको भी दुर्लभ इतनी विपुल धन-सम्पत्ति आपने कैसे प्राप्त की ? जो भाग्य पुरुपार्थ आपमे है वह कैसे प्रकट हुआ और यह विद्याधरकी पुत्री गधर्व सेना आपके पास कैसे आई ?— ये सब बाते जानना चाहता हू ।"

सेठ चारुदत्तने कहा, "हे धीर ! यह तुमने अच्छी बात पूछी है। मैं तुम्हे सब कुछ बताता हू । इस चम्पापुरीमे सेठोका एक महा स्वामी भानुदत्त प्रसिद्ध सेठ और उसकी धर्मपत्नी सुभद्रा रहते थे । दोनो सम्यग्दर्शनके धारक अणुव्रतके पालक बडे सुख-चैन से अपना जीवन बिता रहे थे । यो उन्हे न किसी बातकी कमी थी और न कोई चिन्ता, पर सेठानीके कोई पुत्र न था । वह सोचने लगी, मेरे सब कुछ है परन्तु ये सब एक पुत्रके बिना अच्छे नही लगते । गृहस्थका साक्षात् फल पुत्र है और हम उससे वचित है । पुत्र अभिलापासे वह धर्म, पूजा और दान आदि मे अधिक लग गई । एक दिन एक मुनिसे सुभद्राने पुत्र होने के बारे मे पूछा । उस अवधिज्ञानी मुनिने सेठानीपर अति दया कर बताया कि तेरे शीघ्र ही अति श्रेष्ठ एक पुत्र होगा । मुनि तो यह वरदान देकर वहाँसे चले गये । कुछ समय पश्चात् सेठानीके मैं पुत्र हुआ और मेरा नाम चारुदत्त रखा गया । मेरे जन्मपर घरमे बडा उत्सव मनाया गया । जब मैं बडा हुआ, तो मुझे धर्मके व्रत दिलाये गये और मुझे सब कलाए सिखाई गई । मेरे पाच मित्र वराह, गोमुख, हरि-

सिंह, तपोन्तक और मरूभूमि थे। एक दिन हम सब मित्र खेलने-तैरनेके लिए रत्नमालनी नदी पर गये। वहाँ नदीके पुलमे एक विद्याधर और उसकी विद्याघरी क्रीडा कर रहे थे। मै तो उन्हे देखकर आगे बढ गया, पीछेसे उनका कोई शत्रु विद्याधर वहाँ आ पहुचा। उसने उस विद्याधरको कील दिया। और उसके पासही तलवार और ढाल लेकर लाल आखे किये खडा रहा। वह शत्रु विद्याधर हम सब को देखकर विद्याधरीको लेकर वहा से चलता बना। तब उस बधे हुए विद्याधरने मुझे सकेतसे तीन गडी हुई औपधिया बताई, जिनसे मैंने उस बिद्याधरकी कीलन समाप्त की, उसे चलाया और उसके घाव अच्छे किये। बन्धनयुक्त और घाव रहित वह विद्याधर तलवार और ढाल हाथों मे लेकर अपने शत्रु विद्याधर पर झपटा और लडकर अपनी स्त्री को उससे छुडाकर ले आया। अपनी स्त्री सहित मेरे पास आकर वह विद्याधर मुझसे प्रसन्नतातूर्वक कहने लगा 'आपने मुझे मरते को बचाकर प्राणदान किया, इसलिए जो आपकी आज्ञा हो, मैं आपकी वही सेवा करू।"

वसुदेव सेठ चारूदत्त आत्मकथा बड़े ध्यानसे सुन रह थे। तभी सेठ चारूदत्तने उस विद्याधरकी कथा, जैसी उसने सेठको बताई थी वसुदेवको सुनाने लगे। चारूदत्त वसुदेव से कहने लगे "विद्याधर ने बताया था, कि वह वैताड्ये पर्वतकी दक्षिण श्रेणी शिव मन्दिर शहरके राजा महेन्द्र, विक्रम का पुत्र अमितगति था। उसके दो मित्र भूमि सिंह और गोरमुख विद्याधर थे। एक दिन अमितगति अपने दोनो मित्रोके साथ हिमवत पर्वत पर गया। वहा पर्वत पर हिरण्यरोम नामका तपस्वी अपनी सुकुमारिका पुत्रके साथ रहता था। वह सुकुमारिका सरसोके फूलके समान अति सुकुमार अगोवाली थी वह उस तापस कन्याको देखकर उसपर अनुरक्त हो गया। तब उसके पिता राजा महेन्द्र विक्रमने तपस्वी से याचना करके अमितगति का विवाह सुकुमारिका से कर दिया। उसका मित्र भूमिसिह उसकी पत्नी सुकुमारिकाको प्राप्त करनेकी अभि-

लाषा करने लगा, और अमितगतिको उसके मनकी बात का पता भी न लगा। वह बेखबर उसके साथ घूमता रहा। आज जब अमितगति अपनी स्त्री सहित चम्पापुरी के बन में घूम रहा था। तब कुमित्र भूमिसिंह उसे कीलकर सुकुमारिकाको ले भागा। मेरी सहायतासे अमितगतिने उस बन्धनसे छुटकारा पाया और अपनी स्त्री पाई, इसलिए वह मुझसे बडा प्रसन्न हुआ।"

चारुदत ने आगे वताया —"अमितगति विद्याधर मेरे उपकार का वड़ा आभारी था। उसने मुझे पुत्र के समान प्यार किया और सेवा करने को कहा।" तव मैंने उसे कहा—"आप बडे हो, विद्याधर हो, आपके दर्शन मनुष्यो को दुर्लभ हैं, पर मुझे सुलभ हुए। इससे वड़ा और क्या लाभ होगा ? आप मेरी चिन्ता न करे। आप मुझे अपना पुत्र समझे।"

सेठ चारुदतने वसुदेवको वताया कि वह अमितगति विद्याधर उसका नाम, पता और गोत्र आदि पूछ कर अपनी पत्नी सुकुमारिका सहित अपने स्थानको चला गया और मैं चम्पापुरीमे अपने घर चला आया। और मैंने अपने मामा सर्वार्थकी सुमित्रा पत्नीसे जन्मी मित्रवती नामकी पुत्रीसे विवाह किया। परन्तु मैं निरन्तर शास्त्र पढनेमे लगा रहता था, इसलिए अपनी पत्नीसे मेरी वातचीत ही नही हो पाती थी। तव मेरी सास ने मेरी मा को उलाहना दिया कि उस का पुत्र पढा-लिखा मूर्ख है, वह स्त्री-चर्चा ही नही जानता। इस पर मेरी माने मेरे वासनासक्त चचा चारुदत्तको मुझे कामसक्त वनानेका उपाय करने को कहा। मेरा चचा मुझे गणिकाओ की मुखिया कलिंगसेनाकी पुत्री वसन्तसेनाके घर ले गया। वसन्तसेना सौन्दर्य, रूप, यौवन वसन्तको भी मात करती थी और गाने, वजाने और नृत्य आदि मे अति प्रवीण थी। उनके नृत्यमण्डपमे शृंगार विद्यामे निपुण और रसिया अनेक लोग बैठे थे। मैं भी अपने चचा चारुदत्तके साथ वहां जा बैठा। वसन्तसेनाका नृत्य आरम्भ हुआ। वह अपने हाथो और मुखसे

श्रृगार आदि कर नवरसो और भाव-विभाव और अनुभावके भेदो को बताने लगी। सबको नृत्य दिखाती हुई वह मेरे सामने विशेष रूपसे हर्ष और अनुरागसे अप्सराके समान नृत्य दिखाने लगी। वह मुझ-पर मोहित होगई। अपनी मा कलिंगसेनाके पास जाकर उसने उससे कहा कि मुझे चारूदत से मिलाओ। मैं उसके बिना किसी औरको अपना पति न बनाऊगी—यह मेरी प्रतिज्ञा है। कलिग सेनाने आदरसन्मानसे चारूदत्तको वशमे कर लिया और फिर उसके साथ मुझे भी अन्दर अपने भवनमे ले गई। उसने हम दोनोको बडे आदरसे आसन दिया। कलिंगसेनाने रूद्रदत्तसे जुएमे उतरासन जीतकर मेरे साथ जुआ खेलना आरम्भ किया। इस पर बसन्त सेनाने माको जुएसे हटाकर स्वय मुझसे जुआ खेलना आरम्भ किया, मैं उसके रूप तथा चातुर्य पर मुग्ध सा बहुत देर उससे जुआ खेलता रहा। मुझे जोरकी प्यास लगी। पर उसने ऐसा मोहिनी चूर्ण डालकर मुझे पानी पिलाया कि मुझे भ्रम हो गया मैं उसपर अनुरक्त हो गया और उसकी माने उसका हाथ मुझे पकडाया। मैं फिर बसन्तसेनाके पास बारह वर्ष तक रहा, मा-बाप-पत्नीको सर्वथा भूल गया। मेरे सभी अच्छे सस्कार जाते रहे। मैंने वहा १२वर्ष मे सोलह करोड दीनार उनको भेटकर दिये। जब मेरे घरमे धन न रहा, तब मैं मित्र समान अपनी स्त्री के आभूषण वहा ले जाने लगा। इस कलिंग सेनाने अपनी लडकी बसन्त सेनाको मुझ दीन-हीनको छोडनेको कहा। माने बेटीको बहुत समझाया कि मुझे छोड कर अब वह किसी दूसरे धनी आदमीको अपने प्रेम पाशमे फसाये। पर इस बातसे दुखी बसन्त सेनाने एक यही बात कही, "हे माता! यह तुम क्या बात कह रही हो? यह चारूदत्त मेरी कुमारावस्था का पति है। उसकी सेवा करते हुए मुझे बारह वर्ष हो गये। उसने भी हमारे लिए अपना सब धन खर्च कर दिया और दूसरा आदमी चाहे कुबेर समान धनी हो, उसे मैं प्रेम नही कर सकती। चारूदत्त-के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नही रह सकती। तुम महाकृतघ्न

हो, जो उसके किरोडो दीनार घर मे आने पर भी उसे त्यागनेको कहती हो समस्त कलाओके जाननेवाले नवयुवक और धर्मात्मा पतिका त्याग करना मेरे लिए असम्भव है।"

"पर कलिगसेना अपनी बेटीका हित कब चाहने वाली थी ? वह तो धनकी भूखी थी। वह पतिता मुझे बसन्त सेनासे अलग-अलग रखने लगी और एक रात को नीदमे मुझे घरसे बाहर डाल दिया। जब मेरी आखे खुली, तब मैं अपने घर गया। मेरा पिता भानुदय तो मुनि हो गया था। मेरी मा पतिके वियोग और मेरे व्यसनी हो जानेपर बडी दुखी थी और मेरी पत्नीके दु.खकी तो कोई हद न थी। वे दोनो मुझे देखकर टें-टें कर रोने लगी। तब मैंने उन्हे धैर्य बधाया। फिर मैं अपनी स्त्री के कुछ आभूपणो से कुछ पूजी जमा करके अपने मामाके साथ उशीरावर्त नामक देशमे व्यापारके लिए गया"

चारुदत्त वसुदेवसे अपनी आगेकी कथा कहने लगे, "उशीरावर्त देशमे हमने कपास मोल ली। जब मैं अपने मामा के साथ ताम्रलिप्तपुर को जा रहा था, तब दैवयोग से कपास आग लगनेसे राख होगई। तब मैं मामा को छोडकर एक घोड़ेपर सवार होकर पूर्व दिशाकी ओर गया था, पर मार्गमे वह घोडा भी मर गया। तब मैं पितयुग नगरमे गया सुरेद्रदत्त जहा मेरे पिताका मित्र था। उसने मुझे प्रेमसे अपने पास कई दिन सुखसे रखा। फिर मैं वहा से समुन्द्रमे नाव द्वारा व्यापारके लिए गया। जो छहवार समुद्र प्रवेश किया। सातवी बार मेरा जहाज फट गया। मेरा ८ किरोड का धन सब समुद्रमें डूब गया। मैं एक लक्कडपर समुद्र पार करके किनारे पर राजपुर नगर मे गया। वहां एक तापस परिव्रजाकके भेषमें था। वह मुझे रसायनका लोभ देकर वनमे ले गया। उसने मुझे रस्सीमे बाधकर एक गहरे अधे कुएमें उतारा। मैं वहा रस इकट्ठा करने लगा। वहा पहले ही एक दूसरा आदमी उस तापस

का उतारा कुए मे पडा था। उसने मुझे उसका समस्त रहस्य रहस्य बताया कि वह भी उज्जयिनीका धनी सेठ था और उसका भी जहाज समुद्रमे फट गया था और लकडियो पर चढकर इस बनमे आनिकला था। मैं भी इस तापसके चुगलमे फस गया था। देखो, मैं हाडका पिंजरा रह गया हूँ। उसने मुझे गोहकी पूँछ पकडकर कुए से बाहर निकलने का उपाय बताया। मैंने भी उसे अपना नाम, पता, स्थान और वृत्तात बताये। मेने उसे धर्मका उपदेश दिया। उससे जीव दया, सत्य, चोरी न करने और परिग्रह परिणामके व्रत लिये। फिर मैं उसके बताये हुए उपायसे गोहकी पूँछ पकड़कर कुएसे बाहर निकला। मेरा समस्त शरीर कुएकी दीवारसे छिल गया। बाहर निकलते ही मुझे एक भयकर काल समान जगली भैंसा दिखाई दिया। उसे देखकर मैं एक गुफामे घुसा। वहाँ एक अजगर साप सोया हुआ था। भैंसे और अजगरमे विषय युद्ध हुआ और मैं अच्छा मौका देख वहाँसे बच निकला। उस बनसे बचकर मैं प्रत्येक गाँव मे आया। वहा दैवयोगसे मुझे मेरा चाचा रूद्रदत्त मिला। उसने मुझे धैर्य बधाया और खाना-पानी दिया।"

चारूदत्त वसुदेव को इससे आगे की बात सुनाने लगे, रूद्रदत्त ने स्वर्णदीप उसके साथ चलकर खूब धन लाने की बात मुझे कही। हम दोनो एरावती नदीके उत्तर की ओर गिरिकूट पहाडीको उलाघ कर वेत्रवनमे होते हुए टकण देशमे पहुचे। रूद्रदत्तने दो तेज चालवाले बकरे मोल लिये, जिन पर चढकर हम अति विषय मार्ग को चलकर पहाडीकी चोटीपर पहुचे। तब पापी रूद्रदत्तने वहासे स्वर्णद्वीप पहुंचनेकी विधि यह बताई, कि इन दोनो बकरोको मार कर इनकी खालोमे हम प्रवेश करे। यहासे बडी-बडी चोच और पजेवाले भारण्डव पक्षी उन खालोको मासके लोभसे द्वीप ले उडेगे। मैंने रूद्रदत्तको ऐसी हत्या करनेसे मना किया, पर वह न माना। मेरी आख बचाकर उसने अपने बकरेको मारकर

उसकी खाल तैयारकी। मारते समय मैंने उस बकरे को णमोकार-मन्त्र दिया। रूद्रदत्त ने मेरे हाथमे तलवार देकर मुझे उस खालमे डाल दिया और दूसरी खालमे तलवार लेकर वह स्वय बैठ गया। भारण्डव पक्षी हम दोनोंको लेकर उड़ गये। जो पक्षी मुझे ले जा रहा था, सयोगसे वह काना था। वह स्वर्णद्वीप न जाकर मुझे रत्नद्वीप ले गया। उस रत्नद्वीपमे रत्नोकी किरने जगमगा रही थी। वहा एक जैन मन्दिर था और उसमे एक मुनि थे। मैंने मन्दिरकी प्रतिमाके दर्शन किये और मुनिकी वन्दना की।

चारूदत्तने आगे कहा, "जब मुनिका ध्यान समाप्त हुआ, तव मुनिने मुझे धर्मवृद्धिका आशीर्वाद देकर मुझे मेरा नाम लेकर सम्वोधित करते हुए मेरी कुशल और मेरे वहा जानेका कारण पूछा और विना किसीकी सहायता मैं वहा कैसे पहुंचा? "तब चारूदत्त ने नमस्कार करते हुए अपनी कुशल वताते हुए साश्चर्य पूछा—"हे प्रभो! आपने मुझे पहले कहा देखा है।" इस पर मुनिने मुझे वताया, "चम्पापुरीके उद्यानमें मेरे शत्रुने मुझे कीला था और तुमने मुझे उससे छुडाया था। मैं अमितगति विद्याधर हूँ। मेरा पिता मुझे राज्य देकर मुनि हो गया। मैं राज करने लगा। मेरी रानिया विजयसेना और मनोरमा थी। विजय सेनाके तो गधर्वसेना पुत्री हुई और मनोरमाके सिहयश और वराहग्रीव दो पुत्र हुए। मैं वडे राजकुमार सिंहयशको राज्य देकर और दूसरे छोटे राजकुमार वराहग्रीवको युवराज वनाकर अपने मुनि पितासे जैन साधुकी दीक्षा ले ली। हे चारुदत्त अब तुम बताओ कि समुद्र के बीच इस कुम्भकण्टक द्वीपमे इस कर्कोटक पहाडीपर तुम कैसे पहुंचे?" मैने मुनिको अपनी दुःख-सुख मिश्रित समस्त कथा सुनाई। तभी दो विद्याधर आकाशसे उतर कर वहा हमारे पास नीचे आये। वे उस मुनिके पुत्र ही थे। मुनि ने उनको बताया कि मैंने पहले तुम्हे भी बताया था कि चारुदत्तने ही मुझे उस शत्रुसे बचाया था। आज यह यहा आया है। इस पर वे दोनों विद्याधर बड़े प्रेमसे मेरे पास बैठ गए।

चारुदत्त ने आगे बताया—"इतने मे वहा दो देव आये। उन्होने शिष्टाचारके विरुद्ध पहले मुझे नमस्कार किया और मुनिको यह रीति-क्रम भग था। सो मैंने दोनो विद्याधरो और दोनो देवोसे इसका कारण पूछा। उन देवोने बताया कि हम दोनोको जिनधर्मके उपदेश देनेके कारण चारुदत्त ही हमारे साक्षात् गुरु हैं। तब विद्याधरने उसकी कथा को पूछा। पहले वकरे का जो जीव देव हो गया था, वह कहने लगा, "हे विद्याधर! वाराणसी मे सोमशर्मा और उसकी पत्नी सोमिला रहते थे। वह ब्राह्मण वेद व्याकरण और पुराण आदि का विद्वान था। उसकी दो पुत्रिया भद्रा और सुलसा थी। दूसरी पुत्री सुलसा भी व्याकरणादि शास्त्रकी पारगामी थी। ये दोनो विवाह न करके परिव्राजिकाए बन गई। उनकी विद्वता और तप प्रसिद्ध हो गये। उन दोनो वहनोने अनेक वादियो को जीता। याज्ञवल्क नामका एक प्रसिद्ध परिव्राजक घूमता-घूमता उन दोनो को विवाद मे जीतनेकी इच्छासे वाराणसीमे आया। दोनो बहनोमे सुलसा को अपनी विद्वता पर अधिक गर्व था, इसलिए उसने पण्डितोकी सभाके वीच प्रतिज्ञा की, कि वह इस परिव्राजकसे विवाद करके उसे भी जीतेगी। जो वात सुलसा कहती, याज्ञवल्क उसका ही खण्डन करके अपने पक्ष स्थापित कर देता। फल यह हुआ कि सुलसा हार गई। याज्ञवरकने सुलसाका हाथ पकडकर कुचेष्टाए करनी आरम्भ की। सुलसाने उसे वहुत मना किया, पर उसने एक न सुनी। सुलसाके याज्ञवल्कसे एक पुत्र हुआ। उस नवजात शिशुको पीपलके वृक्षके नीचे डालकर वे दोनो पापी चलते बने। वडी वहन भद्राने उस ऊचे मु हके शिशुको पीपलके वृक्षके नीचे पड़ा देखकर समझ लिया कि वह उसकी छोटी वहन सुलसाका पुत्र है। भद्राने उसे उठा लिया और उसका अच्छी तरह पालन-पोषण किया। भद्राने उस वच्चे का नाम पिप्पलाद रखा। यह वालक वडा होने पर वहुतसे शास्त्रोका पारगामी विद्वान वना। एक दिन उसने भद्रासे पूछा, "हे माता, मेरा पिप्पलाद नाम क्यो

रखा और मेरा पिता जीवित है कि नही ?" इस पर भद्राने उसे उसके मा-वाप की और उसके जन्म की सारी कथा बताई और कहा कि वह उसकी वडी माऊसी है। उसने ही उसे एक धायको लगाकर पाला है। शूलके समान चुभने वाली यह वात सुनकर पिप्पलाद वडा क्रुद्ध हुआ और अपने पिता याज्ञवल्कके पास गया। पिप्पलाद ने विवादमे पिता को जीता। फिर उसने अपने माता-पिता की विनयपूर्वक सेवा-श्रुषा करके शान्त किया। पिप्पलादने अपना पथ चलाया और वे मा-वाप उसके शिष्य वन गये। वह देव कहने लगा कि मैं भी पिप्पलादका शिष्य था और उसके हिसा मार्ग को पुष्ट करके नरक-नरक मे घूमा। छहवार वकरेका जन्म पाया और यज्ञो मे होमा गया। सातवी वार भी मैंने टकन नामके देशमे वकरे का जन्म लिया। चारूदत्तने मुझे धर्मका उपदेश दिया, णमोकार मन्त्र सिखाया। उसी धर्मके प्रभावसे मैं देव वना हूँ। चारुदत्त मेरा गुरु है। इसलिए मैंने उसे मुनिसे पहले प्रणाम किया है।"

तव दूसरे देव ने वताया—"मैं उसी वणिक पुत्र का जीव हूँ, जिसे रसायनके लोभी तापस परिव्राजकने धोखेसे कुएमें डाल दिया था और जिसने चारुदतको वहा कुएसे गोह की पूछ पकडकर वचने का उपाय वताया था। कुएं मे चारुदतने मुझे धर्मका उपदेश और अहिसा आदि के व्रत दिये थे। उनके फलस्वरूप ही मैं देव वना हूँ और इसीलिए मैंने 'पहले चारुदतको और पीछे मुनिको नमस्कार किया है।"

फिर उन दोनो देवोने पापमे डूबते प्राणियो को धर्मका उपदेश देकर वचानेवालोके महान् उपकारका हाल वताया। उन्होने कहा कि जो प्राणी अपने उपकारको भूल जाय, उस जैसा कृतघ्नके समान दूसरा कोई निन्द्य नही है। जो पराये उपकार को भूल जाय, या गुणोके वदलेमे अवगुण करे, उस समान दूसरा कोई दुरा-चारी नही। पराये थोड़े से उपकारको भी सदा वडा मानना चाहिये

यदि उसका प्रति उपकार न भी करसके, तो सदा उसके उपकार को याद रखे, और उसके प्रति सदा अति अच्छे भाव रखे और उससे गर्व न करे। यही कुलवन्त पुरुषोका कर्त्तव्य है।" यह कह कर उन दोनो देवोने विद्याधरोके सामने अपनी विभूति और ऐश्वर्य दिखाये।

चारूदत्तने वसुदेवको बताया कि उन देवोने मुझे अग्निमे न जलने वाले वस्त्र और अनुपम आभूषण पहिनाये, कल्प वृक्षो-की माला दी, और देवलोकके सुगध मेरे अगपर लगा। तब उन देवोने चारूदत्त से कहा, "हे स्वामिन ! अब जैसी आपकी आज्ञा हो, वैसा ही हम करे। कहो तो अभी आपको अपार धन देकर चम्पापुरी ले चले।" चारूदत्तने उन्हे वहासे अपने स्थानको जाने और याद करने पर उसके पास आनेको कहा। इस पर उन्होने चारूदत्तकी आज्ञा स्वीकार कर पहले मुनिको और फिर चारूदत्तको नमस्कार कर वहाँसे प्रस्थान किया।

चारूदत्तने वसुदेवको इससे आगे कहा, "फिर मुनिको प्रणाम कर मै उन दोनो विद्याधरोके साथ आकाश-मार्गसे उनके शहर शिव मन्दिरमे आगया। वहा उन विद्याधरोने मुझे वडे आदर-मान और सुखसे कई दिन रखा। शहरके सभी लोग मेरे यशका गान करके मेरी प्रशसामे कह रहे थे, कि इस नगरीके स्वामीका मैं ही प्राण वचानेवाला हू। फिर १२ दिन गन्धर्व सेनाकी मा और भाईने मुझे गधर्व सेना दिखाई और कहा, "इसके पिता अमितगति मुनिने वताया था कि चारूदत्तके घर यदु पुत्र वसुदेव गधर्व विद्यामे इसे जीतकर विवाहेगा। अमितगति तो मुनि हो गये इसलिए इस लडकी को तुम अपने साथ ले जाओ। और इस काम को पूरा करो।" मैंने उनकी बात मान ली और उन्होने दासियो सहित वह लडकी गधर्व सेना मुझे सौप दी। उसके दोनो भाई वहुत से रत्न-सम्पदा और वडी सेना लेकर मेरे साथ चम्पापुरी आनेको तैयार हो गये। तव मैंने उन दोनो देवोको याद किया। क्षण मात्रमे वे हँस विमान

तथा निधि लेकर वहा आ उपस्थित हुए। वे देव हम सबको चम्पापुरी मेरे महल मे लाये। सब नवनिधि और रत्न आदिसे मेर घरको भरपूर कर वे देव मुझे नमस्कार कर वापस चले गये। मैं अपनी माता, मामा, धर्मपत्नी और कुटुम्बियोसे बडे प्रेमसे मिला। घरमें हर्षकी लहर दौड गई। मैंने देखा कि कलिग सेना गणिका की पुत्री पतिव्रता बसन्त सेना की मेरे परदेश जानेके पश्चात अपनी मा का घर छोड़कर आर्षिकासे श्राविकाके व्रत लेकर मेरी मा के निकट आकर रहने लगी। बसन्त सेनाने मेरी मा और धर्मपत्नीकी हृदयसे इतनी सेवा की कि वे उससे अति प्रसन्न हुईं। जगतमे वसन्त सेनाका वडा यश हुआ। मैं भी यह तमाम बात सुनकर वडा प्रसन्न हुआ और मैंने वसन्त सेनाको अगीकार किया। वेश्या पुत्री होकर भी उसने शीलधर्म को निवाहा। वसन्त सेना भी मुझे पाकर हर्षसे गदगद होगई। अव मैं निधि के प्रताप से दीन-अनाथोको मुँह मागा दान देकर तृप्त करता हू। इसे किमिच्छा दान कहते हैं अर्थात् जिसकी जो इच्छा हो वही मेरेसे ले जाय।"

आगे चारूदत्तने वसुदेवको अपने विपुल तथा अक्षय धनके वारे मे वताया,—"तुमने इस धनके वारे मे पूछा, सो यह देवोका दिया हुआ है और इस गन्धर्व सेनाका विवाह तुमसे किया है तुम्हारे लिए ही यह विजयार्द्धसे यहा लाई है। इसके भाग्य धन्य हैं जो उसने तुम जैसा पति पाया। मुझे इसकी वडी चिन्ता थी। वह चिन्ता अव दूर हो गई। अव मैं निश्चिन्त हो तप करूगा।

गधर्व सेना और चारुदत्तकी सम्पूर्ण कथा सुनकर वसुदेव वडा प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा, "धन्य है! इस निष्कपट और उदार पुरुष को, जिसने अपने अच्छे-बुरे जीवनकी समस्त कथा को मुझे सुना दिया। धन्य है इसके पुण्य, पुरुषार्थ और वैभवको। फिर वसुदेवने भी अपनी सब कथा चारुदत्तको। सुनाई कि राजा अंधक वृष्णिका पुत्र और समुद्र का विजय का छोटा भाई वह वसुदेव कैसे घरसे निकला। दोनों एक-दूसरेकी रहस्य पूर्ण कथा सुन कर बड़े प्रभावित और प्रसन्न हुए।

वसुदेव का नीलंयशासे विवाह

राजा वसुदेव गधर्वसेना सहित चम्पापुरीमे बडे आनन्द-मगलसे दिन बिताने लगे। फागुन की अष्टान्हिका का पर्व आया। समस्त जनताके हृदयोमे धर्मका उल्लास था। चम्पापुरी तीर्थकर वासपूज्यके पाचो कल्याणकोका पवित्र तीर्थ है। यो तो हर समय ही दूर-दूर से यात्री वहा पूजा करने आते हैं, पर पर्वके दिनोमे विशेष भीड और चहल-पहल रहती है। भगवान वासपूज्यका मन्दिर नगर से बाहर है। यात्री तरह-तरहकी सवारियोमे वैठ कर वहा दर्शन-पूजनको आते हैं। राजा वसुदेव और रानी गाधर्व सेना पूजन-सामग्री लेकर वडे भक्तिभावसे घोडियो के रथ पर सवार होकर मन्दिरके लिए चले। राजाके आगे-आगे बडे-वडे योद्धा जारहे थे।

यदुपति राजा वसुदेवने एक कन्याको भील कन्याके भेपमे नृत्य करते देखा। वह कन्या नीलकमलके पुष्प समान श्यामसुन्दर और अद्भुत वस्त्र पहने ऐसे लगती थी जैसे वह वर्षाकी विभूति है और उसके आभूपण बिजली से चमक रहे हैं। अपने होठोकी लालिमा, कमल समान चरणो और सुन्दर नेत्रोसे वह शरद की लक्ष्मीसी ही लग रही थी। वह अतिरूपवती लडकी जिनेन्द्र भगवान की भक्तिमे लीन नृत्य करती हुई तीर्थंकर वासपूज्यके पच कल्याणकोका यश गारही थी। उस नृत्यकारिनी की वादित्रमण्डली और वाजे आदि समयानुसार थे। वह बडे हाव-भावसे नृत्य और अभिनय कर रही थी। राजा वसुदेवकी उसपर जो दृष्टि पडी वही अटक गई। उसने अपने रूप और चतुराई से राजा वसुदेवके मनको मोह लिया। वह भी राजा पर मुग्ध हो गई। उस लडकीका नाम नीलमयशा था।

रानी गधर्वसेनाने यह देखकर ईर्ष्या से कुपित हो आखे कुछ सकोच-कर सारथीको आदेश दिया—"यहा बहुत देर हो गई है, अब आगे बढो ।" रानीका आदेश पाते ही सारथीने घोडियोको आगे बढाया और सब मन्दिरके द्वार पर पहुच गये ।

राजा-रानीने मन्दिरकी प्रदक्षिणा कर उसके भीतर 'नमो जय, नमो जय' कहते हुए प्रवेश किया । वहा तीर्थंकर वसुदेवकी प्रतिमा विराजमान थी । पहले राजा-रानी ने दूध, दही, घी, ईख-रस और जलके पचामृत न्हवन पाठ गाते हुए मूर्तिका अभिषेक किया । फिर उन्होने अष्टद्रव्योसे जिनपतिकी बडी श्रद्धासे पूजा की । पूजाके पश्चात् साष्टाग दण्डवत् करके वे मूर्तिके सामने बैठकर पवित्र णमोकार मन्त्रका जाप करने लगे । पवित्र चित्तसे फिर उन्होने अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवलीके कहे धर्मकी मगली कही । फिर राजा-रानीने सामायक किया । सामायकके समयमे उन्होने शत्रु-मित्र, सुख:दु ख जीवन-मरण और लाभ-हानि आदि सबके प्रति समताभाव होने की भावना की । सामायक करके उन्होने ऋषभ देवसे महावीर स्वामी तक चौवीस तीर्थंकरोकी स्तुति पढी । इस तरह राजा वसुदेव और गधर्व सेनाने महाभक्तिसे प्रभुके पूजा स्तवनसे हर्षित हो अन्तिम प्रणाम किया । मन्दिरकी प्रदक्षिणा करके वापस अपने महलमे लौट आये ।

गधर्वसेनाने जबसे उस नृत्यकारिनीको देखा था, उसके मन मे ईर्ष्या हो गई । उसकी आखे टेढी-टेढी होरही थी । भौहे तनी हुई थी । वह मान मारे मानिनी बनी हुई थी । राजासे खिन्न थी । राजा वसुदेव उसके मुख और आखोको देखकर सब समझ गया । राजा वसुदेव नर्म पड गया । वह जानता था कि पति नमा, और स्त्रिया का जोर गया । गधर्वसेना वसुदेवके नम्र होनेसे बहुत प्रसन्न हुई, उसके मान का लोप हो गया । पर बात यहा समाप्त न हुई ।

जबसे उस नृत्यकारिनीने वसुदेवको देखा था, वह वडी बेचैन थी। उसे दिनमे चैन न रातको नीद। वह इसी उधेड-बुन मे थी कि किस प्रकार अपने प्रिय राजाको पाये ! अन्तमे उसने एक वृद्ध विद्याधरीको राजा वसुदेवके पास अपना मनोर्थ सिद्ध करनेको भेजा।

साक्षात् विद्यासी वृद्धा ललाटमे तिलक लगाकर राजाके महलमें आई और एकान्तमे राजासे मिली और उसे आशीर्वाद दिया। इधर-उधरकी बाते करनेके वाद उस वृद्धाने नीलयशाके वशका परिचय देते हुए कहा—"हे राजन् ! इस समय असित पर्वत नामके नगरमे मातगवशका अतिप्रतापी राजा प्रहसित राज करता है। उसकी रानीका नाम हिरण्यवती है, जो सव विद्याओसे परिपूर्ण हैं। और मेरा पुत्र सिहदंष्ट्र है, जिसकी स्त्री का नाम नीलाजना है। उनकी पुत्री नीलयशा है। यह लडकी उज्ज्वल यशवाली, कुलवती, शीलवन्ती, कलावन्ती और गुणवन्ती है। तीर्थंकर वासपूज्य के मन्दिर के बाहर नृत्य करते समय उसने आपको जबसे देखा है, वह आपपर अनुरक्ता होगई है और आपके विरहमे अति व्याकुल हैं। वह न स्नान करती है, न कुछ खाती-पीती हैं और न बोलती है। उसकी इस दशा को देखकर उसके कुटुम्बके सभी स्त्री-पुरुष व्याकुल हैं। उसके माता-पिता भी चिन्तित हैं। उन्होने कुल विद्याधरीसे पूछा कि इस लडकीके मनमे क्या है ? राजा वसुदेव ने उत्सुकता से पूछा—"कुल विद्याधरीने क्या बताया ?' वृद्धाने कहा "कुल विद्याधरी ने सब हाल वताया और आपका वृतान्त कहा।" तब हम सब ने निश्चय किया कि यह यादवेश्वरके दर्शनोकी अभिलाषावती है। मैं आपको लेने आई हू। मैं उसकी दादी हू। हे राजन् ! निमित्तज्ञानीने वताया है कि वह वियोगिनी है। इसलिए आप शीघ्र चलो और उसे विवाहो।' वृद्धाकी मीठी-मीठी मनभाती बातोसे राजा वासुदेवके हृदयमे नीलयशा के प्रति अनुराग तेज होगया। वह नीलयशाके पास जानेका अभिलाषी हो गया, परन्तु

वह तत्काल चम्पापुरीसे जाना नही चाहता था। वसुदेवने वृद्धा विद्याधरीसे कहा, "हे माता ! मैं अवश्य आऊ गा, तुम इसमे सन्देह मत करो। तुम जाकर मेरे वचनोसे उसे धैर्य वधाओ।' वह वृद्धा राजाको आशीस देकर तुरन्त आने को कहकर चली गई। उसने जाकर नीलयशाको धैर्य बधाया।

रातको राजा वसुदेव और गंधर्वसेना महलमे सो रहे थे। राजा प्रहसित की रानी हिरण्यवती विद्याधरी वेताल कन्याका भयकर रूप बनाकर उनके महलमे आई। उसने वसुदेवको पकड कर खीचा। राजा जाग उठा, उसने दृढ मुट्ठियोसे हिरण्यवतीको खूब कूटा, पर उसने राजाको न छोडा। वह गलीके मार्गसे राजाको श्मशान भूमिमे ले गई। वहा श्मशानमे राजाने बहुतसी विद्याधरियोको देखा। तब वह हिरण्यवती विद्याधरी खिलखिलाकर हसी और कहने लगी—"मैं हिरण्यवती हू और वेताल विद्या से तुम्हे यहा लाई हू। यहा नीलयशा भी आपकी प्रतीक्षा कर रही है। मैं आप दोनोंकी अभिलाषा पूरी करूगी। फिर उसने नीलयशाको कहा—"तेरा प्राण वल्लभ आगया है। अपने हाथोसे इसका पल्ला छू। फिर उसने नीलयशाके हाथमे राजा वसुदेवका हाथ पकडाया। हाथसे हाथ छूते ही, दोनो आनन्द विभोर हो उठे। फिर वे दोनों सबके साथ नगरमे आगये। नीलयशाके पिताने उनका स्वागत किया। समस्त शहरमे उत्सव सा हो गया। फिर एक दिन शुभनक्षत्रमे राजाने वसुदेव और नीलयशाका विवाह कर दिया। वे वर-वधु आनन्द पूर्वक रहने लगे।

. ९

वसुदेव के और विवाह

एक दिन वसुदेव अपनी ससुराल महलमे बैठे हुए थे। उन्होने महा कोलाहल सुना। पास ही जो द्वारपालनी थी, वसुदेवने उससे उस कोलाहलका कारण पूछा। द्वारपालिनी कहने लगी—"मैं सब वृतान्त जानती हू। सो आप सुने। इस विजमार्द्धगिरि मे एक शकटामुख शहर है, जिसका राजा विद्याधरोका अधीश्वर नीलवान् है। राजाके नीलनाम का पुत्र और नीलाजना पुत्री है। आपके श्वसुर सिहदष्ट्र का विवाह नीलाजना से ही हुआ था। सिहदष्ट्र और नीलाजना के नीलयशा पुत्री हुई, जिसका विवाह आप से हुआ। परन्तु सिहदष्ट्र और नीलके आपस मे यह वचन था कि "यदि एकके पुत्र हो और दूसरेके पुत्री हो तो, उनके आपसमे विवाह हो।" नीलके यहा पुत्र नीलकठ हुआ और आपके श्वसुर के पुत्री नीलयशा हुई। आपस के बचनोके अनुसार उन दोनोका विवाह होना चाहिये था, पर नीलयशाके जन्म समय मुनियोसे उसके वरके बारेमे पूछने पर वृहस्पति नामके एक साधुने बताया कि इसका पति वसुदेव होगा। इससे सिहदष्ट्र ने नीलयशा का विवाह आपसे किया।"

इस पर वसुदेव ने पूछा—"इस कोलाहलसे इस कथाका क्या सम्बन्ध है ?" द्वारपालिनी कहने लगी—"वही तो मैं वता रही हू। आज राजा नील अपने पुत्र नीलकण्ठके लिए आपसे जो नीलयशा व्याही है, उसे माग रहा है और कह रहा है कि अपना वचन याद करो और उसे पूरा करो। राजा नीलने अपने पुत्र नील-कंठ सहित राजदरवारमे आपके श्वसुरसे विवाद किया। परन्तु

आपके श्वसुर सिंहदंष्ट्रने न्यायसे उन्हे जीत लिया। इस पर ही विद्याधर लोग कोलाहल कर रहे हैं।"

यह सुनकर राजा वसुदेव कुछ मुस्कराया।

शरद ऋतुमे राजा वसुदेव और नीलयशा बडे सुख-चैनसे दाम्पत्य जीवन बिता रहे थे। एक दिन वे पति-पत्नी हीमत पर्वत-पर घूमनेके लिए ऐसे निकले जैसे मेघ बिजलीके साथ आकाशमे चलता है। पर्वतके सुन्दर वनमे वृक्षोकी शोभा देखते-देखते नीलयशा पति-से कुछ क्षणोके लिए बिछुड गई। उस समय राजा नीलका पुत्र नीलकंठ मायासे मोरका रूप बनाकर नीलयशाके पास आया और वह पापी नीलयशाको कन्धेपर चढाकर आकाशमे ले उडा। वसुदेव नीलयशाके बिछुडनेपर बडा विह्वल और दुःखी होकर उसे वनमे ढूँढने लगा, पर नीलयशा उसे न मिलनी थी, न मिली। घूमते-घूमते रात हो गई। राजाने रात ग्वालोके यहा बिताई, जिन्होंने उसे ठन्डा जल और अच्छा भोजन दिया।

प्रातःकाल वसुदेव चलता-चलता दक्षिण दिशामे गिरतट शहरमे पहुचा। वेदपाठी ब्राह्मणोके वेदाध्ययनके शब्द से समस्त शहर और सब दिशाए गूँज रही थी। बडे कौतुकसे राजा वसुदेवने एक मनुष्यसे पूछा कि क्या कोई दानी ब्राह्मणोको महादान दे रहा है, जो यहा इतने वेदपाठी ब्राह्मण इकट्ठे हुए हैं। उस मनुष्यने बताया कि इस शहर मे विश्वदेव नामके ब्राह्मणके यहा क्षत्रिय नाम-की धर्मपत्नीसे मनोहर और वेदविद्यामे प्रवीण एक विवाह योग्य अति सुन्दर कन्या सोमश्री है। निमित ज्ञानियो ने बता रखा है कि जो वेदपाठी इसे वेदविद्यामे जीतेगा वही इसको व्याहेगा। इसलिए सोमश्री को वेदविद्या मे जीतनेके लिये ये सब वेदपाठी ब्राह्मण यहाँ इकट्ठे हुए हैं।"

यदुपति वसुदेव इस सुन्दरी सोमश्रीका यश सुनकर उसे वेदविद्या मे जीतने को आतुर हो उठा। पर वेदविद्या उसे आती न

थी। इसलिए मालूम करके वह उस नगरमे सहा विवेकी ब्राह्मणविद्या के वेत्ता ब्रह्मदत्त अध्यापकके पास वेदविद्या पढने गया। पहले तो ब्रह्मदत अध्यापकने उसे जैनधर्म के अनुसार भगवान् ऋषभदेवसे प्रारम्भ होनेवाली वेदविद्याके बारेमे वताया और फिर उसने ब्राह्मणोके अनुसार वेदविद्या की उत्पत्ति वताई। राजा वसुदेवने ब्रह्मदत्त अध्यापकसे शीघ्र ही सब वेदविद्याए सीख ली और सोमश्रीको विवादमे जीतकर उससे विवाह किया। वसुदेव और सोमश्रीका परस्परमे खूव स्नेह वढा और वे दोनो बडे आनन्दसे रहने लगे। सोमश्री राजा वसुदेव की सगति से जिनराजकी महाभक्त बन गई।

वसुदेवकी विद्याए सीखनेमे बडी रुचि थी। वह हरवात शीघ्र सीख लेता था। इन्द्रशर्मा व्यक्तिके उपदेशसे वसुदेव उद्यानमे रातको विद्या साधने लगा। कुछ धूर्तोने उसे देखा और पालकीमे बिठाकर पिछली रातमे दूर जा डाला। वहासे चलता-चलता वह तिलक वस्तुक नगरमे पहुचा। वसुदेव उद्यानमे भगवानके मन्दिरके समीप सो रहा था कि राक्षसीविद्याका साधक नरमासभक्षक वहा आपहुचा। उसने वसुदेवको जगाकर कहा कि वह भूखा शेर है और शेरके मु हमे वह अपने आपही आगया है। महाशूरवीर वसुदेव और उसमे मुक्तोका भयकर युद्ध हुआ। वसुदेवने उसे पछाडकर पाव तले दबा लिया। उस नरभक्षीने उससे प्राणदान मागे। वसुदेवने उससे फिर उस नगरमे न आने और वहासे चले जानेका वचन लेकर दया करके छोड दिया। वह क्रूरनरभक्षी वहासे दूर चला गया।

दिन निकलनेपर शहरके लोगोने यह जानकर कि उस दुराचारी नरभक्षकको इस नवागन्तुक ने मारा है, वे वसुदेवको रथमे चढाकर शहरमे ले गये। वहा शहरकी बहुत सी कुलवन्ती रूपवन्ती लडकियो से उसका विवाह होगया।

वसुदेवने वहाके लोगो से पूछा कि यह नरमासका भक्षक दुष्ट कौन है और यह किस तरह नरभक्षी वना ? तव नगरके कुछ

वडे-बूढोंने वसुदेवसे कहा—"कलिंगदेशमें काचनपुर शहरमे राजा जितशत्रु था। वह अखण्ड आज्ञावाला और प्रजाका पालक था। उसके राज्यमे जीवमात्रकी हिंसा न होती थी। समस्त देशमे सबके लिए अभयदानकी आज्ञा थी, किसी जीवको कोई भय न था। राजाका पुत्र सौदास महापापी और मासभक्षक था। राजाने उसको वहुत धिक्कारा, पर वह सबसे छुपकर महलमे मास खाने लगा। महलमे एक दिन इसके लिए बने हुए मांसको बिलाव ले गया। तब रसोइये ने शहरसे वाहर जाकर एक मरेहुए बालकका मास बनाकर सौदासको खिलाया। उस स्वादिष्ट मासको खाकर सौदास बडा प्रसन्न हुआ। उसने रसोइयेसे पूछा, सच-सच बताओ यह मास किसका है ? मैंने अनेक जीवोके मास खाया है, परन्तु इसका सौवा-भाग भी स्वाद उनमे न था। डरो मत, जो बात हो, वही कहो।" रसोइयेने उसे बताया कि यह बालकका मास है। तब सौदासने उसे नित्य वैसाही मास पकानेको कहा। रसोइयेने राजकुमारको समझाया कि उसके पिताके राजमे यह काम नही हो सकता और राजकुमार और रसोइया दोनो मारे जायगे। पर वह राजकुमार न माना और चोरी-छिप्पे मृत बालक मगा-मगा कर खाने लगा। कुछ समय पश्चात् राजा जितशत्रु परलोक सिधारे और राजकुमार सौदास सिंहासन पर बैठा। अब राजकुमार और रसोइयेकी बन आई। रसोइयेने रसोईमें बच्चोको लड्डू बाटे। किसी-न-किसी बालकको मारकर रसोइया राजकुमारके लिए मास बनाने लगा। इससे शहरमे बच्चोंकी हानि होने लगी। किसी प्रकार शहरके लोग इस रहस्य को जान गये और उन्होने राजाको देशसे निकाल दिया। अब सौदास दिनमे तो वनमे रहता था पर रातको व्याघ्रके समान यहा आता था और किसी न किसी मनुष्यको खा जाता था। वह पापी लोगो-का नाशक किसीसे भी जीता न गया। आप महाशक्तिवान है, आपने उसे भगाकर हमारा बडा उपकार किया है।"

शहरके लोग वसुदेवको वस्त्राभूषण और पुष्पमालाए देकर उसको पूजने लगे ।

इसके पश्चात् वसुदेवने अचल ग्राममे समुद्रके एक वडे व्यापारीकी लडकी बनमाला से विवाह किया । फिर राजा वसुदेव ने वेदसामपुर के राजा कपिलश्रुतको युद्धमे जीत कर उसकी राजकुमारी कपिला से विवाह किया । वसुदेवके यहा उससे कपिल नामका प्रसिद्ध पुत्र हुआ । वहा रहते हुए कपिलके भाई और अपने साले अशुमत से वसुदेवकी वडी प्रीति हो गई । एक दिन वसुदेव वनमे हाथी पकडने गया था । वहा नीलयशाका ममेराभाई-नीलकण्ठ विद्याधर जो नीलयशा न मिलने के कारण इनका शत्रु बन गया था, गध हस्तिका रूप धारण करके बनमे से वसुदेवको ले उडा । महायोद्धा वसुदेवने उस नीलकण्ठ मायामय हाथीको मुक्के मारे । इस पर उस हाथीने वसुदेवको ऊपरसे एक उद्यानमे एक सरोवरमे डाल दिया । बसुदेव बिना किसी व्याकुलताके सरोवरसे निकलकर गुहानामा पुरी मे गया ।

गुहापुरीमे धनुर्विद्यामे प्रवीग पद्मावती राजकन्या थी । उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो उसे धनुर्विद्यामे जीतेगा वह उससे विवाह करेगी । वसुदेवने पद्मावतीको भी धनुर्विद्यामे जीतकर व्याहा । फिर वसुदेवने जयपुरके राजाको जीतकर उसकी पुत्रीसे विवाह किया ।

इसके पश्चात् वसुदेव अपने साले अश्रुमतके साथ भद्रलपुर गया । वहाके राजा पौण्ड्रके चारूहासिनी पुत्री थी । वह औषधियोके प्रभावसे पुरुषका रूप वना लेती थी । वसुदेवने उसे भी व्याहा । उससे सपौद्र पुत्र हुआ । एक रातको वासुदेव चारूहासिनी और पुत्र समेत सो रहे थे, कि अगारक विद्याधर हसका रूप बनाकर वसुदेव को ले उडा । वसुदेव और अगारक की लडाई हुई और अगारकने वसुदेवको आकाशसे गगामे डाल दिया ।

वहासे निकलकर प्रात वसुदेव इलावर्द्धन नगर गया, जहा एक महाजनकी दुकानपर विश्राम करने बैठ गया। महाजनने भी सत्कारपूर्वक उसे बैठनेको आसन बिछा दिया। उस समय महाजन-को इतना लाभ हुआ, कि वह उसे पुण्यधिकारी समझकर अपने घर ले गया और उससे अपनी लडकी रत्नावती का विवाह कर दिया। ये वहा बडे सुखसे रहने लगे।

इलावर्द्धनमे रहते हुए वसुदेव एक दिन महापुर शहरमे इन्द्रध्वज पूजा देखने गया। वहां उसने नगरके बाहर बहुत से महल देखे। वसुदेवने किसीसे पूछा कि वहा इतने महल क्यो बनाये गये हैं। तब उसने वसुदेवको बताया कि वहाके राजा सोमदत्तने अपनी राजकुमारीके स्वयवर में आनेवाले राजकुमारोके लिए ये मन्दिर बनवाये थे। पर वह राजकुमारी किसी कारण ससारसे विरक्त हो गई और आर्यिका बन गई। सब राजकुमार वापस चले गये। वसुदेवने उस बालब्रह्मचारिणी राजकुमारीको "धन्य धन्य" कहा।

वसुदेव बैठे-बैठे इन्द्रध्वज पूजा देख रहे थे कि राजा सोमदत्तकी रानी भी वहा इन्द्रध्वज पूजा देखकर महलको वापिस जा रही थी। उसी समय एक मस्त हाथी अपने बधन का थम्भ उखाड़कर साक्षात मृत्युका स्वरूप बनकर मनुष्योको मारता-मारता वहा आया। वहा बडा कोलाहल मच गया। स्त्रियोके समूह डरसे इधर-उधर भागने लगे। एक लडकी हाथीके भयसे पृथ्वीपर गिर पडी। यह देखकर वसुदेव हाथीके सामने आडटा और सबकी रक्षा करके उसने हाथीको वशमे कर लिया। वसुदेवने उस मूर्छित पडी कन्याको धैर्य बधा कर उठाया। वसुदेवके सुखदायक कर-स्पर्श और दर्शन से वह लडकी लजा सी गई और विस्मीभूत होगई। वसुदेव तो अपने स्थान को वापिस चला गया और उसकी धाय और सहेलिया उस लडकी को अन्त पुर ले गई।

उस लडकीका नाम सोमश्री था। उसके पिताका नाम राजा

सोमदत्त, माताका नाम पूर्णचन्द्रा और भाईका नाम भूरिश्रवा था। उसके स्वयम्वरमें अनेक राजा बुलाये गये। रातके समय सोमश्री अपने महल मे बैठी सोच रही थी कि उसका पति कौन होगा। उसी समय उसे जाति-स्मरण हुआ। अर्थात् अपने पूर्व जन्मकी याद आ गई और उसे स्मरण हुआ कि इस जन्मने भी उसके पूर्वजन्मका पति ही उसका पति वह व्यक्ति होगा जो उसे मस्तहाथी से बचायगा। सोमश्रीने यह समस्त बात अपने पिता सोमदत्तसे एक द्वारपालिनीसे कहलाई। राजाने द्वारपालिनीको वसुदेव का समस्त बात बताते और सोमश्री से विवाह करके लाने के लिए भेजा। इस बातको सुनकर वसुदेव बडा प्रसन्न हुआ और उसने सोमश्रीसे विवाह किया।

वसुदेव और सोमश्री सुख से काल बिताने लगे। पर उनका यह सुखी जीवन बहुत दिन तक न चल सका। एक रात जब वसुदेव और सोमश्री सोरहे थे, एक विद्याधर सोमश्री को लेकर उड गया और अपनी बहन वेगवती विद्याधरी को सोमश्रीके स्थानपर छोड़ गया। जब राजा वसुदेव जागे तब सोमश्रीको वहा न पाकर व्याकुल होकर 'सोमश्री, सोमश्री' पुकारने लगे। सोमश्रीको रूपधारिणी विद्याधरी वेगवती बोली—"मैं आपकी अनुचरी आपकी सेवामे हू।" सोमश्रीके रूपमे वेगवतीको देखकर वसुदेवको वह साक्षात सोमश्री ही लगी। तब वसुदेवने उससे पूछा, "हे प्रिये! तुम बाहर क्यो गई थी ?" तब वह मायाचारिनी विद्याधरी सोमश्री के सदृश बोलती हुई कहने लगी, "हे प्रभो!, मुझे महल मे गरमी लगी इसलिए मैं बाहर चली गई थी।"

वेगवती विद्याधरी बडी कुशल और चतुर थी। उसने वसुदेवको सेवासे मोह लिया। वह वसुदेवके सोनेपर सोती और उसके जागनेसे पहले जाग उठती। वसुदेवको विद्याधरीके रहस्यका गुमान भी न हुआ। पर एक दिन वसुदेव किसी कारण पहले जाग उठा उसने अपनी पत्नी सोमश्री की शकल सूरत और रूप न देखे, बल्कि

वेगवती का और ही रूप देखा। तब वसुदेवने तुरन्त उसे जगाकर पूछा,—"सच बता तू कौन है और यहा इस तरह सोमश्री की तरह रहने का क्या प्रयोजन है ?"

इस पर उस मायाचारिनी विद्याधरी वेगवतीने प्रणामकर उत्तर दिया, 'हे प्रभो !' विजयार्द्धगिर की दक्षिण श्रेणीमे एक सुरनाथ नगर है। उसका राजा चित्तवेग विद्याधर है। उसकी रानी का नाम अगारवती है। उसके मानसवेग पुत्र और मैं वेगवती बेटी हू। एक दिन राजा चित्तवेग अपने लडके मानसवेगको राज देकर तप करनेके लिए वन मे जाकर मुनि हो गया। मेरे भाई मानसवेगने आपकी रानी सोमश्रीको हरलिया और उसे अपने नगरमे ले गया। सोमश्री बडी पतिव्रता अपने शीलमे अखण्ड है। मेरे भाई ने मुझे सोमश्रीको प्रसन्न करने और उसे मानसवेगके प्रति अनुरक्त करनेके लिए उसके पास छोडा। पर मैं उस शीलवती स्त्रीको डिगानेमे असफल रही और अन्त मे उसकी सखी बन गई। मैं उसके शील और सत्यके वश होगई। उसने मुझे सब वृतान्त कहने को आपके पास भेजा है। मै कुंवारी और नवयुवती तो थी ही, आपका रूप देखकर आपपर मोहित हो गई। चित्त की विचित्र गति है। यदि आप मुझे वेगवतीके रूपमे देखते, तो मुझे स्पर्श न करते। इसलिए मैंने स्वय ही आपको वर लिया। मै बडे कुलकी बेटी और कुंवारी हू। अब आप मेरे पति और मै आपकी पत्नी हू। जैसे आप सोमश्रीके पति हो, वैसे ही मेरे भी पति हो। ऐसा कहकर वेगवती विनम्र होगई और आखें नीचे करली। फिर उसने सोमश्री के हरणका पूरा वृतान्त बताया।

समस्त बात सुन कर यदुपति बडे खिन्न हुए, क्योंकि सोमश्रीका अपहरण और वेगवतीका अदत्तादान अर्थात् बिना विवाह आना दोनों ही बातें अयोग्य और बुरी हुई। पर अब क्या बस चलता था ? अब वेगवती अपने असली रूप मे वसुदेव के साथ सोमश्रीके पत्नी रूपमे रहने लगी।

वसन्त ऋतु आई। एक दिन कुमार वसुदेव और वेगवती महलमे सो रहे थे, तब वेगवतीका भाई दुष्ट मानसवेग जो सोमश्री-को हरले गया था सोते हुए वसुदेवको भी ले उडा। जब वसुदेवकी आखे खुली और उसने समस्त बात समझी, तब मानसवेगको मुक्के मार मार कर कम्पायमान कर दिया। मानसवेगने वसुदेवको नीचे फेक दिया। वह गगामे जा पड़ा। वहा एक विद्याधर विद्या साध रहा था। सयोगसे वसुदेव उसके कधेपर आपडा। वसुदेवके प्रतापसे उसकी विद्या सिद्ध हो गई। उस विद्याधरने बसुदेवको प्रणाम किया और अपने नगरको चला गया।

वहासे विद्याधरोकी कन्या वसुदेवको विजयार्द्धमे नभस्थल नगरमे ले गई। वहा विद्याधर ही विद्याधर थे, वहा वसुदेवका बडे गाजेबाजेसे स्वागत किया गया, उसे फूलमालाए पहनाई गई। वहा वसुदेवका सास मदनवेगा राजकुमारी से विवाह हुआ। वे दोनो सुखसे रहने लगे। मदनवेगाने वसुदेवको इतना प्रसन्न किया कि एक दिन वसुदेवने उसे कोई वर मागनेको कहा। मदन-वेगाने कहा कि उसका पिता शत्रुके बधन मे है, कृपा कर उसे छुडा दो।

वसुदेव और त्रिशिखर युद्ध

मदनवेगाने राजा वसुदेवसे वर मांगा था कि उसके पिताको शत्रुके बन्धनसे छुडाओ । वसुदेव ने मदनवेगाके भाई अपने साले दधिमुखसे पूछा "तुम्हारा पिता किस तरह बन्धन मे है और वह कैसे छूट सकता है ?" तब दधिमुखने वसुदेवको यह वृतान्त बताया "हे कुमार ! नमि विद्याधरके वशमे अनेक राजा हुए हैं । कई पीढियोके पश्चात् अरिजयपुरका स्वामी मेघनाथ हुआ । उसकी पद्मश्री कन्या थी । किसी निमित्तज्ञानीने राजाको बताया कि इस लडकीका पति चक्रवर्ती होगा । नभस्तिलक नगरके राजा वज्रपाणिने मेघनाथसे पद्मश्रीको अनेक वार विवाहके लिए मागा, पर राजा मेघनाथने अपनी लडकीका विवाह उससे न किया । इस पर वज्रपाणिने क्रोधमे आकर राजा मेघनाथसे युद्ध किया, पर वह विजय प्राप्त न कर सका और अपने नगरको चला गया । फिर राजा मेघनाथने केवली भगवानकी पूजा करके, उनसे पूछा—हे, प्रभो ! मेरी पुत्रीका पति कौन होगा ?" इस पर केवलीकी ध्वनिमे आज्ञा हुई कि हस्तिनापुरके कुरुवंशियोके राजा कार्तवीर्य महाबलवानने कामधेनुकेलिए यमदग्नि तपस्वीको मारदिया था और यमदग्निके पुत्र यमराजके समान क्रूर परशुरामने पिताके वैरी कार्तवीर्यको मार कर बदला लिया । इतना ही नही, परशुरामने कई बार क्रोधमे क्षत्रियोका नाश किया । जिस समय परशुरामने कार्तवीर्यको मारा, उस समय कार्तवीर्यकी पत्नी रानी-तारा गर्भवती थी । वह छुपकर निकल गई और वन मे कौशिक नामक तपस्वी के आश्रममे शरणके लिए गई । वहां वह निर्भय होकर रहने लगी और कुछ महीने पश्चात् ताराराणीने शुभ नक्षत्र-

मे आठवे चक्रवर्तीको जन्म दिया वही परशुराम को मारेगा। कौशिक तपस्वीके आश्रममे रानीताराने इस चक्रवर्तीको भूमिगृह मे जन्म दिया था, इसलिए यह सुभूमि कहलाया। सुभूमि की माता-को सदा यह भय रहता था कि कही परशुराम इस वालकको न मार दे, इसलिए उसने बडी सावधानीसे वालक को पाला। केवली-ने राजा मेघनाथको वताया कि थोडे ही समय मे वह चक्रवर्ती सुभूमि तुम्हारी पुत्री पद्मश्रीका पति होगा। केवलीने यह भी वताया कि वह चक्रवर्ती इस समय तपस्वी के आश्रम मे है।

परशुराम क्षत्रियोके लिए यमराजके समान था। सात वार उसने पृथ्वीको क्षत्रीरहित किया और आप उसका एकछत्र महा-प्रतापी राजा बनकर उसका भोग किया है। सयोगकी बात है, कि ज्यो-ज्यो सुभूमि बडा हो रहा था, त्यो-त्यो परशुरामके घरमे अनेक उत्पात हो रहे थे। इस पर परशुरामने निमित्तज्ञानियोसे इसका कारण पूछा। उन्होने उसे बताया, "किसी स्थानमे तेरा शत्रु बडा हो रहा है।" इस पर परशुरामने पूछा कि उसे कैसे मालूम करू। इस पर निमित्तज्ञानियो ने उसे वताया "तुमने क्षत्रियोके बडे समूह मारे हैं। जिसके भोजन करने पर मरे हुए क्षत्रियो की दाढे दूध बन जाय, वही तुम्हारा शत्रु होगा।" परशुरामने अपना शत्रु जाननेके लिए क्षत्रियोकी दाढे इकट्ठी कराई और दानशालामे रखवाई। जब भोजन करने वाले आते थे, परशुराम उनको डाढोसे भरे पात्र दिखाता, पर किसीके देखनेसे कुछ न हुआ।

मेघनाथ केवली से यह वात सुनकर उन्हे नमस्कार कर तपस्वीके आश्रममे गया और वहाँ सुभूमिको देखा। इस समय सुभूमि शस्त्र और शास्त्र सबमे प्रवीण और अपने प्रतापसे सूर्यके समान बहुत देदीप्तमान दिखाई दे रहा था। मेघनाथ सुभूमिको देखकर बडा प्रभावित हुआ और एकान्त मे उससे समस्त वात कही। और वताया—"तुम ही परशुराम शत्रुको नाश करने वाले हो। अब तुम उद्यम करो।" मेघनाथ और सुभूमि क्षत्रियशत्रु-

परशुरामके घरमे आये। वहा दानशालाके अधिकारियोने सुभूमिको आसन पर विठाकर क्षत्रियोकी दाढे दिखाई। सुभूमिके प्रभावसे वे दूध वनगये। इसपर भोजनशालाके अधिकारियोने तुरन्त जाकर परशुरामको वताया कि तुम्हे मारनेवाला प्रकट हो गया है। परशुराम झटसे हाथमे अपना फरसा लेकर सुभूमिको मारने आया। मुभूमिके हाथमे भोजनका जो थाल था, वह मुदर्शन चक्र बन गया। और मुभूमिने उससे परशुरामको मार दिया।

तव मेघनाथ विद्याधरने अपनी पुत्री पद्मश्रीका विवाह मुभूमिसे किया। क्षमा और मित्रताभाव न होनेसे कार्त्यवीर्य द्वारा जमदग्नि, परशुराम द्वारा कार्त्यवीर्य और बहुतसे क्षत्री और मुभूमि द्वारा परशुराम मारे गये। यदि ये क्षमासे काम लेते और सबके प्रति द्वेषभाव के स्थान पर मित्रताभाव रखते, तो न यह शत्रुता बढ़ती और न व्यर्थ इतने शूरवीर ही मारे जाते।"

राजा वसुदेवको मदनवेगाके भाई दधिमुखने वताया—"इसी वशमे उसका पिता विद्युद्वेग राजा हुआ। एक दिन विद्युद्वेगने अवधज्ञानी मुनिसे पूछा—"भगवन! मेरी पुत्री मदनवेगाका पति कौन होगा?" तव मुनि ने उससे कहा—"गगामे चण्डवेग नामका विद्याधर विद्या साध रहा है। रातके समय जो आदमी चण्डवेग के कधेपर चढेगा उससे चण्डवेगकी विद्या सिद्ध होगी और वही तेरी पुत्री मदनवेगाका पति भी होगा।" मुनिकी यह वात सुनकर मेरे पिताने गगाके किनारे आपको गगामे चण्डवेगके कन्धो पर पडनेपर आपसे मदनवेगा विवाहदी। पर नमस्तिलक नगरके धनी- राजा त्रिशिखर विद्याधरने अपने बेटेकेलिए मदनवेगा को मागा, परन्तु मेरे पिताने यह वात न मानी। तव त्रिशिखरने युद्धमे मेरे- पिताको पकडकर कैदखानेमे डाल दिया। अब आप अपने श्वसुरको छुडानेका उपाय करें। सुभूमि चक्रवर्तीने हमारे वडोपर कृपा कर [illegible] अनेक शस्त्र दिये थे, आप उनको लेकर शत्रुओको जीते। [illegible] दधिमुख ने अपने श्वसुर विद्युद्वेगा के वन्दी

होनेकी समस्त बात सुनकर राजा वसुदेव श्वसुरको छुडानेकेलिए त्रिशिखरसे युद्ध करनेको तैयार हो गया। दधिमुख और चण्डवेगने वसुदेवको अनेक प्रकारके शक्तिशाली महाघातक दिव्यअस्त्र दिये, जैसे ब्रह्मयक्ष आग बरसाने वाला अग्नेयअस्त्र, बरुणाअस्त्र जो जोर की वर्षा करे, और वायु चलानेवाला अस्त्र दिये। बाधनेवाले अस्त्र और बन्धन छुडवानेवाले अस्त्र भी वसुदेवको दिये गये। वसुदेव अनेक प्रकारकी सेना तैयार कर श्वसुर परिवारके अनेक योद्धाओको साथ लेकर त्रिखिरसे युद्ध करनेको तैयार हो गया।

अपने ऊपर आक्रमण होनेकी सम्भावनाका समाचार पाकर त्रिशिखरने अपने नगरसे चलकर नभस्थलपर चढाई कर दी। राजा-वसुदेव यह बात सुनकर बडा हर्षित हुआ कि शत्रु स्वय ही बिना बुलाये उनपर चढ आया। इधरसे वसुदेव श्वसुर कुलकी सेनाको लेकर त्रिशिखरसे लडनेको उसके सामने जा डटा। राजा वसुदेव तेज घोडोके रथ पर सवार था। और उनका साला दधिमुख स्वय उनका सारथी बना। दोनो तरफ प्यादे, घुडसवार और हाथी-सवार शूरवीर योद्धा थे। शस्त्रो की चमक के सामने सूर्यकी-किरणे मन्द पड गई। हाथी घोडोके पावकी गर्दसे आकाश आच्छादित होगया। मारूबाजोकी ध्वनिसे आकाश गूज उठा।

दोनो सेनाओमे लडाई आरम्भ हो गई। शुरू मे साधारण-शस्त्र चलाए गए। बाणोसे अपने सामनेके योद्धाओके बक्तरबन्द छेदे गए, हृदय भेदे गए, सिर काटे गए, पर उनके चन्द्रमा समान उज्ज्वल यशको न भेदा जा सका। सुभटोने अपने सिर तो दे-दिए, पर अपने यशको न जाने दिया। तलवारोकी मारसे बडे योद्धा रणभूमिमे वीरगतिको प्राप्त हुए, पर उन्होने न तो पीठ दिखाई और न अपने प्रताप को ही जाने दिया। शस्त्रोकी मारसे महाज्ञानी शूरवीरोकी आखे भ्रम मे पडगई, परन्तु उनके मनमे भ्रम पैदा न हुआ।

राजा वसुदेवके साथी योद्धा चण्डवेगने त्रिशिखरके कई

शूरवीर पुत्रोको मारकर खेत किया। पहले साधारण शस्त्रोसे युद्ध हुआ, पर जब उनसे लडाई समाप्त न हुई, तो दोनो तरफसे दिव्य अस्त्रोसे युद्ध होने लगा। पहले राजा वसुदेवने त्रिशिखरपर आग्नेय अर्थात् आग लगाने वाला अस्त्र छोडा। त्रिशिखरने उसके मुकाबलेमे वारुणअस्त्र चलाया, जिसने पानीकी वह वर्षाकी कि समस्त आग बुझ गई। त्रिशिखरने वसुदेवपर मोहनी अस्त्र चलाकर उसे मोहित किया। उसके प्रभावको दूर करनेके लिए वसुदेवने चित्तप्रमादअस्त्र चलाया, जिससे मोहनी समाप्त हो गई। इस प्रकार अस्त्र पर अस्त्र पर चले अन्तमे वसुदेवने माहेन्द्र अस्त्र चलाया और त्रिशिखरके सिरको छेद दिया, शत्रु राजा त्रिशिखरका मरना था कि उसकी सेनामे भगदड मच गई। और राजा वसुदेव की विजय हुई।

तब राजा वसुदेवने अपने शूरवीर योद्धाओके साथ त्रिशिखरकी राजधानी नभस्तिलकमे प्रवेश किया और वहासे अपने श्वसुर विद्युद्वेगको बन्धनसे मुक्त किया। इस विजय और वीरतापूर्ण कामसे वसुदेवके यशको चार चाद लग गये और वह बहुतसे दूसरे राजाओको जीतकर अधिपति बन गया।

११

राजा वसुदेव : वेगवती मिलन

त्रिशिखरको पराजित करनेके पश्चात् वसुदेव रानी मदनवेगाके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। उनके यहा महारूपवान् और अतिबली एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अनाव्रत था। यह पुत्र महाविवेकी और बुद्धिमान हुआ।

एक दिन सब विद्याधर अपनी स्त्रियो सहित सिद्धकूट चैत्यालयकी वन्दनाके लिए गए। राजा वसुदेव भी मदनवेगाके साथ वहा गया। वहा विद्याधरोने बडे भक्तिभावसे प्रभुकी पूजाकी और अनेक शृगार करके अपने-अपने स्तम्भोसे लग कर बैठ गए। वे विद्याधर भिन्न-भिन्न जातियोकेथे। उनके रूप-रग और शृगार आदिको देखकर वसुदेवने मदनवेगासे उन विद्याधरोका परिचय पूछा। तब मदनवेगाने वहा उपस्थित सभी विद्याधरोकी जातिया बताई।

कुछ देरके पश्चात् सभी विद्याधर अपने-अपने स्थानोको लौट गए। वसुदेव भी मदनवेगा सहित वापस आगया। एक दिन वसुदेवने मदनवेगाको वेगवती नाम लेकर पुकारा। राजा वसुदेवकी-रानी वेगवतीका वर्णन पहले बताया जा चुका है। मदनवेगा वेगवतीका नाम सुनकर ईर्ष्यासे क्रुद्ध होकर घर मे बैठ गई और राजा के पास न गई। उसी समय राजा त्रिशिखरकी विधवा स्त्री सूर्यनखा ने मदनवेगा का रूपबनाकर छलसे राजा वसुदेवसे 'हा' कहा। पर उसी समय सूर्पनखा को आकाश मे वसुदेवका शत्रु मानसवेग दिखाई दिया। सूर्पनखाने यह जानकर कि यह वसुदेवका मारने वाला शत्रु है, वसुदेवको उसे सौंप कर वह उड गई। और मानसवेगने उनको आकाशसे नीचे डाला और वह तिनकोके ढेरपर पडा और उसे कोई चोट न लगी।

वसुदेवने वहा लोगोके मुहसे जरासधका यशगान सुना और उसे मालूम हुआ कि यह राजगृह नगरहै। वह नगर मे गया और वहा जुएमे एक किरोड दीनार जीते और उनमे से एक कौडी भी अपने पास न रखकर सब दान कर दी। उस समय किसी निमित्त-ज्ञानीने जरासधको बताया कि जो आदमी ऐसा उदार दानी होगा, उसका पुत्र तुम्हारा घातक होगा। यह सुन कर जरासधने द्यूतक्रीडाके स्थानमे अपने नौकर बिठाए, जिन्होने वसुदेवको एक खालमे डालकर पहाडसे नीचे डाला, ताकि वह तत्काल मर जाय। तभी वसुदेवकी पत्नी वेगवती वहा आपहुंची और उसे खाल समेत ले-चली। तब वसुदेवने जाना कि यह वेगवती है और चिन्तित हुआ कि जैसे पक्षी सेठ चारुदत्तको ले उडे थे, वैसे ही मुझको भी ले जा रहे हैं और मुझे कष्टोकी कमी न रहेगी। उसने सोचा "ससार मे बन्धुजन, भोगसम्पदा और शरीरकी काति सब दुखदायक हैं। परतु प्राणी इस बातको समझता नही। आदमी जो पुण्य-पाप करता है, उनके फलको भोगनेवाला यह प्राणी स्वय अकेला ही है, उसमे दूसरा कोई उसका साझीदार नही है, यह आदमी अकेला जन्म लेता है और अकेला मरता है। कोई इसका साथी नही है। फिर भी यह जीव वृथा कुटुम्बका अनुराग करता है। न यह किसीका है और न कोई इसका है। वास्तव मे वे धीर पुरुष सुखी हैं, जिन्होने आत्म-कल्याण किया है और जो समस्त भोगोपभोगको त्यागकर मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त होते हैं। हम सरीखे आदमी भोग-तृष्णा रूपी लहरमे डूबे हुए, पापकर्म करनेवाले ससार समुद्रमे बारबार झकोले खाते हैं। यह ससारसमुद्र दुख रूप जल से भरा है, इसमे सुख नामको भी नही है।"

इस तरह सोचता हुआ समुद्रविजय का वीर भाई वसुदेव वेगवतीके स्थान पर पहुचा, जहां उसने वसुदेवको खालसे बाहर निकाला। विरहसे दुखी वेगवती अपने पति वसुदेवसे बहुत समय के पश्चात् मिलकर फूट-फूट कर रोने लगी। तब वसुदेवने उसे

प्यार से छातीसे लगाया और बिछडे हुए पति-पत्नी मिलकर बहुत सुखी हुए। वसुदेवने उससे पिछली सब बाते पूछी। वह कहने लगी—"जब आपको शत्रु ले उडा, तब मैंने पहाड की दोनो श्रेणियो मे सब वनो और नगरोमे आपको ढूढा। फिर समस्त भारत क्षेत्रमे तलाश किया, पर कही आपको न पाया। तब ढूँढते-ढूँढते मैंने आपको मदनवेगाके पास देखा। पर मैंने यह नही चाहा कि आपको उससे अलग करू। फिर त्रिशिखर की विधवा सूर्पनखा ने आपको हरा, क्योकि आपने उसके पतिको युद्धमें मारा था। वह आपको मारना चाहती थी, पर उसने आपको आपके शत्रु मानसवेगको सौप दिया। उसने आपको आकाश से नीचे डाल दिया और आपको जरासिन्धके सेवको ने खालसे बन्द करके पहाड से नीचे डाल दिया। वहासे मैं आपको ले आई। अब हम हीमन्त पर्वत पर हैं और यहा पचनन्द तीर्थ हैं।

वसुदेवने वेगवतीसे सब वृतान्त सुनकर बडा आश्चर्य किया। उन दोनो को साथ रहते थोडे दिनही हुए थे कि एक दिन राजा वसुदेव हीमन्त पर्वतपर अपनी इच्छासे घूम रहे थे। वहा उसने किसी विद्याधरकी एक रूपवती कन्या नागपाशसे दृढ बधी देखी। तब राजा वसुदेवने बहुत दया करके उसे नागपाशके बधनसे छुडाया। लडकीने कृतज्ञता भावसे उसे नमस्कार करके कहा "हे नाथ, आपकी कृपा से मुझे विद्यासिद्ध हुई है, इसलिए आप मेरे पति हो। मैं गगनवल्लभनगर मे राजा विद्युदष्ट्र के वश मे एक राजाकी बालचन्द्रा राजकुमारी हू। मैं नदीके किनारे पर विद्या-सिद्ध कर रही थी कि एक विद्याधरने मुझे नागपाश से बाध दिया। उससे आपने मुझे अब छुडाया है। पहले हमारे वशमे केतुमती नामकी एक राजकुमारी भी इसीभाति विद्या सिद्ध करती हुई किसी विद्याधरके द्वारा नागपाश मे बाधी गई थी, जिसे पुण्ड-रीक नामके अर्द्धचक्री पाचवे नारायणने बधनमुक्त किया था। वह केतुमती पुण्डरीक की धर्मपत्नी हुई। वैसे ही मैं भी आपकी पत्नी

अवश्य होऊगी। हे नाथ ! जो विद्या मैंने सिद्ध की है, वह देवोको भी प्राप्त होनी दुर्लभ है। इसलिए आप इसे स्वीकार करे।" पर वसुदेवने वह विद्या स्वय न लेकर उसे बेगवतीको देनेका आदेश दिया। इस आदेशको पाकर वालचन्द्रा आकाश मार्गसे बेगवतीको अपने नगर गगनवल्लभ मे ले आई और उसे अपनी विद्या देकर निश्चित हुई।

: १२ :

रानी रामदत्ता का न्याय

श्रीगौतम गणधरसे राजा श्रेणिकने पूछा "हे प्रभो ! विद्युदष्ट्र विद्याधर कौन था और उसकी क्या कथा है ?" तब गौतम गणधरने कहा—"गगन वल्लभ नगरमे नमिवशमे विद्युदष्ट्र पराक्रमी राजा था । एक दिन पश्चिम विदेहसे एक मुनिको लाकर उसने उसको बडा कष्ट दिया ।" इस पर राजा श्रेणिकने मुनिको कष्ट देनेका कारण पूछा ।

श्रीगौतम गणधरने कहा—"इस जम्वद्वीपमे पश्चिम विदेहमे गधमालिनी देशमे वीतशोका नगरमे राजा वैजयत रहता था । उसकी रानी सर्वश्री लक्ष्मीके समाग महामनोज्ञ रूपवान थी । राजा के दो पुत्र सजयत और जयत थे । एक बार तीर्थकर स्वयम्भु विहार करते-करते वीतशोका पुरी आये । राजा वैजयन्तने दोनो पुत्रो सहित तीर्थंकरका उपदेश सुना और साधु बनकर उनके साथ घूमने लगा । वह मोक्ष पा गया । छोटा पुत्र जयत भी पिताके तपको देखकर मुनि वन गया । तप करके उसने देव जन्म पाया । वडा राजकुमार सजयत भी मुनि बन कर वीतशोका पुरीके समीप शमशानमे सात दिनका कठोर तप करने लगा । एक दिन विद्याधर विद्युदष्ट्र अपनी स्त्रियो सहित भद्रशाल वनमे घूमफिर कर गगन वल्लभ नगर को लौट रहा था । सजयत मुनिको देखते ही वह पूर्वजन्मकी शत्रुताके कारण मुनिसे क्रुद्ध होगया और अपनी विद्याके वलसे उसे उठा लिया । उस विद्याधर के सजयत को विजयार्द्ध की दक्षिण-श्रेणीके पास वरुणागिरि के पास हरिण्वती चण्डवेगा, गजवती, कुसुमवती और सुवर्णवती पाच नदियोंके सगमपर मुनिको रातमे छोड़ा । विद्याधर घर जाकर प्रात काल बहुतसे विद्याधरोको इकट्ठा

करके कहने लगा—"आज रातमे मुझे एक स्वप्न आया है कि एक राक्षस हम सबको नष्ट करने आया है। इसलिए आप इकट्ठे होकर उसे मार डालो।" ऐसा कहकर वह विद्युदंष्ट्र विद्याधर सब विद्याधरोको सजयत मुनिके पास ले जाकर उसे कष्ट देने लगा। मुनियो पर जब कष्ट आता है, वे योगसे समाधि लगा लेते हैं। कष्ट टल जाय तो अच्छा, वरना वे उस कष्टको शातिसे झेलते हुए प्राण त्याग देते है। सजयत मुनिने इस कष्ट मे प्राण देकर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इसी समय अन्तकृत केवली हुए थे। उनकी पूजाके लिए धरणीन्द्र देव आया। पर जब उसने विद्याधरोके द्वारा सजयत मुनिको कष्ट दिये जानेकी बात सुनी, तो वह उनसे बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने उनको नागपाशमे बाध कर, उनकी विद्या छीन ली और उन्हे समुद्रमे डुबानेको तैयार हो गया। उस समय सातवे—स्वर्ग का स्वामी लान्तवेन्द्र आकर धरणीन्द्र से कहने लगा, तुम इतने जीवोकी हिंसा मत करो। तुम्हारी, मेरी, विद्याधर विद्युदंष्ट्र और मुनि सजयत इन चारो मे परस्पर शत्रुता है और ये ससारमे भ्रमण कर रहे हैं। यह कहानी लान्तवेन्द्र देव धरणेन्द्र से इस प्रकारसे कहने लगे।

"इस भरत क्षेत्रमे प्रसिद्ध शक देश सिंहपुर नगरमे सिंहसेन राजा और उसकी रामदत्ता रानी रहते थे। राजा और रानी समस्त कलाओ मे निपुण थे। उनके यहां निपुणमती नामकी धाय बडी निपुण थी। राजा सिंहसेन का पुरोहित श्रीभूति था। उस पुरोहितने अपने आपको सत्यवादी और निर्लोभी प्रसिद्ध कर रखा था। पर था वास्तव मे वह बडा झूठा, महालोभी और ठग। इसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था। दुष्ट श्रीभूतिने जगतको ठगनेके लिए नगरके चारो ओर पाठशालाए अर्थात् धरोहरघर खोले। जगत मे श्रीभूतिके नामकी ख्याति थी, इसलिए उसके विश्वाससे दूर-दूर से आकर लोग उसके पास धरोहर रखते थे।"

धरणीन्द्र ने पूछा, "फिर क्या हुआ ?" लान्तवेन्द्र देवने उसे आगे बताया, "पद्‌मखण्ड नगरके सुमित्र बनियेने सिंहपुरमें आकर श्रीभूति पुरोहितकी माडशालामे पाच बहुमूल्य रत्न धरोहर रखे। फिर वह सुमित्रदत्त वणिक व्यपारकी तृष्णासे प्रेरित होकर जहाजमे समुद्र यात्रा पर गया, परन्तु दैवयोगसे उसका जहाज फट गया और उसका सब माल डूब गया, परन्तु सौभाग्यवश सुमित्रदत्त वच गया। उसने सिंहपुर आकर श्रीमूर्ति पुरोहित से अपन बहुमूल्य पाच रत्न लौटानेको कहा। पर वह पुरोहित तो महा ठग और झूठा था। उसने धरोहर से इन्कार कर दिया और सुमित्रदत्त वणिक को वहाँ से खेद दिया। नगर मे पुरोहित तो सत्यवादी प्रसिद्ध था ही, सबको उसकी बात का विश्वास था। किसी ने भी उसे झूठी न कहा, उलटा सब वणिकमे ही दोष निकालने लगे। इतना ही नही, चालाक पुरोहित श्रीभूति ने उस वणिकके बारेमे यह प्रसिद्ध कर दिया, कि समुद्रमे जहाज डूबनेके कारण यह वरडाता, कुछ-कुछ बहकता है। फल यह हुआ कि जहा कही सुमित्रदत्त जाकर अपनी वात कह कर न्यायकी माग करता, वही सव लोग पुरोहितकी बोली बोलते और वणिकको झूठा कहकर धिक्कार देते। कही भी उसे न्याय न मिला।"

धरणीन्द्र देव ने बहुत चकित होकर पूछा, फिर उस सुमित्रदत्त वणिकने क्या किया ?"

इस पर लान्तवेन्द्रने धरणीन्द्र देव को आगे बताया, "जव सुमत्रदत्त सब जगह न्याय न मिलनेसे निराश होगया, तब उस दग्ध हृदय वणिकने अन्तमे राजाके हा दुहाई देने की सोची। वह राजभवनके समीप एक ऊचे वृक्षपर चढ़ कर जोर-जोरसे पुकारने लगा, राजा सिंहसेन महा दयावान और न्यायी है। रानी रामदत्ता वडी दयावन्ती है। इस नगरके सभी लोग भी भले हैं। मेरी बात सुनो और न्याय करो। इसी महीनेके कृष्ण पक्षमे मैंने श्रीभूतिको ईमानदार और सत्यवादी समझकर अपने पाच वहु मूल्य रत्न धरोहर रखे थे। पर वह महा लोभी पुरोहित मेरे रत्न देना नही

चाहता, उलटा मुझे ही झूठा बताता है।" इस प्रकार सुमित्रदत्त को प्रातः दुपहर और सायकाल पुकारते-पुकारते कई दिन बीत गये, पर किसीने उसकी बात पर ध्यान न दिया। एक दिन रानीको उस पर दया आगई और वह राजा से कहने लगी, "हे महाराज, पृथ्वी पर सबल और निर्बल सभी हैं। यदि राजा न्याय न करे, तो निर्बलोकी बलवानोसे कैसे रक्षा हो? इस दुर्बल वणिकके रत्न पुरोहितने ठगे हैं, आप न्यायवान और दयावान हैं, इस लिए इसके रत्न दिलवा दीजिये।" पर राजाने रानीसे श्रीभूति पुरोहितकी बात दुहराते हुए कहा कि जहाज फट जानेसे धनके नष्ट होनेके कारण यह पागल सा हो गया है। वृथा चिल्ला रहा है। रानीने कहा, "महाराज! जो बैठा होता है, वह कभी कुछ कभी कुछ कहता है। परन्तु यह तो सदा एक ही बात कहता है। एक तो इस का समुद्रमे धन गया, दूसरे पुरोहितने इसके रत्न दबा लिए, इसलिए यह बहुत दुःखी है। आप इसका न्याय करे। रानीके कहनेपर राजाने एकान्त मे श्रीभूति पुरोहितसे रत्नो के बारे मे पूछा, पर वह साफ नट गया। तब राजाने रानीको ही न्याय करने का काम सौंपा। रानी बड़ी चतुर थी। उसने राजासे कहा कि आप श्रीभूति पुरोहित को जुवे मे लगाले, और वह न्याय का सब काम कर देगी।

रानी रामदत्ताने अपनी चतुर धाय निपुणमती को पुरोहित की स्त्री श्रीदत्ता के पास पाचो रत्न लानेको भेजा, पर उसने अपने पतिके आदेश अनुसार उसे यह कहकर कि वह उसे क्या जाने, उसे रत्न न दिये। तब रानी ने पुरोहितका जनेऊ जूवेमे जीता और धाय को जनेऊ देकर पुरोहितनी के पास रत्न लेने भेजा। पर फिर भी उसने रत्न न दिये। अब अन्त मे रानी ने पुरोहित की नाम लिखी अंगूठी जूवे मे जीत कर धायको निशानीके तौर पर देकर पुरोहितनीसे रत्न लाने भेजा। इस बार धाय रत्न लानेमे सफल हो गई। उसने रत्न रानी को दिये और रानी ने राजा को दे दिये।

फिर राजाने उन रत्नोको दूसरे रत्नमे मिलाकर उस सुमित्रादत्त वणिक से अपने रत्न पहचानने को कहा। सुमित्रादत्त ने उनमेसे अपने रत्न तुरन्त पहचान लिये। इस पर राजा उससे बडा प्रसन्न हुआ, उसका बडा मान आदर किया और उसे राजामान्य बनाया। राजाने उस दुष्ट ठग पुरोहित श्रीभूति को तीन दण्डो मे से एक दण्ड स्वीकार करनेको कहा। या तो वह अपना सब धन दण्डमे राजाको दे या गोबर के तीन थाल खाये या पहलवान की मुट्टीके प्रहार सहे। श्रीभूति पुरोहितने अन्तिम दण्ड पाना स्वीकार किया। परन्तु पहलवानके मुक्कोसे उसकी मृत्यु हो गई और उसने बुरे विचारोके फलस्वरूप मरकर राजाके भण्डार मे गधमादन जातिके सापका जन्म लिया और राजाका द्रोही बन गया। राजा सिंह सेन ने श्रीभूति पुरोहितके स्थानपर एक और ब्राह्मण धम्पिल-को राजपुरोहित नियुक्त किया। पर वह नया पुरोहित भी अनर्थ करनेमे लग गया।

पाचरत्नो का स्वामी वणिक सुमित्रदत्त अपने पद्मखण्ड नगर लौट आया। वह जैन धर्म का पक्का अनुयायी बन गया और उसने बहुत धन कमाया। उसने यह इच्छा भी की कि मर कर वह रामदत्ता रानीका राजकुमार हो। पर उसकी पत्नी सुमित्रदत्ताको उसकी इच्छा से विरोध था, इसलिए वह मर कर दूसरे जन्ममे व्याघ्री हुई। जव वह वणिक सुमित्रदत्त एकदिन साधुओके दर्शनके लिए पर्वत पर गया, वहा उस व्याघ्रीने उसको मार कर खा लिया और वह वणिक रानी रामदत्ताके हा सिहचन्द्र नामका पुत्र जन्मा। रानीको सिंह चन्द्रसे बडा प्रेम था। रानीके हा दूसरा पुत्र पूर्णचन्द्र पैदा हुआ। ये दोनो राजकुमार सूर्य-चन्द्रके समान चमकने लगे। एक दिन राजा सिह सेन अपने भण्डारमे गया। वहा श्रीभूति पुरोहितके जीव साप ने उसको डस लिया। विष दूर करनेके लिए गरुडन्त्रके जाननेवाले गरुडदत्तको वुलाया गया। उसने अपने मन्त्र-बलसे गध मादन जातिके सव सापोको वहा वुलाया। गरुडदत्तने

अपराधी सापके अतिरिक्त सभी दूसरे सापोको वहासे जानेका आदेश दिया। अपराधी साप वहा रह गया। गरुडदत्तने उस सांप को कहा, "हे दुष्ट! तू अपना विष शीघ्र खीच या अग्निमे प्रवेश कर।" पर राजा सिहसेन के प्राणोके हर्ता उस सापने अग्निमे प्रवेश करना तो स्वीकार किया, पर राजाका विप न खीचा। अग्निमे भस्म होकर उस सापने चमरी मृगका जन्म लिया और राजा सिहसेत मर कर गल्लकी वन मे हाथी हुआ और वह धम्पिल राजपुरोहित उसी वन मे वन्दर हुआ।

राजा सिंहसेन की सापके डसने से मृत्यु के पश्चात् उसका वडा पुत्र सिह चन्द्र राजा सिहासन पर बैठा और पूर्णचन्द्र युवराज वना। दोनो भाई समस्त प्रजा को सुख से पालने लगे। यह सब कथा लान्तवेन्द्र देवने धरणीन्द्र को सुनाई।।

राजा सिहसेन का श्वसुर और रानी रामदत्ताके पिता पोदनपुर के राजा सुपूर्ण था और उसकी रानी का नाम हिरण्यवती था। ये दोनो राजा रानी जैन धर्मके वहुत भक्त थे। राजा सुपूर्ण मुनि राहुभद्र से दीक्षा लेकर मुनि वन गया और रानी हिरण्वती भी सबकी एक साध्वीके पास आर्यिका बन गई। रामदत्ता की माता आर्यिका ने अपने पति मुनि से राजा सिहसेन और वणिक सुमित्रदत्त की कथा सुनी। उसे मुनि से यह जानकर वडा आश्चर्य हुआ कि राजा सिह सेनकी मृत्युके बाद जब सिहचन्द्र राजा बन गया, तब भी पुत्र मोह को छोडकर रामदत्ताको वैराग्य न हुआ इसलिए वह अपनी पुत्री विधवा रानी रामदत्ता को सम्बोधने और वैराग्य मार्ग अपनानेको कहने गई। रानी भी साध्वी बन गई और सिहचन्द्रने भी संसारसे विरक्त होकर स्वामी राहुभद्रसे मुनि दीक्षा ले ली। अब उसका छोटा भाई पूर्ण चन्द्र राजा बन गया। यद्यपि उसने अपने पराक्रमसे सब शत्रुओको वशमे कर लिया, पर वह सम्यक्त्व और व्रतसे रहित होने के कारण विषय भोगो मे लीन हो गया।

: १३ :

संजवंतस्वामी

जन्म जन्म के सम्बन्ध

मुनि सिंह चन्द्रने तप करते-करते चारण ऋद्धि पाई और उन्हे अवधिज्ञान हो गया। तब आर्यिका रामदत्ताने स्वामी सिंह चन्द्रको नमस्कार करके अपने, अपनी माता और अपने पुत्रके पूर्व जन्मोकी कथा पूछी।

स्वामी सिंह चन्द्रने उनके पूर्व जन्मो की यह रोचक कथा सुनाई —

"इस भरत क्षेत्रमे कौशल देशमे वर्द्धक शहरमे मृगायण ब्राह्मण था। उसकी दो पुत्रिया मधुरा और वारुणी थी। वारुणी इतनी रूपवती और मदमई थी कि अविवेकी लोग उसे देखते ही विह्वल हो जाते थे। मरने के पश्चात ब्राह्मण मृगायणके जीवने अयोध्या नगरमे राजा अतिबलकी रानी श्रीमतीके पुत्रीका जन्म लिया और उसका नाम हिरण्यवती रखा गया। वह हिरण्यवती इस जन्ममे तेरी मा थी और पूर्वले जन्ममे तेरा पिता था। और ब्राह्मण मृगायणकी बडी बेटी मधुरा, मरने के पश्चात् रामदत्ता हमारी मा हुई और छोटी बेटी वारुणी मर कर उसी वन मे बन्दर हुआ। उसने क्रोधसे कुर्कट सापको मार दिया। वह साप जो वास्तवमे श्रीभूतिका जीव था मरनेके बाद तीसरे नर्कमे गयी। और जगराजके दातोको हाथीदात और मोती श्रृगालपत भीलने धनमित्र वणिकको बेचे, जिन्हे उसने राजा पूर्ण चन्द्रको बेच दिया। वह राजा वणिकसे बहुत सन्तुष्ट हुआ। राजाने हाथी दातका सिंहासन बनवाया और मोतियोका हार बनवाया। राजा पूर्ण चन्द्र उस

सिहासन पर वैठता है और हारको पहनता है। हे माता ! ससार की विचित्रता और कर्मोका फल देखो। कौन कहा से कहां जन्म लेता है।" आर्यिका रामदत्ता स्वामी सिह चद्रसे यह समस्त वृत्तात सुनकर महाप्रमादी राजा पूर्ण चन्द्र के पास आई और उसे धर्मोपदेश देकर श्रावकके व्रत दिये।

मृत्युके पश्चात् राजा पूर्णचन्द्र का जीव उसी स्वर्गमे देव पैदा हुआ जहा राजा सिह सेव का जीव गज की योनि से दान, पूजा, तप और शीलके पालनसे गया था। रामदत्ता आर्यिका भी व्रतो के प्रभावसे उसी स्वर्गमे सूर्यप्रभ नामका देव हुई और सिह चन्द्र मुनि अहिमन्द्र देव हुआ।

रानी रामदत्ताका जीव सूर्य प्रभ देव वहासे विचयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी मे धारिणी तिलक्र नगरमे अतिवल राजा की सुलक्षण रानी के श्रीधरा पुत्री हुई। इस सूर्य प्रभ देवके जीवका स्त्री योनिमे जन्म लेनेका कारण था, कि उसने देव योनिमे मायाचार किया था, और मिथ्या विश्वास किया था। यह श्रीधरा राजकुमारी अलकापुरीके राजा सुदर्शनसे व्याही गई और पूर्णचन्द्रका जीव देवगतिसे श्रीधराके उदरसे यशोधरा राजकुमारी जन्मी। इसका विवाह उत्तर श्रेणीमे प्रभाकर पुरके राजा सूर्यावर्तसे हुआ। रानी रामदत्ता के पति राजा सिह सेन का जीव अनेक जन्मो के वाद उसके रश्मिवेग पुत्र हुआ। ससारकी कितनी विचित्र गति है, कि राजा सिह सेनका पुत्र पूर्णचन्द्र यशोधरा विद्याधरी वनी और उसके राजा का जीव पुत्र हुआ। इस प्रकार पुत्रसे माता वन गई और जो रानी रामदत्ता राजा सिहसेन की पत्नी थी, वह रश्मिवेगके रूपमे श्रीधरा नाम की नानी वन गई। यह कर्मों की विचित्रता है।

राजा सूर्यावर्त ने अपने पुत्र रश्मिवेग को राज्य देकर मुनि चन्द्रमुनिसे दीक्षा लेकर मोक्षप्राप्ति के लिए महाव्रत लिये। रश्मिवेगकी माता यशोधरा और नानी श्रीधरा भी महा साध्वी गुणवतीसे दीक्षा लेकर आर्यिका वन गई। एक दिन राजा रश्मिवेग-

सिद्धकूट चैत्यालयके दर्शन करने गया वहा हरिचन्द्र मुनिसे धर्म सुनकर उसने मुनि दीक्षा लेली और वह महाव्रत पालने लगा। वह काचव नाम की गुपा मे रहने लगा।

एक दिन उस मुनि की माता और नानी दोनो आर्यिकाए उसके दर्शन करने गुफामे गई और मुनिके पास बैठो गई सयोग वश श्रीभूति पुरोहितका जीव साप, चमरी मृग, कुर्कट सर्प और नारकी जीव बनकर जन्म लेता हुआ इसी गुफामे अजगर हुआ और वह वहा उन तीनो मुनि रश्मिवेग, मा साध्वी यशोधरा और नानी साध्वी श्रीधराको निगल गया। मुनि तो मर कर आठवे स्वर्गमे अर्कप्रभ देव हुआ और अजगर मर कर चौथे नरकमे गया।

यह जन्म-जन्मके सम्बन्धो की कथा यही समाप्त न हुई। आगे पाच रत्नोवाले वणिक सुमित्रदत्त राजा सिहसेन और रानी रामदत्ताके जन्म जन्मान्तरकी कथा बनाई जाती है।

चक्रपुर नगरमे राजा अपराजित और उसकी रानी सुन्दरी रहते थे। उनके घरमे सुमित्रदत्त मर कर रामदत्ताका पुत्र सिह-मुनि व्रत पालन करके देव अहिमिन्द्र होकर पुत्र हुआ और उसका नाम चक्रायुध रखा गया। चक्रायुधकी पत्नीका नाम चित्रमाला था। राजा सिहसेनका जीव गज, देव, विद्याधर रश्मिवेग और फिर देव होता हुआ चक्रायुधके पुत्रके रूपमे जन्मा। उसका नाम वज्रजायुद्ध रखा गया।

पृथ्वीतिलक नगरमे राजा प्रियकर और उसकी रानी अतिवेगा रहते थे। उनके हा रानी रामदत्ताका जीव पहिले श्रीधरा आर्यिका हुई, फिर स्वर्गका देव होकर राजा प्रियकरकी पुत्रीके रूपमे जन्मा। उसका नाम रत्नमाला रखा गया। और उसका विवाह वज्रायुद्धसे किया गया और उनके घरमे यशोधरा आर्यिका-का जीव रत्नायुध नाम का पुत्र हुआ।

राजा चक्रायुद्ध अपने पुत्र वज्रायुद्धको राज देकर और वह

अपने पुत्र रत्नायुधको राजा देकर बारी-बारीसे मुनि हो गये। यह रत्नायुद्ध वास्तवमे पूर्णचन्द्रका ही जीव था। रत्नायुध झूठे धर्म विश्वासके कारण मदोन्मत्त रहता था। इस राजा रत्नायुधका एक अतिप्यारा हाथी मेघनिनाद था। यह हाथी एक दिन जलसे नहानेके लिए नदी पर गया। वहा एक मुनिके दर्शन करते ही उसे अपने पूर्व जन्मोका स्मरण हो गया और उसने श्रावकके व्रत धारण किये। व्रतोके कारण यह हाथी अयोग्य खाना-पानी न लेता था।

हाथीके खाना-पानी न लेनेपर राजा न समझ सका कि क्या कारण है। उसने वज्रदत्त मुनिसे कारण पूछा तब मुनिने कहा —

"एक चित्रकार नामक नगरमे राजा प्रीतिभद्र और उसकी रानी सुन्दरी रहते थे। उनके पुत्रका नाम प्रीतकर था। राजाके मन्त्रीका नाम चित्रबुद्धि, मन्त्रीकी धर्म पत्नीका नाम कमला और उनके पुत्र का नाम विचित्रमति था। राजा का पुत्र प्रीतकर और मन्त्रीका पुत्र विचित्रमति दोनो ही स्वामी श्रुत सागरसे तप का फल सुनकर तरुण अवस्थामे ही मुनि हो गये। ये दोनो अनेक प्रकारके कठोर तप करते हुए और निर्वाण क्षेत्रोके दर्शन करते हुए अयोध्याजी आये। मन्त्रीका साधु पुत्र नगरमे भोजन करने गया। वहा अति सुन्दरी बुद्धि सेना नामकी एक वेश्याको देखते ही कर्मयोगसे वह निर्लज्ज भ्रष्ट हो गया। पर वेश्याने यह जानकर कि वह निर्धन है, उसे स्वीकार न किया।

अयोध्याका राजा गधमित्र बड़ा दुराचारी और मासभक्षी था। विचित्रमति साधुने भ्रष्ट होते ही, साधु वेश छोड दिया और राजाकी नौकरी करली। मन्त्रीका बेटा मासके व्यजन बनानेमे बड़ा कुशल था। राजाने उसके खानोसे प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार मागनेको कहा। तब विचित्रमति ने वह बुद्धि सेना मागी। उस सुन्दरी वेश्याका सेवन करके वह मासाहारी मरकर सातवें नरकमें गया। वहांसे निकल कर संसारमें बारम्बार जन्म लेता हुआ उनका

जीवन यह हाथी बना और साधुके दर्शनसे इसे अपने पूर्वले कर्मोका स्मरण हुआ और अब वह अपने पाप कर्मोकी निन्दा करके कर्म-पालन करके शात है। मुनिके मुखसे अपने हाथीके पूर्व जन्मोका हाल सुनकर राजा रत्नायुध और उसका हाथी मेघनिनाद मिथ्या विश्वासोको त्याग कर श्रावक धर्मको पालने लगे।

"अजगरका जीव चौथे नरक गया था। वहासे निकलकर दारूण भीलकी सी मन्दी से अतिदारुण पुत्र हुआ। और राजा सिहसेन का जीव बज्रायुद्ध मुनि प्रिपगुखड वनमे ध्यानमे विराज रहा था, कि उनको इस महापापी अतिदारुण भीलने कष्ट दिया। मुनि तो कष्ट सहकर मर कर मोक्ष गया, पर वह भील अतिदारूण मरकर सातवे नरकमे गया और वहा उसने मुनि हत्याके पापके कारण भयकर दु ख सहे। वज्रायुद्ध की रानी रत्नमाला अपने पुत्र रत्नायुद्धके मोहवश आर्यिका न हो सकी। और रत्नायुध और रत्नधारा दोनो मा-बेटा अणुव्रतोके पालनेके फलस्वरूप सोलहवे स्वर्गमे देव हुए।

"घातकी खण्ड दीपमे पूर्व मेरुसे पश्चिमविदेह मे गन्धिला देशमे अयोध्या पुरी है। अयोध्याके राजा अरहदास की दो धर्म पत्निया सुब्रता और जिनदत्ता थी। उन दोनो रानियोके वे सोलहवे स्वर्ग के देवता रत्नायुध और रत्नमाला के जीव क्रमश सुव्रताके वीतमय बलभद्र हुआ और रानी जिनदत्ताके विभीपण वासुदेव हुआ। छोटा पुत्र विभीपण तो पहले नरकमे गया और बडा भाई वीतभय मुनि अनिवृत्तिके पास तप करके स्वर्गमे इन्द्र हुआ। वह मैं हू और मेरा नाम आदित्यप्रभ है। मैंने पहले नरकमे विभीपणके जीवको बहुत समझाया। उसने सम्यक्त प्राप्त किया। वह नरकसे निकलकर जम्बूद्वीपके विदेहमे गधमालिनी देशमे विजयार्द्ध गिरिमे राजा श्रीधर्मा की रानी श्रीदत्तासे श्रीदाम पुत्र हुआ, जिसे मैंने उपदेश दिया। फिर वह श्रीदाम अनन्तमति स्वामीसे साधुके व्रत लेकर मरने के पश्चात् पाचवे स्वर्गमे इन्द्र हुआ। और भील का

जीव नरक से निकलकर वहा साप हुआ। वह मर कर पहले नरकमें गया। वहासे निकलकर तिरयच गतिमे वहुत बार जन्म लेता हुआ दुखी रहा। फिर उसने एरावती नदीके किनारे भूतरमण वनमे माली तपस्वीकी स्त्री कनककेसी से मृगश्रग नामका तापस पुत्र हुआ। यह मृगश्रप मृगके समान मूर्ख पचाजित तप करने लगा। एक दिन मृगश्रगने चन्द्रप्रभ विद्याधरको आकाशमें जाते देखकर मनमे सोचा कि मैं भी तपके प्रभावसे विद्याधरोकी विभूति पाऊँ। परिणाम यह हुआ कि मृगश्रग मर गया और उसका जीव वज्रदष्ट्र विद्याधर और उसकी स्त्री विद्युत प्रभाके हा विद्युदष्ट्र नाम का विद्याधर हुआ। और वज्रायुध मुनिका जीव सर्वार्थ सिद्धि गया और वहासे सजयत मुनि वना। और तू मनेन्द्र वहासे सजयतका भाई जयत हुआ और मरकर तू धरणेन्द्र हुआ।

श्रीभूति पुरोहित जिसको सिहसेनने एक जन्ममे मारा था। उसने वहुत जन्मो मे वैर का वदला लिया। राजा सिहसेन गजके जन्म के वैर छोड़कर सजयन्तके जन्ममे सिद्ध हुआ। और तू वैरके योगमे वार-वार जन्म लेरहा है। इससे हे धरणेन्द्र। तू वैर की वृद्धि को छोड दे। यह वैर भावना आवागमनको वढानेवाली हे। इसलिए तू किसी से वैर मत कर, और मिथ्यात्व छोड दे।"

इस प्रकार आदित्यप्रभ देवने धरणेन्द्र को समझाया। धरणेन्द्रने वैरका त्याग कर दिया और सम्यक्त्व ग्रहण किया। धरणेन्द्रने विद्याधरोंको जीवनदान तो दिया, पर उनकी विद्या [illegible] दी जिससे वे पंखकटे पक्षीके समान होगये। विद्याहीन विद्याधरोंने धरणेन्द्र से विनती करके पूछा "हे देव! हमें विद्याकी सिद्धि कैसे हो?" इसपर धरणेन्द्रने उन्हे वतायाकि तुम सब विद्याधर संजयन्तकी विशाल प्रतिमा हिमवन्त पर्वतपर स्थापित करो और प्रतिमा के चरणों के पास तप करो। इससे तुम्हे चिरकालमें विद्याकी सिद्धि होगी पर विद्युद्दंष्ट्र की सन्तानको तीन विद्याएं सिद्ध न होंगी। विद्याधरोंने धरणेन्द्रको नमस्कार किया और उसके

आदेशानुसार हिमवन्त पर्वतपर सजयंत स्वामी की स्वर्ण रत्नमई प्रतिमा स्थापित की।

लातवेन्द्रका स्वर्गसे मथुरामे राजा रत्नवीर्यकी रानी मेघ-मालाके मेरु नामका पुत्र हुआ। उसे ही राजाकी दूसरी रानी अमित प्रभाके धरणेन्द्रका जीव मन्दर नाम का पुत्र हुआ। दोनो भाई मेरु और मन्दर तरुण अवस्थामे ही ससारको त्याग कर श्रेयास नाथ तीर्थकर के शिष्य हुए। बडा भाई मेरू केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गया और छोटा भाई मन्दर गणधर हुआ।

यह सजयत स्वामीके चरित्रकी प्रसिद्ध कथा है।

राजकुमार मृगध्वज और भैंसा

श्री गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहने लगे, "हे श्रेणिक, अब मै तुम्हे वेगवतीसे अलग होनेके बाद का हाल सुनाता हू। वेगवतीके वियोग मे दु खी वसुदेव वन-वन घूमता हुआ, तापसियोके आश्रम मे पहुचा। वे तापस राजकथा, युद्धकथा और कामकथा मे आसक्त थे। यदुपति वसुदेव उनसे कहने लगे, आप कैसे तापस है, जो इन विषयोकी चर्चा करते हो? ये धर्मकी कथाए नही है। तपस्वी तो तप करते है, मौन रहते हैं और मोक्षमार्गपर चलते है। ये कथाये तुम्हारे योग्य नही हैं।" इस पर उन तापसोंने कहा, "हे यदुपुरुष! हम नवदीक्षित है। इसलिए चित्तकी वृत्ति चचल है और मौन रहा नही जाता।"

फिर उन्होने वसुदेवको अपने तपस्वी बननेकी यह कथा सुनाई—

"यहाँ श्रीवास्ती नगरीका पराक्रमी राजा ऐणीपुत्र था और उसकी एक पुत्री प्रियग सुन्दरी थी। वह बहुत सुन्दर थी। जब वह विवाह योग्य हुई, तब उसके पिताने उसका स्वयम्वर रचाया। उस स्वयम्वरमे हम सब बडे-बडे राजा बुलाये गये। पर उस राजकन्याने स्वयम्वर मे किसीको भी न चुना। इसपर हम राजाओने दु ख अनुभव किया और क्रुद्ध होकर राजा ऐणीपुत्र से युद्ध करने को तैयार हो गये। परन्तु जिस प्रकार एक सूर्य हजारो मनुष्यो के नेत्रोको सकुचित कर देता है, वैसे ही उस एक राजा ऐणीपुत्र ने हम सबको युद्धमे शीघ्र ही क्षुभित और परास्त कर दिया। कुछ

स्वाभिमानी राजा तो रणमे लडते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए, पर हम जैसे कुछ राजा युद्धसे भागकर बनमे आ बैठे और तापस बन गये। पर हम धर्मका स्वरूप नही जानते, इसलिए आप हमे धर्मका उपदेश दे।"

"राजा वसुदेवने उन्हे मुनिधर्म और श्रावक धर्मका उपदेश दिया और कहा कि यह दोनो प्रकारका धर्म ही मनुष्यके लिए कल्याण-कारक है। राजा वसुदेवके धर्मोपदेशसे वे आपसमे सन्तुष्ट होकर अपनी यथाशक्ति व्रत लेकर अपने-अपने स्थानको चले गये।

राजा वसुदेव प्रियगसुन्दरी का हाल सुनकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीवास्ती नगरी गया। उसने नगरीके बाहरी उद्यानमे कामदेवके मन्दिरके अगले भागमे स्वर्णका तीन पावका कृत्रिम भैंसा देखा। इस विचित्र भैंसेको देखकर जब वसुदेवने किसीसे उस भैंसे का हाल पूछा, तब एक वृद्ध पुरुषने वसुदेवको बताया, "हे आर्य! इसी नगरीमे इक्ष्वाकुवशी राजा 'जितशत्रु' का पुत्र मृगध्वज और सेठ कामदत्त रहते थे। एक दिन सेठ कामदत्त गोशाला देखने आया। तब एक दीन-हीन छोटासा भैंसा सेठके पावपर आ पड़ा। तब सेठ कामदत्तने अपने ग्वालेसे पूछा कि यह क्या बात है। तब ग्वालेने उत्तर दिया, "जिस दिन यह भैंसा जन्मा, उसी दिन वह मेरे पाव पडा, जिससे मुझे इसपर बडी दया आयी। मैने वनमे एक मुनिको नमस्कार करके पूछा, "हे प्रभो! इस भैंसेपर मेरी अति करुणा का कारण बताइए।" मुनिने उत्तर दिया, "तेरी भैंसके पेटसे इस भैंसेने पाच बार जन्म लिया और तूने पाचो बार मारा। छठी बार इस भैंसके पेटसे इसने फिर जन्म लिया, तब तुम्हे देखकर इसे अपने पिछले जन्मोका स्मरण हुआ और इससे डरकर तेरे पाव पडता है कि तू अब मुझे मत मार।" मुनिकी यह बात सुनकर मैने इसे पुत्र समान पाला। अब भी यह जीने के लिए तुम्हारे पाव पडता है। वालेके यह वचन सुनकर सेठ कामदत्त दया करके भैंसेको नगरमे

नेआया। और राजासे उसे अभय दान दिलाया। पर राजा जितशत्रुके पुत्र मृगध्वजने पूर्व जन्मके वैरसे भैंसेका एक पाव तोड़ डाला। राजा राजकुमार मृगध्वज के निर्दयतापूर्ण कामसे वडा क्रुद्ध हुआ और उसने राजकुमारको मारनेकी आज्ञा की। राजाकी इस आज्ञा को सुनकर समस्त दरवारियो मे चिन्ता पैदाहो गयी। पर राजाका मन्त्री वडा बुद्धिमान् था। वह छल और चतुराईसे राजकुमार को वनमे लेगया। राजकुमारने वनमे एक मुनिके दर्शन किये और उनके उपदेशको सुनकर ससारसे विरक्त होकर मुनिदीक्षा लेली। इधर वह भैंसा पाव टूटनेके वाद अठारहवे दिन शुभ भाव करता हुआ मर गया। राजकुमार मृगध्वज भी मुनि वननेके पश्चात् बाईसवे दिन अतिशुभ ध्यानके प्रभावसे केवली हुआ। सभी देव, मनुष्य, चारो योनियोके जीव और राजा जितशत्रु भी केवलीके दर्शन-पूजन के लिए आये।

तव राजाने राजकुमार मृगध्वज और भैंसेके वैरका कारण पूछा। केवली मृगध्वजने उत्तर दिया "पहले नारायण त्रिपृष्ठका शत्रु अलकापुरी का राजा अश्वग्रीव विद्याधरोका राजा और पहला प्रतिनारायण था। राजा अश्वग्रीव का मन्त्री हरिस्मश्रु प्रसिद्ध तर्कशास्त्री पडित था। पर था वह एकान्तवासी और परलोकको न मानने वाला। वह प्रत्यक्ष दिखने वाली वातको ही प्रमाण मानता था, परोक्ष वातको प्रमाण नही मानता था। वह जीवके दृष्टिगोचर न होनेके कारण उसे भी न मानता था। वह पाप-पुण्य तथा परलोकको भी न मानता था। उसका कथन था कि यह देव, नारकी, मनुष्य और दूसरे जीवोका विकल्प अज्ञानियो ने उठा रखा है। उसकी मानना थी कि जब परलोक है ही नही, तव उसके लिए संयम पालना वृथा ही भोगोका नाश करना है। उसे कुकथाओ में रुचि थी, सदा उन्हे ही सुनता था और भोगादि में आसक्त रहता था। ऐसा धर्मविमुख बुरी चेष्टा वाला वह मन्त्री था। जव त्रिपृष्ठ

नारायण और अश्वग्रीव प्रति नारायण मे युद्ध हुआ, तब त्रिपृष्ठ ने तो अश्वग्रीव को मारा और विजय नाम के बलभद्र ने हरिस्मश्रु मन्त्री को मारा। राजा अश्वग्रीव और मन्त्री हरिस्मश्रु मर गये और दोनोके जीव नरक गये। बहुत काल तक वे दोनो जगह-जगह जन्मते-मरते रहे। अब अश्वग्रीवका जीव तो मैं मृगध्वज राजकुमार हुआ और हरिस्मश्रु का जीव यह भैंसा हुआ। पहले जन्म के किसी दोषके कारण मुझे इसपर क्रोध हुआ और मैंने इसकी टांग तोड़ी थी। अब वही भैंसा मरकर अच्छे भावोसे मरनेके कारण लोहित नाम का महा असुर होकर मेरी बन्दना के लिए आया है।" आगे केवलीने कहा— "हे राजन्! इस लोकमे सब जीवोसे मित्र भाव रखना। क्रोध आदमीको अन्धा कर देता है। इसलिए मोक्ष चाहनेवाले व्यक्तिको क्रोधको वशमे करके शात भावको अपनाना चाहिए।"

केवलीके उपदेशको सुनकर राजा और दूसरे स्त्री-पुरुषोने दीक्षा लेकर साधु-धर्म अपनाया। और वह महिषासुर भी कपट रहित हो गया। केवलीका उपदेश सुनकर सब उन्हे नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को गये। और मृगध्वज केवली अपनी आयु पूरी करके परमधामको सिधारे। मृगध्वज और उस (भैंसे) का चरित्र सुनने और उससे शिक्षा लेने योग्य है, क्योकि उससे धर्मपर सच्चा विश्वास उत्पन्न होता है।

बन्धुमती; प्रियंगसुन्दरी और ऋषिदत्ता

केवली मृगध्वजके दर्शन करनेके पश्चात् सेठ कामदत्त अपने घर लौट आया। उधर चन्द दिनो पश्चात् केवली मृगध्वजने मोक्ष प्राप्त किया। सेठ कामदत्तने नगरके बाहर अपने मन्दिरके आगे स्मारक रूपसे केवली मृगध्वज की प्रतिमा स्थापित की और उसके ही निकट तीन टांगके भैंसे की मूर्ति स्थापित की। सेठ कामदत्तने इसी मन्दिरके पास कामदेव और रति की मूर्तिया भी स्थापित की। इसलिए जो दर्शक यहा आते हैं, उन्हे मृगध्वज और भैंसेके दर्शनसे शिक्षा मिलती है।

उसी सेठ कामदत्त के वंशमे इस समय सेठ कामदेव है, उसकी रूप-यौवनसे पूर्ण चन्द्रवदनी पुत्री बन्धुमती है। इस लडकीके पिता ने निमित्त ज्ञानीसे पूछा था कि इस कन्या का पति कौन होगा। तब उस निमित्त ज्ञानीने उस सेठको बताया कि जो आदमी इस मन्दिरके किवाड खोलेगा, वही इसका पति होगा। वृद्धकी यह बात सुनकर यदुपति राजा वसुदेव कामदेवके मन्दिरके द्वारपर गया। उसके द्वार बत्तीस आगल मूसलियोंसे बन्द थे। राजा वसुदेव-ने द्वारोंको इधर-उधरसे देखकर अपनी चतुराईसे झटसे उन्हे खोल दिया। फिर राजाने मन्दिरके अन्दर जाकर जिन भगवान् का दर्शन-पूजन किया। बाहर आकर उसने केवली मृगध्वज, भैंसे, कामदेव और रति की मूर्तिया देखीं।

इतने में सेठ कामदेवको वसुदेवके द्वारा मन्दिर के द्वार खोलने वालेकी सूचना मिल गयी। इससे हर्षित होकर सेठ कामदेवने अपनी पुत्री बन्धुमतीका विवाह वसुदेवसे कर दिया।

वन्धुमती का पति वसुदेव रतिपतिसे भी अधिक सुन्दर रूपवान है, यह वात समस्त नगर मे प्रसिद्ध हो गयी। राजाके रनिवासके स्त्री-पुरुष और राजकुमारी प्रियगसुन्दरी भी सेठके महलमें राजा वसुदेवको देखने गयी। राजकुमारी प्रियगसुन्दरीके लिए तो वसुदेव उस श्रीवास्ती नगरी मे आया ही था। वन्धुमतीसे तो सयोगवश ही पहिले विवाह होगया। वसुदेव को देखते ही प्रियगसुन्दरी उसपर ऐसी अनुरक्त तथा मोहित हुई कि वह जीजानसे उसकी होगयी।

प्रियगसुन्दरी और वन्धुमती दोनो सखिया थी। प्रियगसुन्दरी ने उत्सुकतावश उससे उसके पति की प्रवीणताकी वाते पूछी। वसुदेव-की प्रवीणता तथा गुणोकी वाते सुनकर तो प्रियगसुन्दरी और भी वेचैन हो उठी। अव उसे खान-पान कुछ भी नही भाता था।

एक दिन राजकुमारी प्रियगसुन्दरी अभिमान और लज्जाको छोड वसुदेवसे मिलनेकी तीव्र इच्छासे उसके द्वारपर पहुच गई। वसुदेव राजकुमारीके आनेकी सूचना पाकर वडा चिन्तित हुआ कि अपनी इच्छासे आनेके कारण यह राजकुमारी आदरके योग्य नही है। उसको मारना भी स्त्री हत्याके कारण अनुचित था। वसुदेवने समय टालनेके वहाने प्रियगसुन्दरीको वन्धुमतीके महलमे किसी अलग्र कमरेमे सुला दिया और स्वय वन्धुमतीवाले कमरेमे सो गया।

रातमे एक विचित्र घटना हुई, जिससे वसुदेवको वडा आश्चर्य हुआ। ज्वलनप्रभा नामकी नागकुमारी देवी वसुदेवके कमरेमे अचानक आई। उसके नागका चिह्न था और उसके आभूषणो की कातिसे समस्त कमरा प्रकाशित होरहा था। वसुदेवने उससे उसका परिचय पूछा। देवी प्रियवादिनी थी और मीठी वाते करनेमे वडी प्रवीण थी। उसने वसुदेवको वताया, "हे धीर वीर! मेरे आनेका विशेष कारण है।" वसुदेव ने पूछा—"क्या? देवी, वताइए, क्या कारण है?" देवी कहने लगी—"चन्दनवन नामक नगरमे अति-

पराक्रमी राजा अमोघदर्शन, उसकी रानी चारुमती और उसका पुत्र चारुचद्र थे। राजकुमार महानीतिवान्, वलवान्, पुरुपार्थी और नवयौवनसम्पन्न था। उस नगरमे रगसेना वडी गुणवान् और कलावती गणिका थी, जिसकी पुत्री कामपताका अपने नामके अनुसार कामकी ध्वजाके समान सुन्दर थी। राजा अमोघदर्शन यज्ञमार्ग पर श्रद्धा करने लगा। और उसके दरवारमे कौशिकादि अनेक जटाधारी तापस आये। राजाकी आज्ञासे कामपताका नृत्य करने लगी और शीघ्र उसने सव दर्शकोके मनको मोहित कर दिया। फलपत्रके आहारी कौशिक तापसका मन भी विचलित होकर कामपताका पर अनुरक्त होगया। पर यज्ञ विधानसे निवृत्त होते ही राजा अमोघदर्शनके पुत्र चारुचद्रने कामपताकाको अगीकार कर लिया। तब कौशिक तापसने राजाको अपना भक्त समझकर कामपताका अपने लिए मॉगी। राजाने उसको कहा कि राजकुमारने उस लडकी को विवाह लिया है, इसलिए वह कामपताकाको उसे देने मे विवश है। तव कौशिक तापसने राजासे कहा कि वह साप होकर राजाको डसेगा। इस प्रकार क्लेश करके वह तापस चला गया। तव राजा डर गया और वह राजकुमार चारुचद्रको राज देकर रानी चारुमती सहित तापस होगया। सयोगवश रानीको एक-दो मासका गर्भ था, जिसको कोई भी न जानता था।" राजा वसुदेव देवीकी वात वडा चकित हुआ सुन रहा था और सोच रहा था कि देवीके असमय यहाँ आनेमे क्या सम्वन्ध है। देवी उसके मनकी आशकाको ताड गयी और वोली, "राजन्! धीरज रखो। मै शीघ्र अपने यहां आनेका उद्देश्य आपको वताऊंगी, पर जो मै कह रही हूं, वह असगत नही है। जरा ध्यान से सुनो।" राजा वसुदेवने कहा, "हां, हां, कहो। मै ध्यान से सुन रहा हूं।" तव देवी ज्वलनप्रभाने आगे कहा, "तापसो के आश्रम मे कुछ समय पश्चात् चारुमतीने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नाम ऋषिदत्ता रखा गया। जब वह तरुणी हुई तो एक दिन वनमें एक चारण मुनिके उपदेशसे

उसने जिन धर्मपर श्रद्धा की। जब ऋषिदत्ता यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई, तो बनदेवीके समान सबके मनो और आंखोको मोहने लगी। इसके पश्चात् एक दिन श्रीवास्ती नगरीका राजा शातायुध का पुत्र शीलायुध वहाँ तापसीके आश्रममे जापहुचा। ऋषिदत्ताने उसे जलपान कराया। वे दोनो रूप-यौवनमे समान थे। आश्रममे कोई था नही। आश्रम की चिरकाल की मर्यादा को तोड दोनो प्रेम क्रीडामे प्रवृत्त हो गये। कुछ समय पश्चात् जब राजकुमार शीलायुध अपने नगर को जाने लगा, तव वह तापस-कन्या भयसे उससे कहने लगी, "हे नाथ! यदि मुझे कदाचित् गर्भ रह जाय, तो बताओ मैं क्या करू ?" राजकुमार शीलायुधने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"हे प्रिये! तुम व्याकुल मत होओ, मै श्रीवास्ती नगरीके इक्ष्वाकु-वशी राजा शान्तायुध का राजकुमार शीलायुध हूँ। तुम पुत्रसहित मेरे पास आ जाना।"

"इस प्रकार ऋषिदत्ताको धैर्य बधाकर उसे छाती से लगाकर राजकुमार शीलायुध आश्रमसे विदा हुआ। कुछ समय पश्चात् जब ऋषिदत्ताके माता-पिता अमोघदर्शन और चारुमती आश्रमको लौटे, तब ऋषिदत्ता से सब बात सुनकर उन्होने उसे धिक्कारा और निर्लज्ज कहा।" वसुदेव के यह पूछनेपर कि आगे क्या हुआ, देवी कहने लगी, "हुआ वही जो होना था। ऋषिदत्ताने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जो अपने पिता के समान था। पर वह बेचारी ऋषिदत्ता प्रसूति समय ही मर गई।"

'यह तो वडे दुखकी बात है", वसुदेवने कहा। देवी ज्वलनप्रभा ने कहा, "राजन्! दुख की बात तो अवश्य है। पर ससारमे जीवन-मरण, यश-अपयश और हानि-लाभ सब कर्माधीन है। इनमे किसी का वस नही चलता।"

"फिर उस नवजात शिशुका पालन-पोषण कैसे हुआ?"

राजा वसुदेवने उत्सुकतापूर्वक पूछा। ज्वलनप्रभा देवीने उत्तर दिया, "आगे जो कुछ हुआ वह पहलेकी बातोंसे भी अधिक आश्चर्यजनक है। ऋषिदत्ता मरकर चारण मुनिके उपदेश और जिनधर्मकी श्रद्धाके प्रभावसे ज्वलनप्रभा नागकुमारी हुई। वही मैं देवी हूँ। अपने अवधिज्ञानसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका ज्ञान हुआ और मैं दया करके उस नवजात शिशुके स्नेहवश वनमें अपने माँ-बाप और बालक पुत्र के पास गयी। मेरे माता-पिता शोकसे तप्तायमान थे। मैंने पहले उन्हें धैर्य बधाया। फिर उस पुत्र बालकको गोदीमें उठाया और हिरनीका रूप धारण करके अपने दूधसे उस बालकका पालन-पोषण करके बड़ा किया। इधर कौशिक तापसने मरकर साँप होकर मेरे पिता अमोघदर्शनको पूर्वजन्मके वैरके कारण डस लिया। उसे मैंने अमोघमन्त्रसे निर्विष किया, अमोघदर्शनके क्रोधको धर्मोपदेश से शान्त किया और क्षमाशील किया। राजा मरकर धर्म-प्रभाव से उत्तम गतिको गया।"

देवी ज्वलनप्रभाने आगे कहा, "फिर मैं ऋषिदत्ता! तापस कन्याका रूप बनाकर उस पुत्रको लेकर राजा शीलायुधके दरबारमें गयी। मैंने कहा, "हे राजन्! यह ऐणीपुत्र आपका पुत्र राजलक्षण-युक्त है। इसे आप स्वीकार करें।" राजा शीलायुधने उत्तर दिया, "मैं तो अपुत्र हूँ। हे तापसनी, बताओ, आपने यह पुत्र कहाँ पाया?" तब मैंने उसे समस्त वृत्तान्त आद्योपान्त बताया। राजाने उस लड़केको ले लिया। मैंने प्रसन्न होकर राजा शीलायुधके प्रताप और वैभवको खूब बढ़ाया क्योंकि हम देवी-देवताओंके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। राजाको भी मैंने जैन धर्मका उपदेश दिया। कुछ समयके पश्चात् राजा शीलायुध अपने पुत्र ऐणीपुत्रको राज्य सौंपकर स्वयं मुनि हो गया और फिर स्वर्ग गया। राजा ऐणीपुत्रके घर प्रियंगु-सुन्दरी महासुन्दर नागकुमारी हुई, जिसने अपने स्वयम्वर में किसी भी नागकुमारको पति रूप में न चुना और संसारके विषय-भोगोंसे

विरक्त-सी रहने लगी। पर उसने एक दिन सेठ कामदेवकी लडकी और अपनी सहेली बन्धुमती के साथ आपको देखा। आपको देखते ही प्रियगसुन्दरी आपपर इतनी मुग्ध हुई कि उसने खाना-पीना तक त्याग दिया और एक लडकी के महागुण अभिमान तक को छोडकर स्वय आपके पास चली आयी। आप इसे स्वीकार करे''।

राजा वसुदेव ने ज्वलनप्रभा देवी से कहा, "देवी! आप ही बतायें, मैं एक अदत्ता लडकी को कैसे स्वीकार कर सकता हू। यदि उसका पिता प्रसन्नता से इसे मुझे विवाह मे दे, तो मै ले सकता हूं।" देवी ने कहा, आपकी "यह आशका व्यर्थ है। मैं इसके कुल की अधिष्ठता हू। यह राजा ऐणीपुत्र पूर्वजन्मका मेरा ही पुत्र है। जब मैं स्वय इस प्रियगसुन्दरी को दे रही हूँ, तब समझ लो कि इसके माता-पिता ने दी है और यह अदत्ता भी न रही।" इतना कहकर देवी ने राजा वसुदेवके हाथमे प्रियगसुन्दरीके हाथको पकडा दिया। उनका पाणिग्रहण हो गया। इसके पश्चात् देवीने राजासे कहा कि वह अमोघदर्शन है, उसका दर्शन व्यर्थ नही जाता, कोई वर मागे।" राजाने उससे कहा कि जब कभी वह देवीका स्मरण करे, तभी उसकी सहायता को आजाय। देवी वचन देकर अपने स्थान को चली गयी।

फिर राजा वसुदेव ने कामदेवके मन्दिरमे प्रियगसुन्दरोसे गधर्व विवाह किया और वे दोनो प्रियगसुन्दरीके महलमे प्रेमपूर्वक सुखसे रहने लगे। राजा ऐणीपुत्रने देवीके द्वारा दोनोके किये गये विवाह की बात सुनते ही प्रसन्न होकर लोकमे प्रतिष्ठा के लिए इनका विधिवत् प्रकट विवाह कर दिया।

इसके पश्चात् राजा वसुदेव अपनी दोनो नववधुओ बन्धुमती और प्रियगसुन्दरी के साथ आनन्दपूर्वक दाम्पत्य जीवन विताने लगे।

: १६ :

प्रभावती

कार्त्तिक पूर्णिमाकी चादनीसे रात जगमगा रही थी। राजा वसुदेव और प्रियगसुन्दरी अपने महलमे निद्रामग्न थे। किसी कारण-वश वसुदेव जाग उठे और साक्षात् लक्ष्मी-सी एक रूपवती कन्या-को अपने सामने खडी देखकर उन्होने उससे पूछा, "हे कमल नेत्रे ! "तुम कौन हो ?" लड़की यह कहकर कि वह जो कोई है, उसे आप जानोगे ही, महलके वाहर चली गई। राजा भी प्रियगसुन्दरीको अकेली छोड़कर वाहर लडकीके पास चले गये।

तव लडकीने राजा वसुदेवसे कहा, "भरत क्षेत्रमे विजयार्द्धगिर की दक्षिण श्रेणीमें गन्धार देशके गधसमृद्ध नगरके राजा गन्धार और पृथ्वीके समान वल्लभा रानी पृथ्वीकी पुत्री प्रभावती हूँ। एक दिन मैं मानसवेगके सुवर्णनाम नगर गयी। वहा उसकी माता अगारवतीसे मिली। उनकी पुत्री वेगवती मेरी सहेली है। उसकी वावत मैंने पूछा। तव वेगवती की सखियोने मुझे उससे मिलाया। उससे मुझे मालूम हुआ कि जिस प्रकार चद्रमाका सगम चित्रा नक्षत्रसे है, उसी प्रकार वेगवतीका संगम तथा सम्बन्ध आपसे कैसे हुआ। तव मैंने हसीमे उसे कहा कि जैसे चित्रा नक्षत्रका सगम चद्रमासे होता है, वैसे तुम्हारा यादवो के चद्रमा राजा वसुदेव से सगम हुआ। इस पर वेगवती लज्जा से कुछ मुस्कुरा दी। उसी नगरमे आपकी प्रिया सोमश्री शुद्धशील रूपी आभूषणोंसे मंडित आपका नाम जप रही है। आपका नाम ही तो उसका भोजन है।"

राजा वसुदेव वेगवती सोमश्रीका नाम सुनकर प्रभावतीसे प्रसन्न होकर उनका हाल पूछने लगे। तव प्रभावती ने बताया,

"सोमश्री मानसवेगकी माके पास ठहरी हुई है। आपके वियोगके महादु खसे उसके कपोल सफेद पड गये है, मानो उनमे रक्त ही न रहा हो। मानसवेगके वचनो और प्रलोभनोसे वह प्रभावित या डगमगायी नही। मानो वह शीलके दुर्गमे बैठी हो। पर आप सोचे कि शत्रुके घरमे कबतक वह इस तरह रह सकती है। इसीसे सोमश्रीने मुझे आपके पास सहायता का सदेश देकर भेजा है। उसने कहा है, "शत्रु मानसवेग की माताने मुझे भली प्रकार सुरक्षित रखा है और अपने पुत्र मानसवेगको बहुत दबाया-समझाया है। अब आप शीघ्र मेरी सुध लो और मुझे इस मानसवेगके फंदेसे छुडाओ। यदि अब भी आप मेरी सुध न लोगे तो आपके वियोगमे मेरे प्राण चले जायेगे। इसलिए यह कठोर उपेक्षा छोडकर मेरी रक्षाका यत्न करो।"

प्रभावतीने आगे कहा, "सोमश्रीने आँखो मे आसू भरकर यह विनती की है। मैं आपसे कहकर कृतार्थ हो गई। अब जैसा आप उचित समझे, करे। हां, एक बात और है।" राजा वसुदेवने पुछा, "वह क्या है ?" तब प्रभावती बोली, "यदि आपको यह आशंका हो, कि सोमश्रीका स्थान अगम्य है, तो मैं आपकी आज्ञासे जहाँ कहोगे, वही ले चलू गी।"

प्रभावतीकी बाते सुनकर वसुदेवको उसकी सब वातोपर विश्वास हो गया। तब उसने प्रभावतीसे कहा, "हे सोमवदना! "तू मुझे शीघ्र ही सोमश्रीके पास ले चल।" विद्याधरी प्रभावती राजा वसुदेव की आज्ञानुसार बिजली के समान प्रकाश करके आकाशको उल्लघन करके वसुदेवको स्वर्णनामपुर ले गयी। किसीको खबर भी न हो पाई, और वह राजा वसुदेवको सोमश्रीके पास ले गयी। वसुदेवने देखा कि सोमश्री कान्त के वियोगसे कुम्हलाये कमल पुष्पके समान है। उसके कपोल शोभाहीन और मलिन है। न उसने शरीरका कई दिनसे सस्कार किया। उसके केश रूखे-बिखरे हुए

थे। और होठ भी पानके रंग बिना सूखे-सूखे है। गर्मीसे जैसे बेल की कोपलें मुरझा जाती हैं, वैसे पति वियोगकी तपन से सोमश्री का मुख उतरा-उतरा कांतिहीन हो रहा है। राजा उसके तनकी इस दशाको देखकर बड़ा दुःखी हुआ। वसुदेवको देखते ही सोमश्रीकी जान में जान आगयी। वह उठकर अपने पतिके सामने आयी। राजा वसुदेवने उसे छातीसे लगाया। वे दोनों कुछ रोमांचित हो, ऐसे हो गये जैसे वे एक ही अंग हों।

प्रभावतीने उसका सब काम चतुराईसे सफलतापूर्वक कर दिया, इससे सोमश्रीने उसका हृदयसे आभार माना। प्रभावती अपने स्थानको चली गयी।

राजा वसुदेव रूपपरावर्तनी विद्याके द्वारा अपना रूप बदलकर सोमश्रीके साथ मानसवेगके महलमें कई दिन रहा। जब एक रात को सोमश्री जागी, तब वह वसुदेवको असली रूपमें देख कर शत्रु मानसवेग के द्वारा पतिके मारे जानेके भयसे बड़ी चिन्तित हुई और रोने लगी। वसुदेवने उससे रोनेका कारण पूछा। सोमश्रीने कहा, "हे नाथ! आपने रूप पलटनी विद्यासे जो रूप परिवर्तित किया था वह न देखकर मैं आपका मूल रूप देख रही हूं। इससे मुझे शत्रुका भय पैदा हुआ है। इसीसे मैं रो पड़ी थी।" वसुदेव ने उससे कहा, "हे प्रिये! किसी बातका भय मत कर। इन विद्याओं का यही स्वभाव है कि जागृत दशामें तो शरीरमें रहती हैं, पर शयन अवस्थामें दूर हो जाती हैं। इसलिए तू न कोई सन्देह कर और न डर।" यह कहकर राजा वसुदेवने फिर अपना रूप वैसा बदल लिया, जैसा विद्या द्वारा पहले दिखाया था।

कुछ दिनोंके पश्चात् मानसवेगको यह पता चल गया कि वसुदेव सोमश्रीके पास रह रहा है। वह वैजयन्तीपुरी के स्वामी नलसिंहसे पक्षपातके लिए मिला। वसुदेवका पक्ष सच्चा और न्यायपूर्ण था; पर मानसवेग न माना और युद्धके लिए तैयार

हो गया। बहुतसे विद्याधर वसुदेवकी सहायताके लिए वहाँ आपहुँचे। दोनो पक्षोमे महासग्राम छिड गया। मानसवेगकी बहन वेगवती अर्थात् वसुदेवकी पत्नी और उसकी मा अगारवतीने भी पुत्रीका पक्ष लेकर अपने जवाई वसुदेवको एक धनुष और दिव्य बाणोसे भरे दो तरकश दिये। प्रभावती विद्याधरी युद्धका समाचार सुनकर वसुदेवकी सहायताके लिए वहाँ आपहुची। उसने राजाको प्रज्ञाप्ति विद्या दी, जिसके प्रभावसे वसुदेवने मानसवेगको बाँध दिया। तब अगारावतीने जवाई वसुदेवसे अपने पुत्र मानसवेगके प्राणका दान मागा। इसपर दयावान् वसुदेवने सोमश्री सहित मानसवेगको सोमश्रीके महलमे लेजाकर वहा उसको छोडा। मानसवेगको अब वसुदेवसे बडाप्रेम हो गया। मानसवेग वसुदेव को सोमश्री सहित सोमश्रीके पिताके नगर महापुर ले गया।

सोमश्री अपने माँ-बाप और बन्धुओसे मिलकर बडी प्रसन्न हुई। वसुदेव भी वही रहा। तब मानसवेग स्मरण करनेपर आनेका वचन देकर अपने स्थानको लौट गया। वहाँ वसुदेव और सोमश्री सुखसे रहने लगे। दोनोने वियोगके दिनोकी दु ख-सुखकी बाते एक-दूसरेसे कही।

एक दिन सूर्यक नगरका शत्रु विद्याघर घोडे का रूप बनाकर वसुदेवको ले उडा और उसे गगामे डाल दिया।

वसुदेव गगाको पार करके एक तापसके आश्रम मे पहुच गया। वहाँ उसने उन्मादसे बावली एक नारी को देखा, जिसके आभूषण नरोकी अस्थियोके बने हुए थे। एक तापससे उसकी बावली होने का कारण पूछने पर उसने वसुदेव को बताया, "यह नारी राजा जरासिन्धकी पुत्री केतुमती है और यह राजा यतिशत्रुकी रानी है। एक मन्त्रवादी परिव्राजकने इसे वाद-विवादमे जीत लिया और उसने केतुमतीको क्रोधसे मारा, इसलिए यह बावली हो गयी है। अब यह अस्थियोकी माला पहनकर यहाँ-वहाँ भ्रम रही है।"

राजा वसुदेवको उसका यह हाल सुनकर उसपर बड़ी दया आयी और उसने महामन्त्रके प्रभावसे उसको ठीक कर दिया। यह देखते ही, जरासिंधके नौकर गुप्तचर वसुदेवको पकड़कर नगरमे ले गये। जब वसुदेवने उनसे अपना अपराध पूछा, तव उन्होने उसे वताया "जो आदमी राजाकी पुत्रीका ग्रह उतारकर उसे होशमें लाये वह राजा जरासिंधके वैरीका पिता है। इससे तुम्हे मारनेको ले जा रहे हैं।"

उसी समय एक विद्याधर वसुदेवको आकाश मे ले उडा। उस विद्याधरने उसे वताया कि जो विद्याधरी प्रभावती उसे सोमश्रीके पास ले गयी थी, वह उसका पिता भगीरथ है और वह राजाके मनोरथको सिद्ध करनेवाला है। यह वतानेके पश्चात् वह भगीरथ विद्याधर राजा वसुदेवको अपने नगर गंधस्मृद्ध लेगया। वहाँके अनेक विद्याधरोंने राजाका वडे मान-शानके साथ स्वागत करके नगरमे प्रवेश कराया। फिर शुभदिन और अच्छे लगनमे विद्याधर भगीरथ और उसके कुटम्बीजनो ने वसुदेवका विवाह प्रभावतीसे कर दिया। पति-पत्नीमे पहलेसे ही जो परिचय और प्रेम था, वह अब और वढ गया।

कर्मोंकी वडी विचित्र गति है। पापोके उदयसे इष्टमित्रोका वियोग होता है और पुण्यके प्रभावसे वियोग समाप्त होकर उनका मिलाप होता है।

: १७

स्वयम्बर, संग्राम और भ्रातृ-मिलाप

एक बार राजा वसुदेव प्रभावतीके साथ महलमे विश्राम कर रहे थे। उनका शत्रु विद्याधर सूर्य्यक वासदेवको आकाशमे ले उडा। जब वसुदेवने उसे मुक्को से मारा, तब उसने वसुदेवको आकाशसे नीचे डाल दिया। वसुदेव गोदावरी नदीमे गिर पडा। नदीके किनारे पर कुण्डपुर नगर था, जिसका राजा पद्मरथ था। उसकी पुत्रीकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो व्यक्ति फूलमाला गूथनेकी प्रवीणतासे उसे रिझायेगा, वही उसका पति बनेगा। वसुदेवने माला गूँथनेकी प्रवीणतासे राजकुमारीको प्रसन्न करके उससे विवाह किया।

वहाँसे एक बार एक नीलकण्ठ वसुदेवको ले उडा और उसे चम्पापुरी के सरोवर मे डाल दिया। सरोवरसे निकलकर वसुदेव नगरमे गया और वहाँ के मन्त्रीकी पुत्रीको व्याहा।

एक दिन वे दोनो पति-पत्नी जलक्रीडा कर रहे थे, कि वही शत्रु विद्याधर सूर्य्यक उसे फिर ले उडा और गगामे डाल दिया। गगाके किनारेके नगर मलेच्छ खण्डके राजाने वसुदेवसे अपनी जरा नामकी पुत्री विवाह दी। इमसे वसुदेवके यहाँ जरत्कुमार महा-पराक्रमी पुत्र हुआ।

इसके पश्चात् वसुदेवने अवन्तिसुन्दरी, शूरसेना और जीवयशा राजकुमारीसे विवाह किया। यहाँसे वह अरिष्टपुर नगर गया।

अरिष्टपुरके राजाका नाम रुधिर था, जो युद्धमे बड़ा प्रवीण था। उसके स्वर्ग की देवीके समान सुन्दर मित्रा रानी थी। राजाके बड़े पुत्रका नाम हिरण्यनाभ था, जो अनेक नयो का ज्ञाता, रणमे शूरवीर, महापराक्रमी और शस्त्र-शास्त्र विद्याओमे महानिपुण था। राजाकी लडकीका नाम रोहिणी था, जो चन्द्रमाकी रानी रोहिणीके सदृश सुन्दर थी। जब राजकुमारी रोहिणी विवाहके योग्य हो गई, तब उसके पिताने उसका स्वयम्वर रचाया।

स्वयम्वर मण्डपकी सजधज और शोभा अवर्णनीय थी। उसमे रोहिणीके विवाहके इच्छुक हर एक आगतुकके वैठनेके लिए सुन्दर मणिमय सिहासन लगे थे। स्वयम्वर मण्डपमे राजा जरासिंध और राजा समुद्रविजय आदि आये थे। वहाँ वसुदेव भी भाइयोसे अलक्ष्य अपना भेष वदले वाजा वजाने वालोमे हाथमे वीणा लिए वैठा था।

जब राजाओने अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लिए, तब सौभाग्य-भूमि स्वयम्वर मण्डपमे अद्भुतशृंगारयुक्त राजकन्या रोहिणीने हाथों मे पुष्पमाला लिए, सर झुकाये मन्दगतिसे प्रवेश किया। उसके आगे-आगे परिचय देनेमे अतिनिपुण धाय थी। राजवालाके मण्डपमे प्रवेश करते ही शंख भेरी और दूसरे वाजोसे मण्डप गूंज उठा। सभी राजा और दर्शक अपने-अपने स्थानपर सावधान वैठ गये और सभी की दृष्टि रोहिणीपर पड़ी, मानो वे सब अपने कमलरूप नेत्रोसे उसका स्वागत और अर्चा कर रहे हो। उसका रूप देखते ही सबके हृदयोमे चाह व व्याकुलता पैदा हुई। हरएककी यही इच्छा थी कि वह उसे वरे। जिस रोहिणीके रूपकी चर्चा सुनने मात्रसे उसे पानेकी इच्छा उनके हृदयोमे उत्पन्न हुई थी, अब उसे साक्षात् देखकर वह तरंगित हो गयी। उसके रूपके वर्णनके श्रवण-मात्रसे ही जो अनुराग रूप अग्नि प्रज्वलित हुई थी, वह उसके दर्शन रूप ईंधनसे और भड़क उठी।

स्वयम्बरमण्डपके प्रवेश द्वारके एक सिरेसे राजकन्या रोहिणीने हाथोमे वरमाला लिए धायके पीछे चलना आरम्भ किया। चतुर धाय बडे मीठे वचनोसे आगन्तुक राजाओके वश, पराक्रम, गुणों, नाम तथा स्थान आदिका परिचय देती हुई कहने लगी—"हे राज-कन्ये! यह वसुधाका राजा जरासिन्ध है। शरत्की पूर्णिमाके चन्द्र सदृश जो श्वेत छत्र इसके सिर पर है वह तीन खण्डको जीतनेसे जो यश इसने पाया है, उस यशका द्योतक है। सब भूमिगोचर विद्याधर इसके आधीन है, मानो स्वय चन्द्रमा रोहिणी देवीका सग तजकर तेरे प्रलोभनवश यहाँ आया है। यदि तेरी इच्छा हो, तो इसे वर ले।" रोहिणीने उसकी तरफ दृष्टि उठाकर न देखा और आगे बढ गई।

तब धायने अगले राजा का परिचय देते हुए कहा—"हे पुत्री! यह सूर्य्यपुर नगरके अधिपति राजा अधक वृष्टिका पुत्र राजा समुद्र विजय अपने भाइयो सहित यहाँ विराजमान है। सभी भाई समस्त गुणोसे पूर्ण हैं। यदि तेरी इच्छा हो, तो इनमे मे किसीको चुन ले।" राजकन्या चुपकेसे आगे बढ गई। तब धायने कहा—"हे पुत्री! यह राजा पाण्डु है। यह विदुर है। यह दमघोप राजा है। ये यशोघोप और दतवक्र है। यह महापराक्रमी राजा शल्य है, जिसका नाम शत्रुओंके मनमे शूलके समान चुभता है। इस प्रकार अनेक राजाओ का परिचय देती हुई धाय आगे बढी। उसके पीछे राजकुमारी रोहिणी थी। फिर राजा चन्द्रवक्र, राजा कालमुख, राजा पुण्डरी-काक्ष, राजा मतस्या, राजा सजय, राजा सोमदत्त अपने पुत्रो सहित धाय के द्वारा परिचित कराये गये। पर रोहिणीके पग कही न रुके। वह आगे बढ गयी। तब धायने राजा अमुमति और उसके पुत्रो, राजा कपिल, अधिपति विपुलक्षरण, नृपपद्मरथ, राजा सौमक, राजा सौम सौम्यक, देवोके समान राजा दिवक और राजा श्रीदेव-का परिचय उनके वश, नगर तथा गुणोको बताते हुए दिया और कहा कि ये सब राजा उसके सौभाग्य गुणसे आकृष्ट होकर स्वयम्वर-

मण्डपमे पधारे है। धायने उसे समझाते हुए कहा कि वह किसी एकमे अपने चित्तको लगाकर योग्य वरको प्राप्त करे और अपने माता-पिता तथा कुटुम्वी जनोकी चिन्ताको दूर करे। धायने रोहिणीसे कहा—"हे पुत्री ! तेरी विवाह योग्य अवस्था को देख-देखकर चिन्ताके कारण तेरे माता-पिताकी भूख और नीद सब जाती रही है। इसपर राजकन्या ने उत्तर दिया—"हे माता ! तूने जो-जो राजकुमार अब तक दिखाये है, उनमे से किसीपर भी मेरा मन अनुरक्त नही हो रहा है। वास्तवमे तो वरको देखने मात्रसे ही हृदयमे स्नेह उत्पन्न होता है, तेरे कहनेसे नही। जैसे मुनिके मनमे न तो राग, न द्वेष मोह होता है, वैसे मेरे मनमे इन राजाओके प्रति किसी प्रकारकी इच्छा नही है। बता मैं क्या करू ? अब तुम मुझे इनसे भिन्न कोई ऐसा पुरुष दिखाओ, जिसे विधिने मेरा वर रचा हो।" जब दोनोमे ये बाते हो रही थी, तभी राजकुमारी की दृष्टि वसुदेव पर पडी। वसुदेवके हाथमे मादल और वीणा थी। वह उसे बजा रहा था। बाजोकी ध्वनि राजकुमारी के चित्तमे जा बसी। उसके पाव वहीं रुक गये। धाय भी रोहिणीके मनके भाव को समझकर उस वादकका परिचय देने लगी। पर क्या परिचय दे, यह वह न जानती थी। फिर भी धाय बोली, "हे राजकुमारी ! तेरे मनको हरनेमे समर्थ यह राजा हम वीणा बजाने वाला प्रकट हुआ है। यदि तेरा मन इसे स्वीकार करे, तो तू इसे वर ले।" तब रोहिणी अन्तिम निर्णय करनेके विचारसे वसुदेवको सिरसे पावतक ध्यान पूर्वक देखने लगी और राजाओंके सभी लक्षणोमे पूर्ण देवोके तुल्य इसे पाकर उसकी तरफ आगे बढी। उन दोनोकी दृष्टि मिलती थी, कि वे दोनों एक दूसरेपर आसक्त हो गये और दोनोकी अभिलाषा बढ गयी। तब रोहिणीने वसुदेवके गलेमे वरमाला डाल दी। वसुदेव उससे प्रफुल्लित हो उठा। रोहिणी वसुदेवकी बगलमे बैठी ऐसी लगती थी, जैसे चन्द्रमाके समीप रोहिणी शोभायमान होती है। सबसे मिलाप से उत्पन्न आनन्द कुछ बढा और कुछ समयमे वह अपने अगले

पतिके अगसे सटकर बैठ गयी। दोनोने एक नया सुख अनुभव किया।

वरमाला डालनेपर उपस्थित राजाओ, दर्शको और कुटुम्बीजनोके हृदयोमे भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुई। स्वयम्वरमे जो सुबुद्धि राजा बैठे थे, उन्होने प्रसन्न चित्तसे स्वयम्वरकी मर्यादाको निभाते हुए, रोहिणीके चुनावकी प्रशसा करते हुए कहा, कि इन दोनो का सयोग रत्न और कचनके मिलाप सदृश सुन्दर है। उन्होने कन्याकी निपुणताकी प्रशसा की कि उसने कितना योग्य वर चुना है। उन्होने यह भी कहा कि यह अवश्य कोई बडे वशका राजपुत्र है, पर अपना कुछ छिपाये क्रीडाके लिए घूम रहा है।

पर जो राजा दुर्बुद्धि थे, उन्होने रोहिणीके इस चुनावको अपना अपमान समझा और उसके कामको अयुक्त कहा कि इतने कुलवन्त राजाओके पुत्रोको छोडकर इसने एक वाजत्रीके गलेमे वरमाला डाली है। यह समस्त राजाओका अपमान असह्य है। स्वयम्वरका यह अर्थ नही कि हर कोई पुरुष हर किसी स्त्रीको वरे। यह तो अति प्रसगदोष है। यह क्या कि ऊँच-नीच कुलका विचार ही न रहे? इतने बडे पुरुषोके बीच इस रकको आनेका अवसर क्यो दिया गया? यहाँ अकुलीनका प्रवेश ही अयोग्य है। उन्होने चुनौती देते हुए कहा, कि यदि यह कुलवत है तो अपना कुल प्रकट करे, बताये, वरना यह नीच है और नीचको यहाँसे निकाल देना चाहिए और यह कन्या किसी राजपुत्रका परिणय करे।

इस पर महाधीर वसुदेव उन क्षुब्ध राजाओ से कहने लगा, "हे क्षत्री पुत्रो! आपमे जो सत्पुरुष है और जो मदोन्मत हैं, वे सब मेरी बात ध्यानसे सुने। स्वयम्वरका यही नियम है कि कन्या जिसको वरनेकी इच्छा करे, उसे ही वरे। यहाँ राव और रकका विचार नही चलता। कन्याके माता-पिता और भाइयोको कोप नही करना चाहिए। यहाँ किसीकी आज्ञा प्रधान नही है। स्वयम्वरमे कन्याकी इच्छा ही निर्णायक है। चाहे कोई महाकुलवत, रूपवत, भाग्यवान्

या धनवान् हो, या कोई अकुलीन, कुरूप, या दरिद्र हो, जिसे कन्या वरे, वही कन्याका वर होता है। यहाँ कुल या सौभाग्यका नियम नही चलता। इस कन्याने कुल-सौभाग्य निरख कर वरमाला डाली है, या इन्हे विना जाने, आपको इस वाद-विवादसे क्या प्रयोजन? और यदि इस पर भी आपमे से कोई अपने पुरुषार्थके घमण्डसे शात न हुआ, तो उसे मैं अपने बाणोसे शात करूँगा। जब मैं धनुष चढाकर कान तक खैच कर वाण चलाऊँगा, तव सबको लालूम होगा कि मैं कैसा वीर हूँ।"

वसुदेवकी यह ललकार सुनकर राजा जरासिधने कोप करके सब राजाओसे कहा, "ये बाजत्रीकी विपरीत वुद्धिकी बाते है। इसे बाँधो। कन्याका पिता रुधिर अपने पुत्र सहित अविवेकी है, जो इन्होने स्वयम्वर शालामे अकुलीनको आने दिया। इसलिए राजा रुधिरको भी पुत्र सहित पकड लो।"

जो दुर्जन राजा पहले से ही क्रुद्ध बैठे थे, वे राजा जरासिध अर्धचक्रीकी आज्ञा पाते ही महाप्रज्वलित होकर युद्धके लिए तैयार हो गये। परन्तु जो विवेकशील मर्यादा-प्रेमी राजा थे, वे अपनी सेना सहित दूर निष्पक्ष होकर अलग जा खडे हुए। जो राजा रोहिणीके पिता रुधिरके पक्षमे थे, वे विरोधियो को पराजित करनेकी इच्छासे शस्त्रोंके साथ लैस होकर तत्काल राजा रुधिरके समीप आ गये। राजा रुधिरका बड़ा पुत्र राजकुमार हिरण्यनाभ आँखे रुधिरके समान लाल करके अपनी बहन रोहिणीको रथमे चढाकर अपने हथियारबन्द योद्धाओं सहित खडा हो गया। इधर राजा रुधिर अपने योद्धाओंको अति मधुर शब्दोंसे कहने लगा, "हे सुभटो! आप महारथी है। जैसा आपको योग्य और उचित हो, वैसे ही युद्ध करो।"

इसी समय राजकुमार वसुदेवने अपने श्वसुर राजा रुधिरसे निवेदन करना आरम्भ किया, "हे पूज्य! मुझे दिव्य अस्त्रों और सामान्य शस्त्रोंसे पूर्ण एक रथ शीघ्र दो और मुझे आज्ञा करो कि इन

भूपतियोसे मै किस दिशामे युद्ध करू । फिर देखे कि वे कुलीन मुझ अकुलीनके बाण कैसे सहारते है ।" वसुदेवकी यह बात सुनकर राजा रूधिरने समझ लिया कि यह बडे वशसे उत्पन्न महाशूरवीर पुरुष है । तब राजा रूधिरने वसुदेवको महातेजस्वी घोडोवाला बडा रथ दिया, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोसे पूर्ण था । जिस समय वसुदेव रथ पर चढा, उसी समय महाशूरवीर विद्याधर दधिमुख अपने दिव्य रथपर सवार उसके समीप सहायताके लिए आ गया, मानो वसुदेवकी विजयका मनोरथ पूरा करने दिव्यास्त्रो अर्थात् देवोपुनीत शस्त्रोसे देदीप्यमान महामित्र आया है । विद्याधरने वसुदेवको नमस्कार करके कहा, "आप मेरे रथ पर चढे, मै आपका सारथी बनूँगा । आप शत्रुओ के समूहको युद्धमे जीते ।" वसुदेव दधिमुखके रथमे सवार हो गया । वह धनुष हाथमे लिये हुए था और कवची-बख्तर-पहने हुए था । रथमे नाना प्रकारके बाण तरकशोमे लगे थे ।

अपने नवपति वसुदेवको शस्त्र सुसज्जित योद्धा रूपमे देखकर रोहिणीने अपने भाग्यको सराहा कि उसका पति केवल अच्छा वाजत्री ही नही है, वरन् वीर सुभट भी है । -पर अनपेक्षित रूपसे रण छिड जानेके कारण रोहिणीका मन अनिष्टकी आशकासे भी भर गया । रण आखिर रण है । उसके परिणाम या जय-पराजय-की भविष्यवाणी कौन कर सकता है ? रणमे क्षणोमे स्थिति पलटती है । हारता हुआ पक्ष जीत जाता है और जीतता हुआ पक्ष हार जाता है । रोहिणी भी राजकुमारी थी । जवान, सुगठित शरीरवाली बलवती वीरागना थी । उसने भी शस्त्र चलाना, धनुर्विद्या और युद्ध कौशल सीखे थे । युद्धका नाम सुनकर उसकी भुजाएँ फडक उठी । उसका पति लडे और वह देखती रहे ? स्वयम्वर मे आये हुए कुछ राजागण अन्यायसे मर्यादा और विवेकको छोडकर उसके चुनावको चुनौती देकर उसके पतिसे लडे और वह सब कुछ सहन करे ?

असम्भव । उसने झटसे पतिसे प्रार्थना की, "हे नाथ ! मुझे आज्ञा दो कि मैं भी युद्धमे आपका साथ दूं । मै आपकी अनुगामिनी अवश्य हूँ, पर इस युद्धमे मैं आपसे आगे रहकर अपने युद्ध कौशलसे इन दुर्जनोको परास्त करना चाहती हूँ । इनके अयुक्त व्यवहारका मजा इनको चखाना चाहती हूँ ।" रोहिणीके ये वीरता पूर्ण शब्द सुनकर वसुदेव मनमे बडा प्रसन्न हुआ । पर वे अपने होते उसे किस प्रकार युद्धमे कूदनेकी अनुमति देते ? वसुदेवने रोहणीसे कहा, "प्रिये, इन राजाओका अयुक्त युद्धके लिए तत्पर होना मेरे पौरुष, पराक्रम और वशकुलादि को चुनौती है । अत मैं ही इनसे निपटूंगा । तुम नि शक होकर मेरे युद्ध-कौशलको देखो । मेरे होते तुम्हे लडनेकी आवश्यकता नहीं । तुम तो मेरी विजय और अपने सौभाग्यरक्षाकी भावना करती रहो । यही पर्याप्त होगा ।" पतिके इन वचनोसे आश्वस्त हो, रोहिणी युद्ध देखने लगी ।

रोहिणीके पिता राजा रुधिरकी चतुरगी महान् सेना शत्रुओके विनाशके लिए रणभूमिमे उतर आयी ।

कुमार वसुदेवने शत्रुओके सेनारूपी समुद्र पर एक दृष्टि डाली । सामने शत्रुओंकी सेना समुद्रके समान थी, जिसका पार ही दिखाई न देता था । दोनो सेनाओमे महायुद्ध आरम्भ हुआ । घोडोंकी हिनहिनाहट और शखनाद समुद्रकी गरजनाके समान लग रहे थे । हाथी सवार हाथी सवारसे, घुड़सेना घुडसेनासे और प्यादे प्यादोंसे लडने लगे । रथोमे सवार योद्धा रथोमे सवार योद्धाओसे भिड रहे थे । सावन्तोंके बाणोने आकाश आच्छादित हो गया । आकाश मे इतना गर्द चढा कि सूर्य भी दीखना बन्द हो गया ।

इस भयंकर युद्धमे वीर योद्धाओंके भी छक्के छूट रहे थे, फिर सामान्योंका तो कहना ही क्या ? खड्ग, बाण और गदाओ की मानों मानस [illegible] [illegible] धाराओमे अन्धकार छा गया । सर्व

हाथी पर्वतो के समान गिर रहे थे, वडे-बडे घोडे और शूरवीर भूप भी रणमे इधर-उधर पडे थे। सैकडो रथ टूटकर चकनाचूर हो गये।

जब वसुदेवने देखा कि शत्रुओकी सेनासे उसकी सेना दब सी रही है, तब वसुदेव और हिरण्यनाभ दोनो अपनी सेनाको थामने और हिम्मत बढानेको तैयार हुए। फिर इन दोनोने दृष्टि, मुष्टि और बाणोके सधानसे ऐसे बाण चलाये, जैसे शत्रुओने कभी न देखे थे, वे जिसको लगते, वही धडामसे गिर जाता। इनके बाणोंसे शत्रुओकी सेनाका कोई हाथी, घोडा, रथ और मनुष्य न बचा, सबको भेदा। अब तरह-तरहके दिव्य बाण छोडे गये। वसुदेवने अपने बाणोके शत्रुओके यश-चिह्न छत्रोको और उनके सिरोको उडाया। इधर वसुदेव योद्धाओसे भयानक युद्ध कर रहा था, उधर उसका साला रोहिणीके भाई हिरण्यनाभने शत्रु सेनामे एक बडे राजाके पुत्र पौड्र-कुम्वरसे भयकर युद्ध आरम्भ किया, वे दोनो राजकुमार ऐसे लड रहे थे, जैसे शेरके बच्चे आपसमे लडते हो। इधर हिरण्यनाभने पौड्रकुम्वरकी ध्वजा और छत्र उडाये, उसके सारथीको मारा, उसके रथके घोडोको मार गिराया, उधर पौड्रकुम्बरने भी मारे क्रोधके बदलेमे उसकी ध्वजा तथा छत्र गिराये और सारथी और घोडे आदि मारे। इतना ही नही उसने हिरण्यनाभको भी रथपर से भूमि पर डाल दिया।

जव हिरण्यनाभ पृथ्वीपर गिर पडा, तभी वसुदेवभी उसकी सहायताके लिए उसके पास जा पहुँचा। उसने अपने अर्धचन्द्र वाणसे पौड्रकुम्बरका धनुप तोड डाला और फिर हिरण्यनाभको अपने रथमे चढाया। उसने अपने वाणोकी वर्षासे पौड्रकुम्बरको आच्छादित किया। कुमार पौड्रकुम्बरकी सहायताके लिए जो योद्धा वसुदेवके विरुद्ध आये, उसने अपने तीक्ष्ण वाणोसे उनके वाण भेदे और उन-की सेनाको पराजित किया। इसपर सवने वसुदेवकी वीरताकी प्रशसा की। सवने यही कहा कि ऐसा सुभट अब तक उनके देखनेमे नही

आया । एक तरफ अकेला वसुदेव था, दूसरी तरफ अनेक योद्धा । इस पर न्यायवान राजाओने कहा, "आज तक यह अन्याय नहीं देखा कि एकसे अनेक लडे । एक योद्धासे एक ही योद्धाको लडना उचित है ।" तब जरासिंधने धर्मयुद्ध देखनेकी इच्छासे राजाओको आज्ञा दी, "इस कन्या रोहिणीके लिए एक-एक नृप वसुदेवसे लडे । जो इसको जीतेगा वही कन्याका पति होगा ।"

तब दूसरे राजा तो दूर खडे-खडे युद्धको देखते रहे, पर शत्रुञ्जय राजा दन्तवक्र और राजा कालमुख वसुदेवसे बारी-बारीसे युद्ध करने आये । इन सबको वसुदेवने पराजित करके इनको प्राण दान दिये । वसुदेवकी इस विजयसे राजा रुधिर और उसके सभी साथी बडे प्रसन्न हुए, पर विपक्षियों को चिंता हो गयी । इसपर जरासिंधने राजा समुद्रविजयसे कहा, "हे नृप ! आप शस्त्र-विद्यामे प्रवीण हैं इसलिए रणमे इस मानीका मान भंग करो ।" जरासिंध की आज्ञा-पर राजा समुद्रविजय युद्धके लिए तत्पर हो गया, क्योंकि युद्ध और सेनाका यह नियम है, सब आधीन या साथी योद्धा सबसे बडे अधि-कारीकी आज्ञानुसार कार्य करे, इसीका नाम सैनिक अनुशासन है ।

राजा समुद्रविजयने अपने सारथीको अपना रथ विरोधी योद्धा पर चलानेका आदेश दिया, जिसका पालन सारथीने किया ।

राजा समुद्र विजय या वहाँ किसी दूसरे राजाको यह मालूम न था, कि सामनेसे लडनेवाला वह वीर योद्धा समुद्रविजयका भाई ही है । पर वसुदेवको तो सब कुछ मालूम था । इसलिए अपने पिता तुल्य ज्येष्ठ भ्राताका रथ अपने ऊपर आता देखकर उसने अपने सारथी दिखाकर दधिमुखसे कहा, 'देखो, यह मेरा बडा भाई समुद्र-विजय है । इसकी तरफ अपना रथ धीरे-धीरे चलाओ । ये मेरे गुरु-जन हैं । इनके तक धीरेसे रथ चलाना है ।" दधिमुखने कहा कि उनकी आज्ञानुसार ही सब काम होगा । यह कहकर दधिमुखने राजा समुद्रविजयकी तरफ धीरे-धीरे रथ चलाया ।

इधर समुद्रविजय ज्यूँ-ज्यूँ आगे बढा और वसुदेवको देखा, उसके हृदयमे भ्रातृस्नेह उत्पन्न होने लगा। तब उसने अपने सारथीसे कहा, "इस योद्धाको देखकर मेरे हृदयमे स्नेहके भाव उत्पन्न हो रहे है। इसका क्या कारण है ? मेरी दाहिनी भुजा और नेत्र फडकते है। इसलिए मेरा प्यारा भाई मिलना चाहिए। इस मारने योग्य शत्रुको देखकर मेरे हृदयमे ऐसा अनुराग-भाव क्यो पैदा हो रहा है ? ये चिह्न तो भाईके मिलनेके है। पर योग पडा है शत्रुसे रणका। सो यह बात कैसे बने ? देश और काल-विरुद्ध यह मिलाप होता दिखाई नही देता।"

इस पर सारथीने उत्तर दिया, "हे प्रभो ! शत्रुको जीतनेके पश्चात् बन्धुका अवश्य मिलाप होगा। हे राजन् ! यह शत्रु वडा योद्धा है। अनेक राजा इसे युद्धमे न जीत सके। इसलिए सब राजाओके सामने ऐसे शत्रुको जीतनेसे आपकी प्रशसा होगी। आप जरासिधसे आदर-सम्मान पायेगे।"

सारथीकी उपर्युक्त बात सुनकर समुद्रविजय वहुत प्रसन्न हुआ और उसने वसुदेवकी तरफ रथको बढवाया। इधर राजाने अपना धनुष चढाया और बाण साधा। उधर वसुदेवने भी अपना बाण साधा।

समुद्रविजय सामनेके योद्धाको अपना छोटा भाई वसुदेव नही समझता था, इसलिए विरोधी पक्षका योद्धा समझकर उसे सम्बोधित करने लगा, औरोसे रणमे तेरी धनुष बाणकी प्रवीणता हमने बहुत देखी है, वैसी ही प्रवीणता हमे भी दिखाओ। यह ठीक है कि तेरी शूरवीरता रूपी पर्वतपर मानका शिखर शोभायमान है, पर याद रखो, मै राजा समुद्रविजय हूँ। मैं अपने बाणो की वर्षासे तेरे मान रूपी शिखरको आच्छादित कर दूंगा।"

वडे भाईके शब्द सुनकर वसुदेव कुमारने अपना शब्द और रूप बदल कर कहा, "हे राजेन्द्र ! बहुत कहनेसे क्या होता है ?

आज रणमे आपका और मेरा पराक्रम प्रकट होगा । आप समुद्र-विजय है तो मैं संग्राम-विजय हूँ । अगर आपको विश्वास न आता हो, तो अपना वाण शीघ्र चलाओ ।"

कुमार वसुदेवके ये वचन सुनकर समुद्रविजय बिना जाने छोटे भाई पर वाण चलाने लगा । वसुदेवने बड़े भाईके वाणोंको वीचमे ही काट दिया । पर उसने स्वय जो वाण चलाये, वे बडे भाईका अंग बचाकर चलाये । बहुत देर तक सामान्य शस्त्रो से युद्ध हुआ, फिर समुद्रविजयने सोचा कि यह सामान्य शस्त्रोसे पराजित होने वाला नही है । तब उसने दिव्य अस्त्र—जैसे अग्निवाण और जलवाण चलाये, जिन्हे वसुदेवने जलवाण और वायुवाणसे रोका । इस प्रकार दोनों योद्धाओमे दिव्यास्त्रोसे महायुद्ध हुआ । जब उसके सभी दिव्य वाणोको वसुदेवने वीचमे रोक दिया, तब समुद्रविजयने एक और अतिभयकर क्षत्रप्रताप वाण छोड़ा, उसको भी वसुदेवने वीचमें ही काट दिया ।

अब वसुदेवने अपने वाणोसे समुद्रविजयके रथको तोडा और उसके सारथी और घोडोको घायल किया, पर वडे भाईके अगको बचाये रखा । राजा समुद्रविजय उस योद्धाकी प्रवीणता और युद्ध-कौशल देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी प्रशसा की । अभी तक भी समुद्रविजयने छोटे भाई को न पहचाना और उसपर और अस्त्र चलाये, जिन्हे वसुदेवने फिर रोक दिया ।

बहुत देर तक युद्ध करनेके पश्चात् वसुदेवने अपना परिचय बडे भाईको करानेके लिए यह पत्र लिख कर वाणमें बांध कर भाईको भेजा

"हे महाराज ! मैं आपका सेवक छोटा भाई वसुदेव हूँ, जो छिपकर घरसे निकला था । अब सौ वर्षोंके पश्चात् आपके चरणोंमें आया हूँ और आपको नम्रतापूर्वक नमस्कार करता हूँ ।"

इस पत्रको पढते ही भ्रातृ-स्नेहसे उसका हृदय भर आया, उसने धनुष और वाण धरती पर डाल दिये। वह स्वय रथसे उतरकर भाईकी तरफ बढा। तव वसुदेव भी रथसे उतर कर दूरसे ही वडे भाईको प्रणाम करके उनके पाँव पडा। तव राजा समुद्रविजयने उसे उठाकर छातीसे लगाया। दोनो भाई छाती मिलाकर मिले और उनकी आँखोमे प्रेमाश्रु भर आये। फिर समुद्रविजयसे छोटे और वसुदेवसे वडे दूसरे अक्षोभ आदि आठो भाई वसुदेवसे मिले। इस भ्रातृमिलापको देखकर राजा जरासिंध आदि उपस्थित राजा और रोहिणीका पिता रूधिर, भाई हिरण्यनाभ और कुटुम्वीजन सभी प्रसन्न हुए। सबने रोहिणीके सौभाग्यकी प्रशसा की और उसे चिर सुखके आशीर्वाद दिये।

फिर शुभ तिथि और शुभ नक्षत्रमे वसुदेव और रोहिणीका विवाह कर दिया गया। दोनो पक्षोमे वडा हर्ष मनाया गया। राजा रूधिरके भावभीने आतिथ्यसत्कारके पश्चात् सभी राजा अपने-अपने स्थानको लौट गये। विद्याधर दधिमुख भी वसुदेवसे आज्ञा लेकर उसे प्रणाम कर अपने स्थान चला गया।

सब स्थानो पर वसुदेवके पराक्रम और शूरवीरताकी प्रशसा होने लगी।

वसुदेव नववधु रोहिणी को पाकर उसके प्रेममे इतना अनुरक्त हुआ कि वह अपनी पहली सभी पत्नियो को भूल गया।

वसुदेवके पूर्वजन्मके महातपके पुण्यका ही यह फल था कि उसे रोहिणी सी पत्नी, युद्धमे विजय तथा यश और सव भाई मिले।

बन्धु-बन्धु समागम

एक रात रानी रोहिणी ने चार स्वप्न देखे। (१) चन्द्रमा समान उज्ज्वल वर्णका मदोन्मत्त गर्जता हुआ गजेन्द्र, (२) पर्वत के समान ऊची लहरो वाला शब्द करता समुद्र, (३) सम्पूर्ण चन्द्रमा और चौथे मे कुन्दके पुष्प के समान सिंह अपने मुख में प्रवेश करता देखा। प्रात स्नानादिसे निवृत्त होकर वह कमलनयनी अपने पति वसुदेव के पास जाकर उन स्वप्नोका फल पूछने लगी। स्वप्नोका वर्णन सुनकर राजा वसुदेव ने उसे बताया, "हे प्रिये! तुम एक ऐसे महापुरुषको जन्म दोगी, जो गजेन्द्र के समान बडा, समुद्र के समान गम्भीर, पूर्ण चन्द्र के समान अनेक कलाओ का धारक, महाकातिवान और अद्वितीय महाधीर योद्धा और पृथ्वीपति होगा। रोहिणी-पतिके मुखसे उन प्रकार स्वप्नोका शुभ फल सुनकर अति हर्षित हो चन्द्र-रानी भी अधिक सुन्दर लग रही थी।

[illegible] नामक मुनिका जीव महा शुक्र स्वर्ग मे देव था। वह वहाँ से चलकर रोहिणीके गर्भमे आया। नौ महीने पूरे होने पर रानीने शुभ नक्षत्रमें [illegible] चन्द्रमाके सदृश बलभद्रको जन्म दिया। उनके जन्मपर वसुदेव और रोहिणीके परिवारमें बहुत हर्ष मनाया गया। [illegible] सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। उस बालक का नाम [illegible] रखा गया। वह बालक माता-पिता आदि सभी कुटुम्बीजनो [illegible] दिन [illegible] लगा।

[illegible] दिन [illegible] आदि [illegible] से मगध-सम्बन्धी राजा [illegible]। [illegible] भी वहीं उनके समीप था। तब

एक महा दिव्य मूर्ति विद्याधरी आकाशसे उतर कर वसुदेवके पास आकर उसे कहने लगी, "हे देव ! आपकी रानी वेगवती और मेरी पुत्री वालचन्द्रा आपके चरणारविंद का दर्शन चाहती है। वेगवती तो आपकी विवाहिता है ही, पर वालचन्द्रा अभी कुमारी है और वह विवाहकी आकाक्षामे बैठी है। इसलिए आप शीघ्र चलो और उससे प्रणय कर उसे सुखी करो। विद्याधरीकी वात सुनकर वसुदेवने वडे भाई समुद्रविजयकी तरफ देखा। वडे भाईने सब बात समझकर वसुदेवको शीघ्र जानेको कहा।

इधर वसुदेव विद्याधरीके साथ गगन वल्लभपुरके लिए चला, उधर समुद्रविजय आदि सव भाई सोर्यपुर चले गये। गगन वल्लभपुर जाकर वसुदेव वेगवतीसे मिला और उसने वालचन्द्रासे विवाह किया। नवीन वधु वालचन्द्रा और वेगवतीके साथ कुछ दिन सुखसे रहनेके पश्चात् वसुदेव उन दोनोके साथ सोर्यपुर जाने के लिए तैयार हुआ। वालचन्द्राके पिता काचनदष्ट्र और वेगवतीके भाई मानसवेग बहुत द्रव्य देकर वडे आदर सम्मानसे उन्हे विदा किया।

एनीपुत्रकी पूर्वजन्मकी माता नागकुमारीने रत्नोका देदीप्यमान विमान बनाया, जिसमे वसुदेव, वालचन्द्रा और वेगवती आदि जयपुर आकर विद्युद्वेग से मिले। वहासे वसुदेव अपनी पत्नी मदनवेगा को लेकर विमान मार्गसे गधसमृद्ध नगरमे गये। वहासे राजा गधारकी पुत्री प्रभावतीको साथ लिया। इसी प्रकार वसुदेवने नीलयशा, प्रयामा, प्रियगसुन्दरी, वन्धुमती, सोमश्री, रानी रत्नवती, चारुहासनी, अश्वसेना, पद्मावती, पत्नी कपिला और पुत्र कपिल, मित्रश्री, गवर्वसेना, विजय-सेना और उसके पुत्र अक्रूरदृष्टि, रानियोको उनके नगरोसे लेकर राजा वसुदेव कुल्लपुर नगर आया। वहासे पद्मश्री, अवन्ती सुन्दरी, सूरसेना और अपने पुत्र जरा और जीवयशा तथा दूसरी सभी रानियोको उनके स्थानोसे लेकर शीघ्रगामी विमानमे वैठकर सब सूर्यपुर नगर लोटे। सूर्यपुर नगरकी प्रभा सूर्यके

समान देदीप्यमान थी और वह शहर गीत, नृत्य और वादित्रोकी मधुर ध्वनिमे रागरग मे निमग्न मालूम होता था। वहां ललित-कलाए खूब उन्नति पर थी।

वसुदेव तो विमानमे सभी रानियों तथा पुत्रो सहित नगरके बाहर ठहरा। इधर जो धनवती देवी इनको विमानमे बिठाकर लाई थी, वह राजा समुद्रविजयको वसुदेव आदिके आगमनका समाचार कहने और बधाई देने नगर मे गयी। पत्नियो सहित छोटे भाई के आनेका समाचार सुनकर राजा समुद्रविजय और उसके आठो भाई बडे प्रसन्न हुए और उनके आगमनकी खुशीमे समस्त नगरको सजवाया। फिर राजा समुद्रविजय, उसके सभी भाई और नगरके छोटे-बडे, नागरिकगण तथा विशिष्ट स्त्री-पुरुष वसुदेव आदिके स्वागतके लिए नगर-के बाहर गये। वसुदेवने विमानसे उतर कर बडे भाई समुद्रविजय तथा दूसरे सभी भाइयो को प्रणाम किया। वसुदेवकी सभी रानियोने अपनी जिठानियोके चरणस्पर्श करके प्रणाम किया। जिठानियोने भी देवरानियोंको छातीसे लगाया और अनेक आशीर्वाद दिये, कि वे सभी सदा सुहागिन हो, पुत्रवती हो और चिर सुखी हो। सबने परस्परमे यथायोग्य सम्मान किया। कितना प्रेममय मिलन था! वह सबके हृदय मारे हर्षके प्रफुल्लित हो रहे थे।

नगरमे लौटकर वसुदेव भाइयोके साथ अति सुखसे रहने लगा। देवी धनवती समुद्रविजय और वसुदेवसे विदा होकर अपने स्थान को लौट गयी।

विद्या और कलाए सिखानी आरम्भ की। एक वार वसुदेव धनुर्विद्यामे प्रवीण कसादि अपने शिष्योको जरासिधको दिखाने के लिए राजगृह नगर ले गया। जरासिधकी आज्ञासे घोषणा हुई "सिहपुर नगरका महा उद्धत तथा अति प्रवल राजा सिंहरथ सिहोके रथ पर सवार फिरता है। जो कोई वीर पुरुष उसे जीवित पकड कर राजाके सामने पेश करेगा, राजा उसे महा सामन्त मानेगा, मानधनसे पुरस्कृत करेगा, रानी कालिंदसेनासे उत्पन्न अपनी पुत्री जीवयशा उसे विवाहेगा और जो देश वह मागेगा, राजा उसको वही देश देगा।"

जब वसुदेवने यह घोषणा सुनी, तब उसने अपने सब शिष्य राजकुमारोको इस घोषणाका विस्तृत व्योरा लानेकी आज्ञा की। व्योरा मिलते ही वसुदेव सिह रथ पर सवार होकर राजा सिंहरथसे लडने गया। वसुदेवके रथके सिंह तो विद्यामय अर्थात् जादूके सिंह थे और राजासिहरथके रथके सिंह पशु थे। दोनौमे भयकर युद्ध हुआ, पर अन्तमे राजा वसुदेवकी आज्ञासे उसके शिष्य कसने राजा सिंहरथको पकडकर वाध लिया। वसुदेवने प्रसन्न होकर उससे इस वीरता-कामके पूर्ण बदले कोई वर मागनेको कहा। राजकुमार कसने अपने वरको भविष्यमे लेने का वचन मागा। वसुदेवने उसकी बात मान ली।

कुछ दिनो के पश्चात् वसुदेवने सिहरथको राजा जरासिंघके सामने जीवित वधा हुआ पेश किया। जरासिंध सिंहरथ को वधा देखकर वसुदेव से वहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्री राजकुमारी जीवयशा को विवाहने के लिए कहा। इस पर वसुदेवने कहा कि उद्धत राजा सिंहरथ को पकडने का श्रेय कसको ही है। इसलिए उससे ही जीवयशाका विवाह किया जाय।

तव जरासिंधने कसको वुला कर उसका कुल तथा परिचय आदि पूछा। कसने कहा, "हे राजन्! कोसम्वी नगरी मे मद्य-

विक्रेता मजोदरी मेरी माता है।" यह सुनकर जरासिंध चिंतित होकर सोचने लगा, कि देखनेमे तो यह राजपुत्र सदृश है, यह कलाली का पुत्र नही हो सकता। राजाने तुरन्त कोसम्बीसे मंजोदरीको बुलवाया। वह एक मुद्रा और मजूपा (वक्स) लेकर राज दरबारमे उपस्थित हुई।

राजाके पूछनेपर मजोदरीने बताना आरम्भ किया, "हे राजन्! हमने यमुनाके प्रवाहमे यह मजूपा पायी थी। उसमेसे यह वालक निकला। दया करके मैने इसे पाल-पोस कर वडा किया। हर रोज यह वालक संकडो उलहने मेरे पास लाता, पर मैं उनसे न डरी। यह स्वभावसे निर्दयी ग्रोर शरारती था ग्रोर छोटे वालकोंके सिर ग्रापसमे भिडा देता था। इतना ही नही, यह वेश्याओंकी चोटिया पकड कर खीचता था और उन्हे परेशान करता था। तव लोगोकी शिकायतो पर मैने इसे घरसे निकाल दिया। फिर यह भिक्षाके लिए विदेश चला गया और किसी से शस्त्र-विद्या सीख कर अव शस्त्र-विद्यामे निपुण वन गया है। इसकी माता यह मजूपा है, मै नही हूँ। इस युवक मे जो गुण-दोष है, उनके लिए मै उत्तरदायी नही, यह मजूपा या यह स्वय है।" यह कहकर मजोदरीने वह मजूपा राजा जरासिध को दिखायी।

राजा जरासिधने मजूपा देखी, तो उसमे राजा उग्रसेनकी मुद्रिका पाई। राजाने मुद्रका पढी। उसमे लिखा था—"यह राजा उग्रसेन ग्रौर रानी पद्मावतीका पुत्र जव गर्भमे ग्राया, तभी माता-पिताके लिए भारी पडा। यह ग्रशुभ नक्षत्रमे उत्पन्न हुआ। इसलिए इसको मजूपामे वन्द करके यमुना नदीमे वहाया।"

यह पढ कर राजा जरासिधने जान लिया कि यह तो मेरी वहन पद्मावतीका पुत्र है, इसलिए मेरा भानजा है। इससे राजा ग्रति हर्षित हुग्रा ग्रौर उसने अपनी पुत्री जीवयशा को कसके साथ व्याह दिया।

कसने सोचा कि मेरे जन्म लेते ही मेरे पिता राजा उग्रसेनने मुझे नदीमे बहाया, इसलिए वह मेरा पिता नही, शत्रु है। उसके मनमे पितासे बदला लेनेकी भावना पैदा हो गयी। कसने जरासिधसे मथुराका राज मागा। राजाने उसको मथुराका राज दे दिया। तब कसने एक बडी सेना लेकर जीवयशा सहित मथुरापर चढाई की और अपने पिता राजा उग्रसेनको युद्धमे पराजित करके बाध कर मथुरापुरीके द्वारमे रखा। फिर आप स्वय जीवयशा सहित मथुरामे सुखसे राज करने लगा।

कसने मथुराका राज पानेमे वसुदेवकी कृपा समझ कर उसके उपकारसे उऋण होने और प्रत्युपकारके विचारसे बडी भक्ति तथा आदर-सम्मानसे वसुदेवको मथुरा बुलाया और उनसे अपनी वहन देवकी परणाई। कंसने राजा वसुदेवको वडे स्नेहसे मथुरामे ही कुछ समय अतिथि रूपमें रखा।

एक दिन कसके बडे भाई अतिमुक्तक मुनि कसके घर आहारके लिए आये। रानी जीवयशा उन्हे नमस्कार करके चचलभावसे हसने लगी। इतना ही नही, उसने देवकी के रजस्वलापनेके गदे वस्त्र मुनिजीके सामने डालते हुए कहा, "ये आपकी वहन देवकीके आनन्द वस्त्र है। इन्हे देखिए।" इससे बढ कर एक मुनि की अविवय और अपमान क्या हो सकता था ?

मुनि महाराज ससार स्थितिके जाननेवाले थे। जीवयशाके ये वचन सुनकर वचनगुप्तिको छोड कर कहनेलगे, "यह तेरी वडी मूर्खता है, जो शोकके स्थानपर आनन्द मना रही है। इस देवकीके गर्भ से ऐसा पुत्र पैदा होगा, जो तेरे पति कस और पिता जरासिंध दोनोका घातक होगा।"

मुनिकी भविष्यवाणी सुनकर जीवयशा आखोमें आसू भरकर पतिसे मुनिके वचन कहने लगी। रानीसे ये वचन सुनकर राजा

कस वडा चितित और शकावान हुआ। उसने अपने जीजा राजा वसुदेवके पास जाकर अपना वचन मागा और कहा कि स्वामी मुझे यह वर दो कि देवकीका जापा उसके घर हो। वसुदेवको तो इस वृत्तान्त का कुछ पता था नही, इसलिए उसने अपनी अनुमति यह कहकर दे दी कि यह तो उचित ही है, कि वहन का जापा भाईके घर हो। परन्तु जब अतिमुक्तक मुनिके वचनका पूरा वृत्तान्त देवकी को मालूम हुआ, तव वह शोकातुर होकर पति वसुदेवसे रोकर कहने लगी, "हे प्रभो ! आपके वहुत पुत्र है, पर यदि मेरा पहला पुत्र ही मारा गया तो मै क्या करूगी ?"

राजा वसुदेव और उसकी रानी देवकी दोनो सहकार वनमे चारण ऋद्धिके धारक और अवधिज्ञानी मुनि अतिमुक्तकके पास गये और उन्हे नमस्कार करके उनके समीप बैठ गये। मुनिने उन्हे धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया।

राजा ने मुनि से पूछा, "हे महाराज, यह कस अपने पिताका वैरी क्यो हुआ ? क्या इस कारणका सम्बन्ध इसके इसी जन्म से है या पूर्वजन्मसे और इसने ऐसा क्या तप किया जिसके फलस्वरूप इसने यह राज-विभूति पायी ? और मेरा पुत्र इस का घातक कैसे होगा ?"

महापुरुषोंका स्वभाव जीवोके सन्देह दूर करना है। मुनि अतिमुक्तक वसुदेवका सशय दूर करने के लिए कहने लगे, "हे देवोके प्यारे परम सज्जन ! सुन। इसी मथुरा नगरमे उग्रसेनके राजमे इस कसका जीव पहले भवमे वशिष्ट नामका तापस था। वह पचाग्नि तपमे प्रवीण था। एक पाव पर खडा रहता था और अपनी भुजाको ऊपर उठाये रहता था। यू यह तापस ज्ञानसे रहित था, इसने जटाए वढा रखी थी और यमुनाके तटपर तप करता था। मथुरा नगर की पनिहारिया यमुनासे पानी लेने आया करती थी। उनमे जिनदास सेठकी दासी प्रयग तिलका भी जल भरने गयी।

दूसरी सभी पनिहारियोने उस दासीको तापस वशिष्ठको प्रणाम करनेको कहा, परन्तु दासीने कहा, "इस पर मेरी भक्ति नही, मैं इसको कैसे प्रणाम करू ?" तब इसकी साथिन पनिहारियो ने हठ करके उस दासीको तापसके पावमे डाल दिया। इस पर उस दासीने कहा, "मैं तो धीवरके पाव पडी हू।" वशिष्ठ तापसने दासीके इन वचनो को अपना अपमान समझा। उसने राजाके पास जाकर पुकार की, कि जिनदास सेठने मेरी निन्दा की है। राजाने जिनदास सेठको दरबारमे बुलाकर पूछा कि उसने तापसको क्या दुःख दिया है।

सेठ जिनदासने राजाको उत्तर दिया, "हे राजन्! मै इस तापसको जानता ही नही हूँ, फिर इसे नाराज करनेका कोई प्रश्न नही होता।" तब तपस्वी वशिष्ठने दासीका नाम लिया। इस पर राजाने दासीको बुलवाकर कहा, "हे पापिनी! तूने तपस्वीकी निंदा क्यो की और इन्हे नमस्कार क्यो नही किया ?" दासी प्रियगतिलकाने उत्तर दिया, "हे महाराज! यह तपस्वी नही, धीवर समान कुबुद्धि है। इसकी जटामे अनेक नन्ही-नन्ही मछलियाँ भरी हुई है।" जब राजाने तपस्वीकी जटाएँ खुलवायी उनमे से अनेक छोटी-छोटी मछलियाँ निकली। तपस्वी बडा लज्जित हुआ। लोगोने उसका बहुत उपहास किया और कहा कि झूठा ढोगी तपस्वी है।

तब वशिष्ठ तपस्वी कुपित होकर मथुरासे वाराणसी गया और वहाँ गगाके किनारे तप करने लगा। स्वामी वीरभद्र पाच सौ मुनियो सहित वही गगातट पर पधारे। तब एक पुरुषने अनजानेमे तपस्वीकी प्रशसा की कि यह वशिष्ठ नामक तपस्वी घोर तप करता है। मुनिने उस पुरुषको तपस्वी की झूठी प्रशसा करनेसे मना किया कि अज्ञान तप बडाईके योग्य नही है।

मुनिकी यह बात सुन कर तपस्वी वशिठने पूछा, मैं अज्ञानी कैसे हूँ ?" तब मुनिने उससे कहा, "तुम जीवोको पीड़ा देते हो,

इसलिए अज्ञानी हो। पचाग्नि तपमे छोटे जीवोकी हिसा होती है। इससे सयम नही होता। प्राणियोकी दया ही सयम है। तुम संसार से विरक्त हो गये, परन्तु मिथ्यादर्शन, ज्ञान और चरित्रके कारण अभिमानी हो। और जहाँ अभिमान है, वहाँ ज्ञान नही होता। ज्ञान विना सयम कहाँ ? प्राण-संयम विना तेरा तप काया-क्लेश है, शरीरको कष्ट देना है। तुम्हारा सयम-रहित तप मुक्तिके लिए कैसे हो सकता है ? एक जैन धर्ममे ही तप, सयम, ज्ञान, दर्शन और चरित्र है।" स्वामी वीरभद्रने आगे कहा, "हे तपस्वी ! तेरा पिता मरकर सांप हुआ। वह ईधनमे जल रहा है।"

मुनिकी उपर्युक्त वात सुनकर तपस्वीने जव कुल्हाडेसे काठको फाडा, तव उसमे साप दिखाई दिया। तव उस वशिष्ठ तपस्वीने अपने तपको अज्ञान-रूप जाना। वह समझा कि उसका पिता भी तप करके स्वर्ग गया है, उसे सापकी योनिमे देखकर वह दुखी हुआ।

जैन धर्मके ज्ञानमई रूपको समझकर तव उस तपस्वीने वीर-भद्र आचार्यसे मुनि दीक्षा ली। वह दूसरे मुनियो के साथ तप करने लगा, पर उसे भोजन मिलनेमे वाधा पड जाती। आचार्य वीरभद्र ने तव वशिष्ठ मुनिको शास्त्र-पठनके लिए वारी-वारीसे मुनि शिवगुप्त और सुमति मुनिको सौंपा। यतिधर्मको जाननेवाला वह वशिष्ठ मुनि जगमे प्रसिद्ध हो गया और अकेला भ्रमण करता हुआ मथुरा आया।

मथुरामे राजा-प्रजा सव मुनि वशिष्ठको गुरु जान कर पूजने लगे। एक दिन वह मुनि आतापन योग धारण करके पर्वतके शिखर पर वैठा था। सात देवागनाएँ उसके पास आकर कहने लगी, "हे देव ! हमको आपकी जो आज्ञा हो, वही हम करेगी।" मुनिने उत्तर दिया, "इस समय मुझे कोई आवश्यकता नही है। तुम अपने-अपने स्थान जाओ।" वे सातो देवागनाएँ अपने-अपने स्थानको चली गयी।

फिर वशिष्ठ मुनिने एक माहका उपवास किया। इस अति निस्पृही महा तपस्वीको सभी लोग उपवासके पश्चात् आहार देना चाहते थे। मथुराके राजा उग्रसेनने लोगोको मना किया और कहा कि मुनिको पारणा वह स्वय ही देगा। इसलिए और किसीने तो मुनिको आहार दिया नही और राजा उग्रसेन प्रमादवश तीन बार आहार देना भूल गया। एक बार तो पारणेके समय राजा जरासिध-का दूत आ गया था। दूसरी बार अग्निके उपद्रवसे विस्मरण हो गया और तीसरी बार हाथीके उपद्रवसे भूल हो गयी। परिणाम-स्वरूप मुनि वशिष्ठ नगरमे भ्रमण करके बिना आहार मिले खेदसे पीडित होकर बनको लौट रहा था। उपवाससे शरीर अति शिथिल होनेके कारण मुनिजी नगरके द्वार पर कुछ क्षण खडे रहे।

उस समय किसीने कहा, "राजाने वडा अन्याय किया कि जो न आप मुनिको आहार दिया और न किसी दूसरेको देने दिया।" ये वचन सुनकर मुनिको वड़ा रोष हुआ और उसने उन सातो देवागनाओ-को याद किया। वे तुरन्त आ खडी हुई। मुनिने उन्हे आदेश दिया कि "अगले जन्ममे तुम मेरा काम करना।" ऐसा कह कर मुनि नगरसे बाहर चला गया।

मुनिने राजा उग्रसेनको क्लेश देनेका निश्चय किया, कि मै इसका पुत्र होकर इसे पीडा दूंगा।

मुनि प्राण तजकर राजा उग्रसेनकी रानी प्रभावतीके गर्भमे आया। जिस दिनसे वह गर्भमे आया, उसी दिनसे माता-पिताको क्लेशकारी हुआ। एक दिन राजाने रानीका क्षीण शरीर देखकर पूछा, "आपको क्या दोहला उपजा है?" रानीने उत्तर दिया, "हे नाथ! इस गर्भके कारण मुझे जो दोहला हुआ है, न वह समझमे आता है और न कहने योग्य है।" राजाके आग्रह पर रानीने आखोमे आसू भरकर गद्गद् वाणीसे कहना आरम्भ किया, "हे प्रभो! इस

गर्भके दोषसे मुझ पापिनको दोहला हुआ है, कि आपका पेट चीरकर आपका रक्तपान करूँ।" तब राजाने अपने शरीरके समान पुतला बनवाकर उसमे रस भरकर रानीकी इच्छा पूरी की। तब नवें महीनेसे रानीने एक पुत्रको अशुभ नक्षत्रमे जन्म दिया, उस बालकका टेढा मुख था और भृकुटी चढी हुई थी। ज्योतिषियोने बालकको माता-पिताके लिए हानिकर बताया। राजाने उस बालकको कांसेकी मजूषामे बन्द करके यमुनामे बहा दिया। उस मजूषाको कोसाबी नगरीमे मजोदरी मद्यकारनीने पकडा और उसमे जो बच्चा निकला, उसका नाम कस रखा। इससे आगे की बात आप जानते ही है। उस दुष्टने अपने निश्चयानुसार पिताको पकड कर बन्द रखा है। अब तेरा पुत्र उसके पिता उग्रसेनको छुडायेगा।"

यह सब कथा अतिमुक्तक स्वामीने राजा वसुदेवसे कही। इसके पश्चात् मुनि राजा वसुदेवको उसके पुत्रके विषयमें कहने लगे, "इस देवीके सातवाँ पुत्र नवाँ नारायण होगा। शख, चक्र, गदा और खड्ग धारक तेरा यह पुत्र कंसादिक शत्रुओंको मार कर तीन खण्ड का स्वामी होगा। इससे बडे छह पुत्र होगे। उनकी मृत्यु ही नही। उसी जन्मसे मोक्षगामी होगे। हे राजन्! आप चिन्ता न करे। सात पुत्र देवकीसे होगे और जो एक पुत्र रोहिणीसे होगा, वह बलभद्र होगा।"

इतना कहकर स्वामी अतिमुक्तक राजा वसुदेवसे इन सब पुत्रो-के पूर्व जन्मोकी बात कहने लगे,

"इसी मथुरा नगरमे राजा सूरसेन था। उसके राजमे भानु नाम-का एक सेठ बारह करोड रुपयेका स्वामी था। उसकी पत्नीका नाम यमुना था। उस सेठके सात पुत्र (१) सुभानु, (२) भानुमित्र, (३) भानुसेन, (४) सूर, (५) सूरदेव, (६) सूरदत्त और (७) सूर-सेन थे। इनकी पत्नियोके नाम (१) कालिन्द्री, (२) तिलका, (३)

कान्ता, (४) श्री कान्ता, (५) सुन्दरी, (६) द्विती और (७) चन्द्रकान्ता थे। कुछ समयके पश्चात् सेठ भानुने अभयनन्दि गुरुसे और सेठानी यमुनाने साध्वी जिनदत्तासे दीक्षा ले ली।

"माता-पिताके त्यागी बन जानेके पश्चात् ये सातो भाई जुए और वेश्यागमनके दुर्व्यसनोमे फँस गये और सब धन नष्ट कर दिया। फिर वे चोरी करनेके लिए उज्जयनी गये। रातको छहो बडे भाई, सातवे छोटे भाई सूरसेनको महाकाल मसानभूमिमे छोडकर नगरमे गये। जाते समय वे छोटे भाईसे कह गये कि यदि वे मारे जायँ या पकडे जायँ तो वह वहाँसे भाग जाय। जो धन वे चोरी करके लायेंगे, वह बराबरका बाँटकर उसका भाग भी उसे देंगे। यह कहकर वे चोरी करने चले गये।

"उस समय उज्जैनका राजा वृषभध्वज था। उसकी रानी कमला और एक पुत्र दृष्टिमुष्टि बडा योद्धा था। राजकुमारकी पत्नीका नाम वप्रश्री था, उनके पुत्रका नाम वज्रमुष्टि था। इस राजकुमार वज्रमुष्टिका विवाह राजा विमलचन्द्र और रानी विमलाकी राजकुमारी मगीसे हुआ था। यह मगी बहू अपने पति वज्रमुष्टि की तो बडी प्रिया थी पर सासकी सेवामे सुस्त थी। इससे उसकी सास उस बहूसे रुष्ट रहने लगी और वह कोई ऐसा उपाय सोचने लगी, जिससे किसी प्रकार उसके पुत्रका मन उससे फिर जाय या वह मर जाय।

"एक दिन वज्रमुष्टि वसन्तोत्सवमे वनमे घूमने चला गया और मगीकी सासने घडेमे एक साँप रखवाया और बहू मगीसे कपट करके कहने लगी, घडेमे उसके लिए मोतियोकी माला है, उसे निकालकर पहन ले। ज्योही मगीने घडेमे हाथ डाला, साँपने उसे डस लिया। मगी साँपके विषसे मूर्छित हो गयी। सासने बहूको नौकरोसे महाकाल मसानमे डलवा दिया।

"रातको जब वज्रमुष्टि घर लौटा, तब वह सब वृत्तान्त सुनकर अपनी प्रिया पत्नी मगीको बड़े स्नेहवश ढूँढने महाकाल मसानमे गया। उसके एक हाथमे खड्ग और दूसरे हाथमे दीपक था। राजकुमार वज्रमुष्टिने मसानमे वरधर्म मुनिको योगासन लगाये देखा। राजकुमार उन्हे तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करके कहने लगा, "हे पूज्यपाद! यदि मैं अपनी स्त्रीको पाऊँगा, तो मैं सहस्रदल कमल से आपकी पूजा करूँगा।" यह कहकर वज्रमुष्टि अपनी स्त्रीको ढूँढने गया और उसे पाकर मुनि महाराजके पास ले गया। मुनिके चरणारविन्दके प्रसादसे मगी निर्विष हो गयी। वज्रमुष्टि मगीको मुनि-के निकट छोडकर और उसके लौटने तक वही ठहरनेको कहकर स्वय सुदर्शन नामक सरोवरसे कमल लेने चला गया।"

मुनि अतिमुक्तकने राजा वसुदेवसे आगे कहा, "इतनेमे मसानमे एक घटना और हुई।" राजा वसुदेवने आश्चर्यसे पूछा, "हे प्रभो! वह क्या घटना थी?"

मुनि अतिमुक्तकने आगे कहना आरम्भ किया, "वज्रमुष्टिके सरोवर पर जानेके पश्चात् सातवाँ भाई सूरसेन वहाँ मसानमे आया। उसने वहाँ वज्रमुष्टिकी स्त्रीको देखा और उसे रानीसे स्नेह हो गया। तब उसने अपने मनमे सोचा कि इस नारीके पतिकी इसके प्रति कितनी प्रीति है, यह तो शायद मैं न देख सकूँ, पर इस नारी-की अपने पतिसे कैसी प्रीति है, इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। तब उसने उसे अपना महा सुन्दर रूप दिखाया और अपने मीठे वचन सुनाये। वह पापिनी मगी उसका रूप देखकर और मीठे वचन सुन-कर कामाग्निसे बेचैन हो गयी। मगीने उसको कहा, "हे देव! आप मुझे अंगीकार करो।" सूरसेनने उस स्त्रीसे कहा, "तेरे पतिके जीते जी मैं तुझे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? तेरा पति महा बलवान योद्धा है। उससे मैं डरता हूँ।" तब उस स्त्रीने कहा, "हे नाथ! आप भय मत करो। मैं उसे खड्गसे मार दूँगी।" सूरसेनने उससे

कहा, "यदि तू उसे मार देगी तो मैं तुझे अगीकार कर लूँगा।" ऐसा कहकर सूरसेन उस स्त्रीके कामको देखनेके लिए छिप कर बैठ गया।

राजा वसुदेवने मुनिसे पूछा, "तब उस मगीने क्या किया ?" मुनि अतिमुक्तकने कहा, "हे राजन्! जब व्यक्ति पापके मार्ग पर अग्रसर हो जाता है, तब वह कितना आगे चल सकता है, इसकी कोई सीमा नही। जब वज्रमुष्टि लौटकर मुनिको कमल चढा कर नमस्कार करने लगा, तब मगीने उसे मारनेके लिए खड्गसे वार किया, पर सूरसेनने उसके हाथको पकडकर वज्रमुष्टिको बचा लिया। इस नारीके चरित्रको देखकर सूरसेन ससारसे विरक्त हो गया और मगी अपने दोपको छिपानेके लिए मूर्छा खाकर धरती पर गिर पडी। तब उसके पति वज्रमुष्टिने उससे पूछा, "हे प्रिये! तू क्यो डरी ? यहाँ तो भयका कोई कारण नही है।" वज्रमुष्टि इस प्रकार पत्नीका धैर्य बँधाकर और मुनि वरधर्मको नमस्कार करके मगी-सहित घर लौटा। कुछ देर पश्चात् सूरसेनके छहो भाई चोरीका बहुत-सा धन लेकर वहाँ आये। उन्होने उस धनके सात बराबर हिस्से करके सूरसेनसे अपना भाग लेनेको कहा। तब सूरसेनने अपना भाग नही लिया और भाइयोसे कहा कि यह ससारी जीव स्त्रियोके लिए धन कमाता है, पर स्त्रियोकी चेष्टा और काम तो मैने अति निकटसे देख लिये। उसके भाइयोके यह पूछने पर कि उसने क्या देखा, सूरसेनने वज्रमुष्टि और मगीका रातका सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस वृत्तान्तको सुन कर उन्हे भी ससारसे विरक्ति हो गयी और उन्होने वरधर्म मुनिसे जैनमुनि दीक्षा लेली और चोरीके धनको अपनी स्त्रियोके पास भेज दिया।

"कुछ दिनोके पश्चात् ये मुनि गुरु वरधर्मके साथ उज्जैन आये। वज्रमुष्टि राजकुमारने इन्हे देखा। उसने इनसे अपनी स्त्री मंगीका सब वृत्तान्त सुनकर और इनके त्याग तथा वैराग्यसे प्रभावित हो मुनि बन

गया। उन सातो भाइयोकी स्त्रियाँ भी अपनी सासकी गुरुआनी जिनदत्ता आर्यिकासे दीक्षा लेकर साध्वी बन गयी। ये भी उज्जैनमें पधारी। तब मगी भी इनका वृत्तान्त सुनकर ससारको निद्य समझ कर अपने दुश्चरित्रकी निदा करके गृह त्याग कर आर्यिका बन गयी।

"ये सब महा तप करके प्रथम स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे चल कर भरत क्षेत्रमे विजयार्द्ध गिरिकी दक्षिण श्रेणीमे नित्यलोक नगरमे चित्रकूल राजाकी मनोहरी रानीके उदरसे सात भाइयोमे बडे भाई सुभानुका जीव चित्रागद पुत्र हुआ और छह भाई इन ही माता-पिताके तीन युगल पुत्र हुए। उनके नाम गरुडकान्त, सेन, गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल और हेमचूल थे। ये सातो ही राजकुमार अति सुन्दर और समस्त विद्याओके पारगामी थे। पर एक घटना देखकर जवानीमे इन सातो भाइयोको ससारसे विरक्ति हो गयी।"

राजा वसुदेवने मुनि अतिमुक्तकसे वह घटना पूछी। मुनि श्रीने वह घटना यो बतायी, "मेघपुरके राजा धनजय और रानी सर्वश्रीकी पुत्री धनश्री राजकुमारी थी। वह अपने रूप, यौवन और गुणोके कारण जगतमे प्रसिद्ध हो गयी। उसका स्वयम्वर रचाया गया, जिसमे सभी विद्याधरोके पुत्र धनश्रीके द्वारा चुने जानेकी इच्छासे सम्मिलित हुए। पर धनश्रीने मामाके पुत्र हरवाहनके गलेमे वरमाला डाली। तब सभी उपस्थित राजा क्रोधमे भर गये और कहने लगे कि उनको स्वयम्वरमे व्यर्थ निमत्रित करके अपमानित किया गया क्योकि राजा धनजयकी इच्छा तो राजकुमारी हरवाहनको देने की थी। फिर वे क्रुद्ध राजा राजकुमारीको पानेके लिए आपसमे लडने लगे। युद्धमे अनेक सामन्तोको मौतके घाट उतारा गया। युद्धमे इस दृश्य तथा इसके कारणको देखकर चित्रकूलके सातों पुत्रोने इन विषयो को पापका कारण समझ कर भूतानन्द केवली से मुनि व्रत लिये।

"सातो भाई घोर तप करके स्वर्गमे गये। स्वर्गसे चल कर चित्रांगद नामका बड़ा भाई हस्तिनापुरमे सेठ स्वेतवाहन और उसकी

पत्नी बधुमतीके यहाँ पुत्र हुआ, जिसका नाम शख रखा गया । और छोटे छह भाई इसी नगरमे गगदेव राजा और उसकी रानी नन्दयशा के तीन युगल पुत्र हुए । इनके नाम (१) गग, (२) गगदत्त, (३) गगरक्षक, (४) नन्द, (५) सुनन्द और (६) नन्दिसेन थे ।

"इसके पश्चात् रानी नन्दयशाके चौथे गर्भमे सातवाँ पुत्र आया वह आगामी जन्ममे कृष्ण होगा । यह गर्भस्थ बालक रानी नन्दयशा का पूर्वजन्मका विरोधी है । इसलिए इसके जन्म लेते ही, रानी नन्दयशाने इसको तज दिया । उस नवजात त्यक्त शिशुको रेवती धायने पाला । सब उसको निर्नामिक—विना नामका कहने लगे । बडा होने पर निर्नामिक और सेठके पुत्र शखमे स्नेह बढ गया । भविष्यमे वह निर्नामिक बलभद्र होने वाला था । और शख नारायण होने वाला था ।

"एक दिन निर्नामिक और शख वनमे गये । जनता भी वहाँ गयी हुई थी और निर्नामिकके छहो वडे भाई वहाँ भोजन कर रहे थे । शख द्वारा निर्नामिकका परिचय भाइयोसे करानेपर उन्होने उसे भी भोजनमे सम्मिलित होनेको कहा । परन्तु नन्दयशाने उसे देखते ही क्रोधसे लात मारी । निर्नामिक और शख दोनोको नन्दयशाके इस दुर्व्यवहारसे बडा दु ख हुआ ।"

वसुदेवने अतिमुक्तक स्वामीसे कहा, "महाराज यह वहुत जरूरी बात थी । फिर क्या हुआ ?"

स्वामी अतिमुक्तक आगे कहने लगे, "बात तो नि सन्देह बुरी थो । फिर निर्नामिक और शख द्रुमषेण अवधिज्ञानी मुनिसे एकान्तमे निर्नामिकके पूर्व जन्मका हाल पूछने लगे । मुनि द्रुमषेणने उन्हे वताया, "गिरनार नगरमे चित्ररथ महा गुणवान राजा और उसकी कनकमालिनी रानी रहते थे । परन्तु राजा कुबुद्धियो की कुसगतिसे मासाहारी वन गया । उसका अमृतरसायन रसोइया मास आदि भोजन बनानेमे बड़ा प्रवीण था । राजाने उससे प्रसन्न होकर उसे दस गाँव पुरस्कारमे दिये ।

"एक दिन राजा चित्ररथने सुधर्म मुनिसे मासभक्षणके दोषोपर उपदेश सुनकर अपने आपको बहुत धिक्कारा। वह राजा राजकुमार मेघरथको राजपाट सौंपकर तीन सौ राजाओ सहित मुनि हो गया और मेघरथने श्रावकके व्रत लिये। नया राजा अमृतरसायन रसोइये-पर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसके पास एक गाँव छोडकर शेप सब गाँव छीन लिये। यह रसोइया सुधर्म मुनिसे द्वेष करने लगा, क्योकि उसके विचारमे इस मुनिने उसकी आजीविका छिनवायी थी। उस रसोइयेने एक श्रावक होनेका ढोग रचा और मुनि सुधर्मको विषके समान कड़ुवी तुम्बीका आहार दिया। इससे मुनि महाराज की मृत्यु हो गयी और वे अहिमिन्द्र देव हुए और रसोइया मरकर तीसरे नरकमे गया। वहाँ बहुत दुःख भोगकर वह वनस्पति योनिमे गया और फिर उस रसोइयेका जीव मलय देशके पलास ग्राममे यज्ञदत्तकी यक्षला स्त्रीके गर्भसे यक्षलिक पुत्र हुआ। उसी यज्ञदत्तका दूसरा पुत्र यक्षस्थावर हुआ।

"एक दिन ये दोनो भाई यक्षलिक और यक्षस्थावर गाडी भरकर जा रहे थे। मार्गमे एक सर्पनी आयी। छोटे भाईके बहुत मना करने पर भी बड़े भाईने गाडी सर्पनीके ऊपरसे चलायी। इससे सर्पनीका फन टूट गया। वह मर कर पाप कर्मोंकी कमीके कारण मनुष्य गतिमे पैदा हुई।

"उस सर्पनीका जीव श्वेताम्बिका पुरीमे वासन राजाकी वसुन्दरी रानीसे नन्दयशा पुत्री हुई। बडी होने पर नन्दयशाका विवाह राजा गंगदेवसे हुआ। इधर कुछ समय पश्चात् यक्षलिक मरकर नन्दयशा के गर्भसे निर्नामिक नामका पुत्र हुआ। पूर्व जन्मके विरोध तथा वैरके कारण नन्दयशा अपने ही पुत्र निर्नामिकसे द्वेष करने लगी। यह निर्नामिक उसी रसोइये अमृतरसायनका जीव है। मुनि-हत्याके पाप-कर्मोंके योगसे इसने कुगतियोमे महा दुःख भोगे है।"

यह कथा मुनि द्रुमषेणने निर्नामिक और उसके मित्र शख, राजा गगदेव आदिको सुनायी। ससारके जीवोके इस पापपूर्ण विचित्र

व्यवहार और माँको अपने पुत्रसे द्वेषकी कथा सुन कर राजा अपने देवनन्द राजकुमारको राज देकर दो सौ नृपो सहित मुनि हो गया। राजाके छहो बडे बेटे, छोटा बेटा निर्नामिक और सेठका पुत्र शख भी ससारसे विरक्त होकर मुनि हो गये और तप करने लगे।

"रानी नन्दयशा, रेवती धाय और बन्धुमती सेठानी इन तीनो ने सुव्रता आर्यिका से व्रत लिये।

"निर्नामिक मुनिने कठोर तप करके नारायण पदका कर्मबन्ध बाधा और ये सब देवलोक चले गये। रेवती धायका जीव भद्रलपुर मे सुदृष्टि सेठकी अलका स्त्री हुई। रानी नन्दयशाका जीव देवकी हुई। गग आदि इस जन्ममे इस देवकीके पुत्र होगे और इसी जन्मसे मोक्षगामी होगे। अलका सेठानीके यहाँ तीन युगल मृतक पुत्र होगे। इन्द्रकी आज्ञासे देव सेठानीके तीन युगल मृतक पुत्रोको यहाँ लायेंगे और तेरे पुत्र भद्रलपुरमे सुदृष्टि सेठके घर अलका सेठानीके नवयौवन युक्त पुत्र होगे।"

यह कथा अतिमुक्तक स्वामी वसुदेवको सुना रहे थे। स्वामीजी ने राजासे कहा, "तेरे छहो पुत्रोके नाम (१) नृपदत्त, (२) देवपाल, (३) अनिकदत्त, (४) अनिकपाल, (५) शत्रुघ्न और (६) यतिशत्रु होगे। ये छहो राजकुमार हरिवश आकाशके चन्द्रश्री नेमिनाथ बाईसवे तीर्थंकरके शिष्य होगे और निर्वाण प्राप्त करेगे। इन छहो पुत्रोके जन्मके पश्चात् देवकीके चौथे गर्भमे निर्नामिक मुनिका जीव सातवाँ पुत्र कृष्ण होगा, जो नवाँ वासुदेव है।"

अतिमुक्तक स्वामीसे वसुदेव इस प्रकार कसके पूर्व जन्मो, तपके के प्रभावसे वैभव, अपने बलदेव, वासुदेव और उन तीनो युगलोके इस प्रकार आठ पुत्रो और देवकी स्त्रीके पूर्व जन्मोकी कथा और इस जन्मका प्रताप सुनकर बडा हर्षित हुआ। राजा वसुदेव और भी परम धर्म श्रद्धावान होकर मथुरामे सुखसे राज करने लगा।

: १९ :

महाउपवास

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, "हे श्रेणिक! देवकीके पति वसुदेव अपने वंशमे जिनेन्द्र तीर्थंकरके जन्मकी बात सुन कर बहुत हर्षित हुए और अतिमुक्तक स्वामीसे पूछने लगे, "हे नाथ! मैं हरि-वंश के तिलक जिनेन्द्र देवका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। कृपा कर सुनाइए।" तब मुनि अतिमुक्तकने कहना आरम्भ किया, "इस जम्बुद्वीपमे सीतोदा नदीके दक्षिण तट पर पद्मा नामक विदेह क्षेत्रमे स्यघपुर नगरमे अर्हदास राजा राज करता था। वह महाजैन धर्मा-वलम्बी था। उसकी रानीका नाम जिनदत्ता था, वह पूजन आदिमे बड़ी प्रवीण थी। एक रात उसने स्वप्नमे (१) लक्ष्मी, (२) गज, (३) सिंह, (४) सूर्य और (५) चन्द्र देखे। रानीने शुभ नक्षत्रमे अपराजित पुत्रको जन्म दिया। यह राजा पृथ्वी पर अपने पराक्रमके कारण सुप्रसिद्ध और अजेय था। उसके माता-पिताने उसकी युवावस्था मे चक्रवर्तीकी प्रीतिमती महा गुणवन्ती राजकुमारीसे उसका विवाह कर दिया। राजकुमार अपराजितने और भी बहुत से विवाह किये।

"एक दिन राजा अर्हदास अपने पुत्र और परिवारके साथ श्री विमलनाथ तीर्थंकरकी वन्दनाके लिए वनमे गये। उनके उपदेशके प्रभावसे अर्हदास अपराजित राजकुमारको राज्यभार सौप कर बहुतसे राजाओके साथ मुनि बन गये। एक दिन राजा अपराजितने सुना कि श्री विमलनाथ तीर्थंकर और उसके पिता मुनि अर्हदास गधमादन पर्वतसे मोक्ष गये है। राजा अपराजितने यह समाचार

सुनकर तीन दिनका उपवास किया और निर्वाण कल्याण की भक्ति की और नगरके मन्दिरोमे पूजा की। अपने महलमे राजा अपनी रानीको धर्मोपदेश दे रहा था। उसी समय दो मुनि वहाँ पधारे। राजा-रानीने हाथ जोडकर उन्हे नमस्कार किया। राजाने मुनियोसे पूछा, "हे प्रभो! मुनियोको देख कर जिन-धर्मियोके मनमे हर्ष उत्पन्न होना पुरानी स्वाभाविक रीति है। पर आपको देखकर मेरे हृदयमे स्नेह उपजा है। सो कृपा कर बताइए कि क्या आपका और मेरा कोई पूर्व-सम्वन्ध है ?"

तब उन दोनो मुनियोमे से बडे मुनि कहने लगे, "हे राजन्! मैं तुम्हे हमारे और तेरे पूर्व-सम्बन्धो की बात सुनाता हूँ। पुष्करार्द्ध द्वीपमे पश्चिम विदेहमे विजयार्द्ध गिरिकी उत्तर श्रेणीमे एक नगर जयपुर है। वहाँका राजा सूर्यप्रभ सूर्यके समान प्रभावान है और धरतीके समान मनको हरनेवाली उसकी रानी धारिणी है। उस रानीके तीन पुत्र (१)चितागति, (२) मनगति और (३) चपलगति हुए, जो महापुरुषार्थी थे और आपसमे बडे स्नेहसे रहते थे। उसी उत्तर श्रेणीमे एक दूसरा नगर अरिंजय था। वहाँके राजाका नाम भी अरिंजय ही था। उसकी रानीका नाम अतीतसेना था। उनकी पुत्री का नाम प्रीतिमती था, जो अनेक विद्याओमे निपुण और अपने गुणो तथा रूपके कारण पृथ्वी पर प्रसिद्ध थी। यद्यपि अनेक राजे-महाराजे उससे विवाह करनेके अभिलाषी थे, पर वह प्रीतिमती नारी जीवन-की निन्दा करती थी और उसे विवाह करना स्वीकार न था।"

राजा अपराजितने कहा, "प्रभो! बडी विचित्र थी वह राज-कुमारी।" बडे मुनिने कहा, "राजन्! इसमे विचित्रताकी क्या बात है ? विवाह न तो मनुष्य जीवनका ध्येय है और न इतना आवश्यक है कि विवाह जरूर किया जाय। क्या तुमने वाल ब्रह्मचारियो और बाल ब्रह्मचारिणियोका उल्लेख नही सुना है ?"

"सुना है, महाराज !" राजाने उत्तर दिया। तव मुनिने कहा, "एक दिन राजकुमारी प्रीतिमतीने अपने पिता से कहा, "हे पिता ! मुझे एक वचन दो।" पिताने उसे ससारसे पराङ्मुख जानकर कहा, "एक तपका वचन छोड कर जो वर मागेगी, मैं तुझे वही दूँगा।" तव राजकुमारीने कहा, "मेरी तो तप करनेकी ही इच्छा है। पर यदि आप मुझे वह आज्ञा न दे, तो मुझे यह वचन दे कि जो मुझे चलनेमे जीत लेगा, वही मेरा पति होगा, दूसरा नही।" राजाने वेटी की यह वात मान ली।

"इसके पश्चात् राजाने सव विद्याधरोको वुलाया और कहा, "हे समस्त विद्याधरो ! तुममे जो विद्याधर चलनेमे मेरी पुत्रीको जीतेगा, उसी से मै अपनी पुत्रीको परणाऊँगा। मेरी पुत्री और विद्याधरोमे से जो सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके और जिन भगवान् की पूजा करके पहिले आकर मुझे आशीष देगा, वही जीतेगा। और जो जीतेगा वही इसे व्याहेगा।"

राजाके इतना कहने पर चलनेकी प्रतियोगिताकी तैयारी हो गयी। सब विद्याधर, राजदरबारी, और नगरके प्रतिष्ठित व्यक्ति इस प्रतियोगिता को उत्सुकतापूर्वक देखने के लिए वहाँ इकट्ठे हो गये। राजकुमारीकी चलनेकी निपुणता को सब जानते थे। उस समय राजा सूर्यप्रभु और रानी धारिणीके तीन पुत्र चिंतागति आदि चलनेके लिए तैयार होकर मैदानमे आ गये। राजा अरिजय वहाँ प्रतियोगिता और उसके परिणामको देखनेके लिए आ खडे हुए। दौड़ आरम्भ हो गयी। दौडनेका आदेश होते ही वे तीनो भाई राजकुमारी प्रीतिमतीके साथ दौडने लगे। सब दौडे पर वह प्रीतिमती सबसे आगे निकल गयी। वह इनसे बहुत आगे निकलकर सुमेरुकी प्रदक्षिणा देकर भद्रसाल वनमे जिन-प्रतिमाकी पूजा करके शीघ्र वापिस आ गयी। दौडके श्रमसे राजकुमारी थकी हुई थी। पसीनेकी बूँदे उसके मुख पर मोतियोके समान चमक रही थी। उसने आकर पिताको

नमस्कार किया और आशीष दी। राजाने आशीषको आँखो तथा मस्तिष्क पर चढाया और अपनी पुत्रीको विजयपत्र दिया और ससार के भोगोसे विरक्त होकर तप करनेकी अनुमति भी दे दी।

"पिताकी अनुमति प्राप्त करनेके पश्चात् प्रीतिमती निवृत्त नाम-की साध्वीसे बहुतसे व्रत लेकर आर्यिका बन गयी। इधर प्रतियोगिता मे हारे हुए चितागति आदि तीनो भाइयोने दमवर स्वामीसे मुनि-दीक्षा ले ली। वे कठोर तप करके चौथे स्वर्गमे देव हुए।

"स्वर्गसे चलकर मनोगति और चपलगति दोनो भाइयोके जीवोने गगनवल्लभ नगरमे राजा गगनचन्द्र और उनकी रानी गगन-सुन्दरीके मनोगतिका जीव तो अमितवेग पुत्र हुआ और चपलगति-का जीव अमिततेज नामका पुत्र हुआ। वे दोनो भाई पुण्डरीकणी-पुरी मे श्री स्वयप्रभ तीर्थकरसे अपने पूर्व जन्मोका हाल सुनकर मुनि हो गये। और चितागतिका जीव राजा अर्हद्दासका अपराजित पुत्र हुआ। इस अपराजितका जीव अबसे पाँचवे जन्ममे भरत क्षेत्रमे हरिवश तिलक श्री अरिष्टनेमि या श्री नेमिनाथ बाईसवाँ तीर्थंकर होगा। अब अपराजितकी आयु केवल एक महीना शेष है। इसलिए उसे आत्म-कल्याण करना उचित है।"

इतना कहकर वह मुनि वहाँसे विहार कर गया। मुनि की यह बात सुनकर राजा अपराजितने आठ दिन तक भगवान्की पूजा की और फिर उसने अपने प्रीतिकर राजकुमारको राजकाज सौपकर ससारके विषय-भोगोसे विरक्त होकर प्रायोपगमन नामक सन्यास धारण किया और आराधना करने लगा।

मुनि अपराजितका जीव तप करके सोलहवे स्वर्गमे गया। फिर वहाँसे हस्तिनापुरके परम धर्मात्मा राजा श्रीचन्दकी श्रीमती रानीसे सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र पैदा हुआ। कुछ समय पश्चात् राजा श्रीचन्दने

अपने पुत्र सुप्रतिष्ठको राज सौंपकर सुमन्दिर मुनिसे मुनि-दीक्षा ले ली और मोक्ष गया ।

राजा सुप्रतिष्ठने एक महीनेका उपवास करनेवाले मुनि यशो-धरको विधिपूर्वक श्रद्धाके साथ भोजन दिया । कार्तिककी पूर्णमासी-को राजा सुप्रतिष्ठ अपनी रानियों सहित बैठा था, कि उन्होंने उल्कापात देखा और इससे उन्होंने राजलक्ष्मीको विनश्वर समझा । राजा संसारसे विरक्त हो गया । उसने अपनी स्वनन्दा रानीसे उत्पन्न सुदृष्टि राजकुमारको राजभार सौंपकर सुमन्दिर मुनिसे कई हजार राजाओंके साथ मुनिके महाव्रत लिये । उन्होंने अपने ज्ञान, चरित्र और तप आदिको बढाया और सब शास्त्रोंका खूब अध्ययन किया । इन्होंने कठोर-से-कठोर इतने तप किये कि इनका शरीर सूख कर काटा हो गया ।



२०

कृष्ण-बालक्रीडा

मुनि अतिमुक्तकसे अरिष्टनेमिका चरित्र सुनकर वसुदेव और देवकी मुनिको नमस्कार कर अपने घर वापस आये। कुछ दिनोके पश्चात् देवकीको प्रथम गर्भ रहा। देवकीने दो युगल पुत्रो, नृप और देवपालको जन्म दिया। परन्तु इन्हे कसका भय नही था क्योकि प्रवल सहायक की सहायतासे सब भय नष्ट हो जाते है। वसुदेवके सहायक तो धर्म और इन्द्र आदि देव थे। फिर उसके पुत्रको क्या भय होता ? इन्द्रकी आज्ञासे नैगम नामक देव उन दोनो युगल पुत्रोको भद्रलपुरमे सुदृष्टि सेठकी धर्मपत्नी अलका सेठानी के युगल मृतक पुत्रोसे वदल लाया और वे दोनो मृतक बच्चे देवकीके प्रसूतिगृहमे रख दिये। कस देवकीके प्रसवका समाचार सुन कर प्रसूतिगृहमे आया और उसने मृतक युगलको पाँव पकड़ कर उठा कर शिला पर दे मारा।

फिर देवकीको दूसरा गर्भ रहा, जिससे अनीकदत्त और अनीकपाल युगल पुत्र उत्पन्न हुए। इनको भी देव भद्रलपुर जाकर सुदृष्टि और अलकाके मृतक युगल पुत्रोसे बदल लाये। इस युगलको भी कसने पत्थरपर दे मारा। इसके पश्चात् तीसरे गर्भसे देवकीने शत्रुघ्न और यतिशत्रु युगल पुत्रोको जन्म दिया। उन्हे भी देव पहले के समान अलकाके मृत युगल पुत्रोसे वदल लाया। कसके हाथो उनका भी वही हाल हुआ।

वसुदेव देवकीके ये छहो पुत्र भद्रलपुरके सेठ सुदृष्टिके घरमे निर्विघ्नतापूर्वक पलने लगे। ससारमे जिनका पुण्य रक्षक होता है,

उन्हे हानि पहुँचानेमे कोई भी समर्थ नही होता । जैसे-जैसे ये वालक वडे होते गये, वैसे-वैसे सेठ सेठानीके यहाँ अतुल्य लक्ष्मी वढती गयी। उनका घर अपूर्व वस्तुओसे भरने लगा । सेठकी विभूति राजाओकी विभूतिको भी मात करने लगी ।

रानी देवकी माताकी ममता और पुत्रोके वियोगसे चिंतित रहने लगी । तव वसुदेवने उसे आश्वासन दिया कि उसके सव पुत्र भद्रल-पुरमे सेठके घर आनन्दपूर्वक है । पतिके वचनोसे आश्वस्त होकर देवकी की काति दूजके चन्द्रमाकी कलाके समान वढने लगी ।

एक रात देवकीने सात स्वप्न देखे, जिनमे (१) सूर्य, (२) पूर्ण-चन्द्रमा, (३) दिग्पालो द्वारा लक्ष्मीका स्नान, (४) आकाशसे उत-रता विमान, (५) देदीप्यमान अग्नि, (६) देवताओ की ध्वजा और (७) रत्नराशि थे । इसके पश्चात् रानीने अपने मुखमे सिहको प्रवेश करता देखा ।

प्रात. जव देवकीने इन स्वप्नोका फल अपने पति वसुदेवसे पूछा, तव उसने रानीको वताया कि इन सभी वस्तुओके गुणोसे युक्त एक महाप्रतापी, अधकार नाशक, चन्द्रमाके समान कातिवान तथा सुन्दर, राज्याभिषेक योग्य, देवलोकसे आनेवाला है। वह महा तेजवान, देवताओ से प्रशसित, गुणरत्न-राशियुक्त और निर्भय जगतपति होगा । स्वप्नो-के फलको सुन कर देवकी वहुत हर्षित हुई ।

देवकीके गर्भकी वृद्धिके साथ-साथ जगतका आतप मिटने लगा, पृथ्वीका सुख वढता गया । सव जीवोकी धर्ममे प्रवृत्ति हो गई । कस वहिनके गर्भके दिन गिन रहा था । परन्तु वह नारायणके गुण नही गिन सकता था । उसने यही सोचा कि वह कृष्णको न मार सकेगा।

वह जानता था कि नवे महीने पुत्र होगा, परन्तु वासुदेवका जन्म सातवे महीने ही रातके समय हो गया । नवजात शिशु शख, चक्र तथा गदादि शुभ लक्षणोका धारक अति देदीप्यमान, इन्द्र

नीलमणि समान श्याम सुन्दर था और देवकीके प्रसूतिगृहको अपनी दीप्तिसे चमका रहा था। कृष्णके जन्मके साथ ही मित्र-बाधवोके घरो मे कल्याणकारक शुभ निमित्त होने लगे और शत्रुओके घरोमे भयके कारण अशुभ निमित्त होने लगे। इस नारायणके जन्मके प्रभाव से सर्वत्र प्रकाश-ही-प्रकाश हो गया। इतना ही नही सात दिनकी अखण्ड वर्षा भी उस समय हुई।

ऐसी वर्षामे रातके समय वसुदेव और वलभद्र नवजात शिशु-वासुदेवको लेकर घरसे निकले। वलभद्र की गोदीमे बच्चा था और वसुदेव उसपर छत्र लगाये हुए था। कसके सुभट सोते ही रह गये। उनमे से कोई भी न जागा। नगरके द्वारके पहरेदार भी सोते रहे। कृष्णके चरण-स्पर्शसे द्वारके दृढ किवाड स्वय खुल गये। सयोगसे मेहकी एक बूँद वालककी नाकमे गयी और उसे जोरकी छीक आई। उस द्वारके ऊपरले खण्डमे कसका पिता उग्रसेन कैद था। उसने छीककी आवाज सुनकर आशीर्वाद दिया कि तू चिरकाल जीवे और निर्विघ्न रहे। तव वलभद्रने उग्रसेनसे कहा "हे पूज्य। इस समस्त रहस्यको गुप्त रखना। यह वालक ही वडा होकर आपको वन्दीगृहसे छुडायेगा।"

राजा उग्रसेनने फिर आशीर्वाद देते हुए कहा "मेरे भाई देवसेन की पुत्रीका यह पुत्र शत्रुको मालूम हुए विना सुखसे रहे।" उग्रसेनके इन शुभ वचनोको सुन कर वसुदेव और वलभद्र वालकको लेकर मथुरा नगरसे वाहर चले गये।

नगरका रक्षक वैलका रूप धारण करके सीगो पर दीपक रख कर इनके आगे-आगे प्रकाश दिखा कर मार्ग दिखाने लगा। आगे यमुनाका तीव्र प्रवाह था। कृष्णके प्रतापसे यमुनाके मध्यमे मार्ग हो गया और जल प्रवाह भी कम हो गया। तव ये सव वृन्दावनके घाटसे यमुना पार करके गोकुल गाँव गये। वहा नन्द गोप-ग्वाला

और उसकी पत्नी यशोदा गोपी रहते थे। उन्होने उन गोप दम्पति को बालक सौंप कर समस्त रहस्य वताया और उसे सावधानतापूर्वक पालनेको कहा। इस वालकको देखने मात्रसे ही सबकी ऑखोमे ठण्डक पड जाती थी। नन्द और यशोदाको सब बाते अच्छी प्रकार समझा कर उन्होने कृष्णको उनके पास छोड दिया। उसी समय यशोदाके पुत्री जन्मी थी। उन्होने सबके विश्वासके लिए उसे लाकर देवकीको सौंपा।

निर्दयी कस देवकीकी प्रसूतिका समाचार सुन कर प्रसूतिगृह मे आया। देवकीके पास पुत्री देख कर कसने मनमे सोचा कि यह कन्या तो मुझे मार नही सकती। इसका पति कोई राजकुमार मेरा शत्रु हो सकता है। यह सोच कर उस पापीने उस कन्याकी नाक दबा कर चपटी कर दी। इस समस्त दृश्यको देख कर देवकीको वहुत दुःख हुआ। पर वह क्या करती? कस सन्तुष्ट होकर अपने घरमे लौटने लगा।

कुछ समय पश्चात् गोकुलमे कृष्णके जातकर्म सस्कार तथा नामकरण सस्कार हुए। उसका नाम कृष्ण रखा गया। वह बडा पुण्याधिकारी वना और नन्द-यशोदाकी अद्‌भुत प्रीति प्राप्त करने लगा। उसके गदा, खड्ग, चक्र, अकुश, शंख तथा पद्म आदि प्रशस्त लक्षण थे। उसका मुख अरुण वर्णका और महासुन्दर नीलकमल सदृश शोभायमान था। गोकुलकी गोपियाँ उसके मुखको देख-देखकर तृप्त ही न होती थी। गोपियोके स्तन दूधसे भरे थे और हरएक गोपीकी यह इच्छा थी, कि वह कृष्णको दूध पिलाये।

एक दिन वरुण नामक निमित्त ज्ञानीने कससे कहा "हे राजन्! आपका शत्रु किसी नगरी, वन या गाँवमे बडा हो रहा है। अतः उचित कार्यवाही करे।" तव कसने अपने शत्रुका नाम-स्थान आदि जाननेके लिए तेला-तीन दिनका उपवास किया और पूर्व जन्ममे सिद्ध की हुई सात देवियोको स्मरण किया। वे तुरन्त कसके पास

आकर कहने लगी "हे राजन्! अब हम आपका काम करनेको तैयार हैं। बलदेव और वासुदेवको छोड़ कर, जिसे आप कहे उसे ही मार दे।" इस पर कसने कहा—"मेरा प्रबल वैरी किसी स्थान मे बडा हो रहा है, उसे ढूँढ कर मारो, उस पर दया न करना।"

कसका यह आदेश सुनकर वे सातो देवियाँ उसके शत्रुको ढूँढने गयी। कृष्णको ढूँढने पर सबने बारी-बारीसे अनेक रूप बना कर उसे मारनेका प्रयत्न किया, पर कृष्ण या यशोदाने उन देवियोको मार भगाया और कृष्ण उनसे बच गया।

नन्द और यशोदा पुत्र कृष्णका बाल्यावस्थाका पराक्रम देख कर बहुत आश्चर्य करने लगे। उन्होने सोचा कि यह सामान्य मनुष्य न बनेगा, वरन् कोई महापुरुष होगा। घर-घरमे उस बालककी प्रशसा होने लगी। देवकी बलभद्रसे कृष्णकी इन बालक्रीडाओको सुनकर अपने पुत्रको देखनेके लिए उपवासका बहाना बनाकर गोकुलमे आयी। देवकी कृष्णके सुकण्ठ द्वारा गाये गीतो और गायोकी घटियो-की मधुर ध्वनि सुन कर परम सतुष्ट हुई। कृष्णके सुरीले मधुर गीत तो देवियो तकके मनको हरनेवाले थे, फिर देवकीकी तो बात ही क्या थी? देवकीने कृष्ण और बलभद्र दोनोके महा मनोहर रूप-को देख कर विशेष हर्ष अनुभव किया। जब देवकीने कृष्णके रूप-स्वर आदिका वृत्तान्त अपने पति वसुदेवको सुनाया तो वह भी बहुत प्रसन्न हुआ।

अब बलभद्र नित प्रति जाकर कृष्णको अनेक कलायें तथा गुण सिखाने लगा और तीक्ष्ण-बुद्धि वह बालक सब बातोको तुरन्त सीख लेता था। विनयवान शिष्य पर ही गुरुके वचन प्रभाव डालते है, दूसरे पर नही। इस प्रकार हरिने बलभद्रसे विद्या अभ्यासका काल व्यतीत किया और उसने कुमार अवस्थामे प्रवेश किया।

कुमारावस्थामे कृष्ण निर्विकार, परदारा का त्यागी, विषयानु-राग-रहित और ब्रह्मचारी हुआ। गोपियाँ कृष्णके निकट अनेक रास

विलास तथा नृत्य करने लगी। कृष्ण भी देवोके समान उनके साथ नृत्य और गान करने लगे, पर क्या मजाल कि मनमे जरा भी विकार हो। जैसे सोनेकी अँगूठीमे हीरेकी मणि शोभा देती है, वैसे ही कृष्ण गोपियोमे शोभा देते थे।

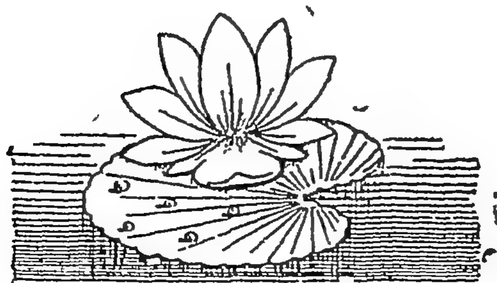
सभी स्त्री-पुरुषोका अनुराग हरिमे बढने लगा और यदि वे इसको न देखती तो विरह उत्पन्न हो जाता था।

कसके सिर तो कृष्णके भयका भूत सवार था। जब वह उसे ढूँढने और मारनेके उपायोमे विफल हो गया, तब कस स्वय उसे तलाश करने व्रजमे घूमने लगा। इधर नन्द और यशोदाने जब यह समाचार सुना तो वे कृष्णको लेकर वनमे चले गये। वहाँ एक रूक्षनेत्रवती विकराल-मुखी राक्षसनी कृष्णको देख कर अट्टहास करके अपनी कायाको बढा कर उसकी ओर खाने के लिए दौडी। पर कृष्णने अपने पराक्रमसे उसे दूर भगा दिया। मार्गमे मालमली वृक्षोके थम्मो की इतनी बडी पक्ति थी कि वह मनुष्योसे उठ नही रही थी। कृष्णने उन थम्मोको उठाकर मण्डप पर रख दिया। पुत्रके ऐसे वीरतापूर्ण पराक्रम देखकर नन्द-यशोदा निश्शक हो गये, कि इसको मारनेमे कोई समर्थ न हो सकेगा। फिर वे अपने घर लौट आये।

इधर कस व्रजमे घूम कर मथुरा मे आया। मथुरामे देवालयमे तीन रत्न अकस्मात उत्पन्न हुए, वे सिंहके आकारके पायोवाली नागशय्या, पाचजन्य शख और अजितज्य धनुप थे। किसी निमित्त-ज्ञानीने कसको बताया—"जो आदमी नागशय्या पर चढेगा, धनुष चढायेगा और शखको बजायेगा, वही तेरा शत्रु होगा। इसलिए कसने अपने शत्रुको ढूँढनेके लिए नगरमें डौडी पिटवाई, कि जो व्यक्ति नागशय्या पर चढेगा, धनुषको चढायेगा, और शखको बजायेगा, उसीके साथ वह अपनी पुत्री अपराजिताका को विवाह देगा और जो कुछ वह मागेगा, वही उसे मिलेगा।

इस घोषणाको सुनकर अनेक राजकुमारोने ये तीनो काम करनेका प्रयत्न किया, पर सब असफल। उसी समय जरासिधका पोता भानुकुमार गोकुलमे आया। कृष्णके पराक्रमको जानकर और उसकी सामर्थ्यको प्रत्यक्ष देख कर भानु इन कामोको करनेके लिए उसे मथुरा लाया। भानुके साथ मथुरा आकर कृष्ण महाभयंकर तथा डरावने फनोवाले नागोकी शय्या पर चढ गया। उसने मायामयी नागोके मु हसे निकलते हुए धुए और भयकर अग्निकी ज्वालासे प्रज्वलित धनुषको इस प्रकार चढाया और शखको इस प्रकार बजाया कि दसो दिशाए गूंज उठी और समुद्र गरजने लगा। ये काम किये तो थे कृष्णने, पर प्रकट किये भानुके किये हुए। सभी भानुके महात्म्यकी प्रशसा करने लगे पर लोगोके मनमे शका थी। कुछ कहते थे कि ये काम भानुने किये हैं और कुछने कहा कि एक सांवरे लड़केने किये है। तब भानुकुमारने कसके भयसे अपने नौकरोके साथ कृष्णको गोकुल वापिस भेज दिया। वह स्वय शय्या और धनुषके पास चुस्त होकर खडा हो गया।"

यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई और कहा, "हे श्रेणिक! कृष्णके गर्भमे आनेसे पहले ही कस उसका महावैरी बन गया, पर उसका बाल भी बाका न कर सका, क्योकि कृष्णने पूर्व जन्ममे जिन धर्मका पालन किया। वही धर्म उसका सहायक था।"



कंस-वध

शरत् ऋतु आई। उसकी शोभा अवर्णनीय थी। इस ऋतुमे कृष्णका यश तो वढने लगा पर कसका मद मन्द पड गया। जव कसने कृष्णकी समस्त क्रीडाओका वर्णन सुन लिया, तव कृष्णके नाशके लिए उसने गोकुलके ग्वालोको नागदह सरोवरसे सहस्रदल कमल लानेकी आज्ञा दी। उस सरोवरमे महाविकराल नाग कुमार देव रहता था। इसलिए उसमे कोई भी स्नान करनेको नही जा सकता था। कस समझता था कि जो कोई भी उस सरोवरसे सहस्र-दल कमल ले जायगा, मेरा वह शत्रु नाग कुमार से मारा जायगा, और यदि वचकर आ गया तो उसे मैं मार दू गा।

जव कसका आज्ञापत्र गोकुलमे आया, तव सव गोपो आदिको चिन्ता हुई कि उस कमलको कौन लाये। पर कृष्ण सहस्रदल कमल लानेको तैयार हो गया। इधर नागने अपनी मणियोसे अग्निकी फुलगनिया कृष्णको जलानेके लिए निकाली, उधर माधव उछल कर उसके सिर पर जा सवार हुआ। कृष्णने अपने पाँवसे नागको कुचला और सहस्रदल कमल लेकर वाहर आ गया। जो गोप-गोपियाँ और वलभद्र सरोवरके किनारे चिंतित खड़े थे, वे हरिको वाहर विजयी आता देख कर हर्षसे नाचने-गाने लगे और "धन्य-धन्य" के नारे लगाने लगे। भुजगोंको भुजाओसे जीत कर कमलको लेकर पवनके समान उडते हुए शीघ्र ही मुकन्द आ गये। गोप भी अनेक कमल लाये, उनको वाँध कर कसके पास भेजा। कस क्रोधसे जल उठा, उसके मु हसे वहुत गर्म सास निकल रही

थी। उसने सभी ग्वालोको मल्लयुद्धके लिए मथुरा आनेकी आज्ञा दी। उधर उसने अपने पहलवानोको इकट्ठा किया। कस किसी न किसी तरह कृष्णको मारना चाहता था।

इधर वसुदेवने अपने पुत्र अनावृष्टिसे मत्रणा करके उसे अपने बड़े भाई समुद्रविजयको सब समाचार देने और चतुरगी सेना लेकर सहायताके लिए बुलानेको भेजा। यह समाचार सुनकर राजा समुद्र विजय अपने सब भाइयो तथा सेना-सहित दुष्ट कसको जीतने वसु-देवके पास आया।

उन्होने अपने आनेके असल उद्देश्यको छिपा कर यह प्रकट किया कि वह बहुत दिनोसे बिछुडे अपने छोटे भाई वसुदेवसे मिलने आया है। वे सब वसुदेवके पास गये। कस भी मनमे अनेक शकाए लिये हुए उनको मथुरामे लाया। सबको डेरो मे ठहराया और उनका बडा आदर किया। उनके भोजन आदि का प्रवन्ध किया। कसने बाहरसे कपट पूर्वक स्नेह प्रदर्शित किया, पर उसके मनमे तो द्वेषाग्नि जल रही थी। इसलिए उसने गोकुलके गोपोको मल्लयुद्धके लिए पत्र लिखा।

इधर वलभद्रने कसकी सब चाले समझ कर सब गोपोको प्रेरणा देकर मल्लयुद्धके लिए तैयार किया। और यशोदाको धमका-कर कृष्णको स्नानकरके शीघ्र तैयार करने और भोजन वनानेको कहा। फिर वलभद्र और कृष्ण नदीके किनारे गये। वहा एकान्त मे बलभद्रने कृष्णसे कहा, "हे कृष्ण! तू आज उदास क्यो है? तेरे मु हसे लम्बे-लम्बे उच्छ्वास क्यो निकल रहे है। तेरी आखोमे आसू क्यो है? तेरा चेहरा मुरझाये कमल सदृश कातिहीन क्यो दिख रहा है?" तव कृष्णने बलभद्रसे कहा, "हे आर्य! मैं आपको अपने दु ख का कारण बताता हू। आप मेरे शास्त्र पढानेवाले गुरु, महा पडित और लोक-व्यवहारको जानने वाले हो। आप दूसरो को

मार्ग बतानेवाले और महाविवेकी हो, फिर आपने मेरी पूज्य माता यशोदाको जो तिरस्कारपूर्ण वचन कहे, वे आपके योग्य न थे।" ये-वचन कृष्णने वलभद्रको उलहनेके रूपमे कहे।

कृष्णकी इन वातो को सुनकर वसुदेव उसे छातीसे लगा कर, गद्गद् वाणी और हर्षके आंसू वहाते हुए कृष्णसे पीछेका सव वृत्तान्त कहने लगा। वलभद्रने कृष्णको वताया, "हे कृष्ण! राजा जरासिंध की पुत्री जीवयशा कससे व्याही गई। जव कसके वडे भाई मुनि अतिमुक्तक आहारके लिए उसके घर आये, तव जीवयशाने मुनिके सामने तेरी असली माता देवकीके गन्दे वस्त्र डालकर उनसे अविनय तथा अशिष्टताका व्यवहार किया। इस पर मुनिने भविष्यवाणी की कि देवकीका सातवा पुत्र नवा नारायण उसके पति कंस और पिता जरासिंधको मारनेवाला होगा। इस पर कसने देवकीकी समस्त सन्तानको होते ही मारनेका निश्चय किया।" इसे आगे बलभद्रने कृष्णको उसके छह भाइयो अर्थात् तीन युगलोके भद्रलपुरकी सेठानी अलका के मृतक तोन युगलो से वदलने और कृष्ण को यशोदाकी लडकीसे वदलनेकी सव वाते वताई। इसके अतिरिक्त कृष्णको मारनेके लिए कसने जो-जो उपाय किये वे सव बलभद्रने कृष्णको सुनाये। इन सव वातोको सुनकर कृष्णको कसपर अति क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर वलभद्रने कृष्णको आगे वताया कि जव कसने मल्ल-युद्धके द्वारा उसको मारनेका उपाय निकाला है। वलभद्र कृष्णको पीछेकी ये सव घटनाएँ और वृत्तान्त बताकर महापापी कसके प्रति उसको भडकाना और क्रुद्ध करना चाहता था।

वलभद्रके ये वचन सुनकर कृष्णने कसको मारनेका निश्चय किया। अव तक उसका यह विचार था कि उस जैसा सामन्त, योद्धा और शस्त्र विद्या प्रवीण गोपोके कुलमे क्यो पैदा हुआ? आज उसे रोहिणीके पुत्र अपने वडे भाई वलदेवसे यह मालूम हुआ कि वह हरिवशी है और क्षत्री कुलका है। उसे यह सुनकर गर्व हुआ कि वह

उस वश-का है, जिसमें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत नाथ जी हुए और बाईसवे तीर्थंकर श्री सोमनाथ जी होगे। उसे अब मालूम हो गया कि देवकी उसकी माता और वसुदेव उसके पिता हैं। उसे समुद्र विजय और बलभद्रसे अपने सम्बन्ध भी ज्ञात हुए। उसको अब यह मालूम हुआ कि नद और यशोदा उसको पालने-पोसने वाले धर्म-के मा-बाप है। अब वह समझा वह गोपीपुत्र नही, क्षत्री पुत्र है। भेडोके बीच पले हुए सिह-पुत्रको जैसे सिह पुत्र होनेका ज्ञान होने-पर अपना असली वश, कुल, रूप और शक्ति मालूम हुए। उसका मुख-कमल हर्ष और आनन्द से चमक उठा। दोनो भाई जन्म जन्मा-न्तरके स्नेहसे आपसमे छातीसे छाती मिला कर मिले।

फिर वे यमुनामे स्नान कर घर आये और भोजन किया। बल-भद्रने अपनी रुचि अनुसार भोजन किया और कृष्णने गायोका घी, दूध और मिठाइया खाईं। इसके पश्चात् बलभद्रने पीताम्बर और पुष्पमालाए पहनी।

बलभद्र और कृष्ण दोनो मल्ल युद्ध विद्यामे अति निपुण थे। वे महाभयकर मल्लका भेष धारण करके मनमे कसको विध्वस करनेका निश्चय करके गोपोके साथ मथुराकी ओर चले। बलवान इतने कि चरणो की चोट करे, तो पृथ्वी दहल जाये।

अभी वे मार्गमे ही थे, कि कसके पक्षके तीन असुरोने उन पर आक्रमण किया। उनमे से एकने नागका, दूसरेने गधेका और तीसरेने भयानक घोडेका रूप बना रखा था। कृष्णने सबको भगा दिया। फिर केसी नामके असुरने उन पर आक्रमण किया। उसे भी सबने भगा दिया।

फिर बलभद्र और कृष्ण आदि नगरके द्वारपर आये। द्वार पर आते ही दो मस्त हाथी उनके सामने आये। मदके झरनेसे उनके कपोल भीज रहे थे। कसकी आज्ञासे महावतने इन दोनो हाथियोको

इन पर चढाया। दोनो भाई इन हाथियोको देखकर हर्षित हुए। दोनो भाई मल्ल युद्धकी रंगभूमिके महा निपुण मल्ल थे। चम्पक नामक हाथीके सामने तो राम, जिनको वलदेव कहते है, गये और दूसरे पादभरके सन्मुख फनिरिपु नागको दमन करनेवाले दामोदर अर्थात् कृष्ण जा डटे। दोनो भाइयोने इन गजोसे युद्ध किया। हाथी अति वलवान थे और उनको मारना हर एक योद्धाके लिए आसान न था। पर उन दोनो वीरोने थोडी ही देरमे उन दोनोके दांत उखाड दिये। वे दन्तहीन हाथी दहाडते-भागते नगरमे गये।

इधर वे दोनो वीर अपने गोप साथियो सहित नगरमे गये। अपने कधोसे महा मल्लोको धकेलते ये अखाड़ेमे पहुचे। उस अखाडे या रग भूमिका वर्णन करना वडा कठिन है। रगभूमिके द्वार कमलोकी कोपलोसे मडित शोभा दे रहे थे। कमलो पर भौंरे गुजार कर रहे थे। वड़े-वड़े राजा और विशिष्ट पुरुष मल्ल युद्धका कौतुक देखनेके लिए वैठे थे। हरि और हलधर अर्थात् कृष्ण और वलभद्र गरज रहे थे। खम ठोक-ठोक कर अपने चरणो और भुजदण्डोके पुट्ठोकी चेष्टा कर रहे थे। विविध प्रकार की मल्लविद्या की कला और दृढ दृष्टि और दृढ मुठिया दिखा रहे थे। इनके प्रवेश करते ही उनकी चेष्टाओसे रगभूमिकी शोभा वढ गई। सव सावधान होकर वैठ गये। वलदेवने वसुदेवको आँखके सकेतसे सव कुछ वता दिया और कहा "हे हरि! यही वैरी कस है। इसके पास जरासिंधके आदमी हैं। और ये समुद्रविजय आदि तेरे ताऊ और ये उनके वेटे तेरे भाई है।" उन सवने एक दूसरेको देखा।

अव कसने मल्लोको मल्लयुद्ध आरम्भ करनेकी आज्ञा दी। आज्ञाको सुनते ही सवने अपनी-अपनी जोडीसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया। अनेक पहलवान खम ठोक रहे थे और गरज रहे थे। उन योद्धाओके मल्लयुद्धमे वह रगभूमि वड़ी रमणीक लग रही

थी, जैसे जगली भसे क्रोधसे आपसमे लडते है, वसे ही ये मल्ल आपसमे लड रहे थे।

इसके पश्चात् दुष्ट कसने चाडुर नामक मल्लको कृष्णसे लडनेकी आज्ञा दी। चाडुर मल्लका वक्षस्थल पर्वतकी भारी भित्तिके समान विस्तीर्ण था, और उसकी भुजाए महाद्दढ थम्भ के समान थी। वह प्रतिदिन अनेक दड-वैठक लगाता था। स्वामीकी आज्ञा पाते ही चाडुर आगे वढा, उसके साथ ही कसकी आज्ञासे विप समान विपम दृष्टि वाले दूसरे मल्ल मुष्टिको कृष्णसे लड़नेका आखसे इशारा किया। उसका अभिप्राय था, कि वे दोनो इकट्ठे होकर भूधर-कृष्ण को मारे। वे दोनो मल्ल कृष्णपर टूट पडे। उन दोनो मल्लोके नख महाकठोर, महा तीक्ष्ण और अति विकराल थे। मुठ्ठिया वाधे हुए वे मल्ल सिहके समान भयकर आकारवाले और स्थिर चरणोवाले थे। कृष्ण चाडुर मल्लके सामने आ डटा और वलभद्र दूसरे मल्ल मुष्टिके सामने। मुष्टि मल्लकी मुठ्ठियोकी चोट वज्रघातके सदृश थी। दोनो जोडियोका मल्ल युद्ध होने लगा। मुप्टि मल्लको अपनी तरफ आते देखकर वलभद्र वोला, "वैठो, वैठो।" ऐसा कहकर वलदेवने मुष्टिको एक थपेड़ मारी और उसके प्राण तत्काल निकल गये। वलभद्र समान शलाका पुरुपसे तो देव भी नही लड सकते थे, फिर उस मुप्टि मल्ल जैसे मनुष्यकी तो वात ही क्या? फिर कृष्णने चाडुर मल्लको अपनी भुजाओ मे इतने जोरसे भीचा कि उसके मुखसे रुधिरकी धारा वह निकली और तत्काल उसके प्राण निकल गये। यद्यपि वह चाडुर इतना सशक्त, महावलवान और गर्ववान था कि कोई मनुष्य उसे जीत नही सकता था, परन्तु हरि पर उसका कोई जोर न चला। कृप्ण स्वय हरि था। वह सिह और इन्द्रके समान शक्तिशाली था। चाडुर और मुप्टि मल्ल दोनो एक सहस्र सिहो और एक हजार मस्त हाथियोसे भी अधिक वलवान थे, पर उन दोनोको वलभद्र और कृप्णने तुरन्त मौतके घाट उतार दिया।

अब कस स्वय रगभूमिमे उतर पडा। उसके हाथोमे तीक्ष्ण शस्त्र थे। रगभूमिमे कसके आते ही वह चलायमान हो गई। समुद्रके सदृश गरजता हुआ कस कृष्णपर टूट पडा। तव महावली कृष्णने लपककर कसके हाथसे खड्ग छीन कर म्यानमे डालदी। अब वडे क्रोधसे कृष्णने उसको टागोसे जोरसे पकड कर चारो ओर घुमाया और पत्थरपर पटक कर मारा। कृष्णने हस कर उससे पूछा, "वस, इसी वलपर इतना गर्व था?" कसके पछाडे जाते ही, उसकी समस्त सेना युद्धके लिए तैयार हो गई। इस पर कुटिल भृकुटि वलभद्र अकेले ही उनके सामने आ डटा। महल का खम्भा उखाड कर वह योद्धाओ पर टूट पडा। वज्रपात समान खम्भ के वारोसे वलभद्रने वहुतसे योद्धाओको मार दिया। वलदेव वासुदेवसे भला कौन लड़ सकता था? तव कसके सव योद्धा सामन्त रगभूमिसे भाग खडे हुए।

कसके योद्धाओके पराजित होनेके पश्चात् जरासिधकी जो महा सेना कसके आधीन थी, उसके वडे-वडे राजा और योद्धा युद्धके लिए तैयार हो गये। यादवो पर उनकी विपम दृष्टि थी और वे समुद्रके समान गरज रहे थे। चारो दिशाओसे सामन्त रगभूमिमे आ डटे। यद्यपि वह समस्त सेना कसके लिए लड़नेको सावधान और तत्पर थी, पर वलभद्र और कृष्णके सामने वह ठहर न सकी।

विजयी वलदेव और कृष्ण मल्लके वेपमे लगर-लगोटे कसे हुए समस्त आभरणोसे युक्त रथमे वैठ कर माता-पिता देवकी-वसुदेवके महलमे गये। वहा समुद्रविजय आदि सभी ताया-ताई आदि उपस्थित थे। हलवर और हरिने अनुक्रम से समुद्रविजय आदि आठो ताऊओ-के चरण स्पर्श किये, फिर सव ताइयोके पाँव पडे। सवने उन्हे छातीसे लगाकर आशीर्वाद दिये। चिरकालके विरहसे हृदयमे जो आत्ताप उपजा था, उसे शात करनेके लिए यह मिलन जलधाराके समान था। ऐसे प्रफुल्लित वदन पुत्रका सयोग सवके लिए सुखदायक

हुआ। देवकी और वसुदेव भी पुत्र कृष्णका मुख देखकर अतुल सुखको अनुभव करने लगे। यशोदाकी पुत्री जिस पुत्रीकी नाक कसने दबाकर चपटी की थी, वह कृष्णको देखकर आनन्द विभोर हो गई। कितना स्नेहपूर्ण भावभीना वातावरण था वह! कृष्णने घर आते ही उग्रसेनको बधनमुक्त किया। कसके भय और शकासे मुक्त समस्त नगरवासियो के हृदय उत्साहसे भर गये। पर कसके समस्त कुटुम्बीजन और उसकी पत्नी जीवयशा आज विधवा हो गई थी। मुनि अतिमुक्तककी भविष्यवाणी सत्य हो गई। इसके पश्चात् कसका दाह-सस्कार कर दिया गया।

कसके दाह-सस्कार आदिके पश्चात् जीवयशा अपने पिता जरा-सिंधके पास रुदन-विलाप करती हुई गई। अति व्यथाके कारण उसका हाल वेहाल था। उसका कण्ठ रुका हुआ था।

कसवधके पश्चात् सभी यादव अपनी सभामे बैठे हुए थे। उसी समय मथुराके सभी निवासियोने आकाश से एक विद्याधरको मछली जैसी लीला करते देखा। वह विद्याधर अतिशीघ्रगामी और मीन जैसी गति वाला था। वह सुकेत नामक विद्याधरका दूत था। उस दूत विद्याधरका शरीर अति उज्ज्वल तथा वस्त्र अति निर्मल थे। उसके शरीर पर चदन आदिका लेप था। वह दूत विद्याधर रथुनु-पुर चक्रवाल नगरसे मथुरा आया था। जव वह दूत आकर द्वार-पर खडा हुआ, तभी द्वारपाल उसे राज सभामे अन्दर ले गया। राज-दरवारमे सभी यादव अपने-अपने स्थानपर विराजमान थे। दूतने सबको नमस्कार करके राजा समुद्रविजयको सम्वोधित करते हुए कहा, "हे नरेन्द्र! मेरी विज्ञप्ति सुनिये। विजयार्द्धि गिरिमे दक्षिण श्रेणीमे रथुनुपुर चक्रवाल नगरका राजा सुकेत विद्याधर है। वह राजा नमि-विनमिके कुलकी ध्वजा समान है। वह सव विद्याधरोका स्वामी है। उसने वीर शिरोमणि कृष्णके सभी परा-क्रमोका हाल सुना है, कि उसने किस प्रकार देवोपुनीत धनुपको

चढाया और नागशय्यापर आरोहण किया। कृष्णके पराक्रमोको सुनकर वे उसको अति प्रेम करते है। उसकी सत्यभामा पुत्री विवाह-योग्य, सर्वगुण-सम्पन्न और अतिरूपवान है। राजाने मुझे कृष्णके साथ उसके विवाहकी प्रार्थना करने भेजा है। कृपया इसकी स्वीकृति दे दीजिये।"

समस्त यादवोने दूतके इस मनोहारी वक्तव्यको सुना। तव समुद्रविजय ने कृष्ण को आदेश दिया "तुम राजा सुकेत की पुत्री सप्यभामा से विवाह करो।" अपने ताऊ समुद्रविजयके इस आदेश-को सुनकर कृष्णने अति प्रसन्न हो दूतसे कहा, "हे भद्र! आपका विवाह-सन्देश सुनकर हमारे पूज्य राजाने मुझे जो आदेश दिया है, वह मुझे स्वीकार है। राजा सुकेत तो वास्तवमे कुवेरके सदृश है, जिसकी पुत्री सत्यभामा रत्नधाराके समान है। यदि वह रत्नधारा-वृष्टि वन कर मुझ रत्नाचल पर बरसती है तो इससे अधिक प्रसन्नता की वात मेरे लिए क्या हो सकती है? राजा सुकेतकी दी हुई वह रत्नराशि लक्ष्मी वन कर मेरे गृहकी शोभा बने।" ऐसे प्रिय और मीठे वचन कह कर दूतका यथोचित आदर सम्मान तथा आतिथ्य करके विदा किया गया।

यदुवंश कुल तिलक राजा समुद्रविजय और कुमार कृष्णकी स्वीकृति पा कर दूत अपने उद्देश्य सिद्धिसे बहुत हर्षित हुआ। उसने जाकर राजा सुकेतसे कहा—'नमस्कार नरेन्द्र! बधाई स्वीकार हो। आपकी मनोकामना पूरी हो गई। राजा समुद्रविजय और कृष्णने कृष्णके साथ सत्यभामाके विवाहके प्रस्तावको बडे हर्षसे स्वीकार किया है। बलदेव और कृष्ण इस पृथ्वीपर प्रकाशपुंज है। उनके सामने सवका तेज फीका पडता है। मैं उनके गुणोका वर्णन नही कर सकता।"

विद्याधर दूतके मुखसे कृष्णके रूप, काति, प्रताप, धर्मज्ञता और गुण सुनकर राजा सुकेतके आदेशसे उसका छोटा भाई रतिपाल

अपनी पुत्री रेवती और अपने भाई सुकेतकी पुत्री सत्यभामा इन दोनोको लेकर मथुरा आया। रेवतीका विवाह बलभद्रसे और सत्यभामाका विवाह कृष्णसे किया गया। सत्यभामा राजा सुकेतकी रानी प्रभाकी पुत्री थी। इन दोनो विवाहोकी शोभाका क्या वर्णन किया जाये? बलभद्र और कृष्णके ये प्रथम विवाह थे। यादव-परिवार, मथुराके नर-नारियो और राजा सुकेत के कुटुम्बमे हर्ष और उत्साहका समुद्र लहरे मार रहा था। इनके विवाहमे स्वय विद्याधरियाँ सुन्दर वस्त्राभूषणोसे सुसज्जित अपने सुकोमल, लचीले सुन्दर और नृत्य कर्मोमे प्रवीण शरीरोसे नृत्य करके सभी उपस्थित नर-नारियो को रिझा रही थी। नृत्य करते-करते उनके कोमल शरीर शिथल हो गये, वस्त्र, अगियाए और केशोके बन्धन ढीले पड गये। उनके नूपुर के समधुर शब्दसे विवाहमडप गु जायमान हो रहा था।

बलभद्र और कृष्ण वरके मणिमडित वस्त्राभूषणोमे इतने सुन्दर और प्यारे लग रहे थे, कि उनकी रूप-छविको देखकर वर-पक्ष और कन्या पक्ष के सभी नर-नारी आनन्द विभोर हो रहे थे। बलभद्रकी माता रोहिणी और कृष्णकी माता दवकीके सुख और आनन्दका तो ठिकाना ही न था।

सत्यभामा और रेवती अपनी अनेक कलाओ, विद्याओ, गुणो और चतुराईसे आदर्श वन्धुओके समान अपने पतियो—कृष्ण और बलभद्रके मनको मोहने लगी। वे समयानुसार उचित कर्तव्य करती। इनके सद्व्यवहारसे इनके सास-श्वसुर सभी प्रसन्न थे।

उधर जीवयशा अपने पतिके वधसे अति दुखी, बदलेकी कलुष भावनाओसे पूर्ण, अपने रुदन-विलाप, विखरे केशो और मुरझाये शरीर आदिसे समुद्र के समान अपने पिता जरासिधके मनमे क्षोभ उत्पन्न करनेमे सफल हो गई। उसने यादवोके दोषो और अपराधो

को पिताको वताते हुए कहा, "हे पिता ! समस्त पृथ्वीके आप स्वामी है और आपके होते हुए मेरा पति मारा जाय, मै विधवा वन जाऊँ ! यह आप कैसे सहन करेगे ? आप उनसे बदला ले। जव तक यादवोके रुधिरको उनके सिरोके सरोज पात्रमे भर कर पति-को पानी न दूगी, मुझे सन्तोप न होगा, मेरा क्रोध शात न होगा।" पुत्रीके दु ख और विलापसे दुखी जरासिध जीवयशाको कहने लगा, "हे पुत्री ! तू शोकको त्याग दे। जीवके पूर्वोपार्जित कर्म प्रबल होते हैं। किसीका किया कुछ नही होता, जो होनी होती है, वह होती है। भवितव्यके आगे किसीका वश नही चलता। यादवोका वुरा होनहार है, जो उन्होने उन्मत्त होकर तेरे पतिको मारा है। वे अवश्य मरना चाहते है। उन मूर्खोने यह नही सोचा कि कसकी पीठपर उसका श्वसुर जरासिध है। तेरे ही चरणोकी वे शरण आये और तेरे लिए ही कटक वने, तो समझले कि उनका नाम कोई न सुनेगा। उनका कुल, रूप तथा बल वहुत ही वढ गया है। उसीका घमण्ड उन्हे हो गया है। अव तुम ही उन्हे मेरे क्रोध रूपी दावानल-मे भस्म हुआ देखना।"

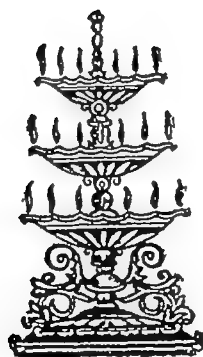
पिताके इन सात्वनापूर्ण तथा आश्वासनदायक शब्दोको सुनकर जीवयशाकी क्रोधाग्नि बुझ गई।

राजा जरासिधने कालके सदृश अपने पुत्र कालयवनको यादवो के नाशके लिए सेना सहित भेजा, पर वह सत्रह वार आक्रमण करनेपर भी उन्हे न जीत सका। हार कर वह मालावर्त पर्वत पर भाग गया।

राजकुमार कालयवनके हार कर भागनेका समाचार सुनकर राजा जरासिध वडा चिंतित हुआ। अव उसने अनेक युद्धोके विजेता अपने भाई पराजितको यादवोसे युद्ध करने के लिए भेजा। यादव शत्रुओके समूहको नष्ट करनेको अभिलापी अपराजित यादवोपर

प्रबल काल रूपी अग्निके समान प्रज्वलित अपनी सेनाको प्रेरित करके आगे बढा। अपराजितने यादवोसे बहुतसे युद्ध किये, पर कृष्णके बाणोकी मारको वह सहन न कर सका और हारके कष्ट निकालनेके लिए वीर शय्या पर सदाके लिए सो गया।"

यह समस्त कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई। अन्तमे उन्होने कहा कि जैन धर्मकी मेघधारासे इस पृथ्वी पर अनेक प्रकारके फल उपजते हैं। यह धर्म जल धारा लक्ष्मी और कीर्तिको उत्पन्न करती है और मोक्ष देती है। धर्म सबको हर्ष तथा सुख देता है।



श्री नेमिनाथ जन्म

गोतम गणधर स्वामी राजा श्रेणिकको तीर्थंकर नेमिनाथके गर्भ और जन्मका वर्णन सुनाने लगे।

पहले यह कहा गया था कि राजा समुद्रविजयके घर नेमिनाथ तीर्थंकरका जन्म होगा। राजा अधक वृष्टिके दस पुत्र थे, जिनमे सौर्यपुरका राजा समुद्रविजय सबसे बडा था। उसकी रानीका नाम शिवदेवी था। नेमिनाथके गर्भमे आनेसे छह महीने पहले ही देव राजाके घरमे रत्नोकी वर्षा करने लगे।

एक दिन रातके पिछले पहरमे रानी शिवदेवीको सोलह स्वप्न दिखाई दिये। पहले स्वप्नमे रानीने मद झरता, चिघाडता और कैलास पर्वतके समान वर्णवाला श्वेत हाथी देखा। दूसरे स्वप्नमे ऊँचे सीगो, लम्बी पूंछ और दीर्घ कधोवाला सफेद बैल देखा। तीसरे स्वप्न मे रानीने सफेद रंगका दहाडता हुआ और उज्वल दाढोवाला सिह देखा। चौथे स्वप्नमे रानीने लक्ष्मी देखी जिसको हाथी कलशोसे स्नान करा रहे थे। पाचवे स्वप्नमे आकाशमे दो निर्मल पुष्पमालाएँ देखी। रानीने छठे स्वप्नमे अन्धकार नाशक चन्द्रमा देखा। सातवे स्वप्नमे रानीने सूर्य और आठवे स्वप्नमे मछलियोका जोडा देखा, जो जलमे क्रीडा कर रहा था। नवे स्वप्नमे रानीने कमलके पत्तोसे ढके दो जलपूर्ण कलश और दसवे स्वप्नमे पवित्र जलपूर्ण निर्मल सरोवर देखा। ग्यारहवे स्वप्नमे रानीने मूँगा-मोती पूर्ण ऊँची तंरगोवाला

समुद्र और बारहवे स्वप्नमे महासुन्दर मणि आदिसे जडा हुआ सिंहासन देखा। तेरहवे स्वप्नमे रानी शिवदेवीने एक सुन्दर विमान देखा। और चौदहवे स्वप्नमे पातालसे निकलता नागेन्द्रका भवन देखा। पन्द्रहवे स्वप्नमे रानीने वहुत ऊँची रत्न राशि देखी, जिसके प्रकाशसे आकाशमे नाना रगोका इन्द्रधनुष वन गया और सोलहवे स्वप्नमे राजा समुद्रविजयकी प्रिया शिवदेवीने महापवित्र कातिवाली निर्धूम अग्नि देखी। इन स्वप्नोके अन्तमे रानीने एक श्वेत हाथीको अपने मुख मे प्रवेश करते देखा।

कार्तिक सुदी छठके दिन रानी शिवदेवीने अपने गर्भमे तीर्थंकर नेमिनाथको धारण किया। इन स्वप्नोके पश्चात् "जय, जय" शब्दो और मगलगानसे जागृत और आलस्य रहित होकर रानी प्रात. मगल-स्वरूप वस्त्राभूषण पहनकर स्वप्नोका फल पूछने राजाके समीप गयी। राजाने वडे प्रेम और आदरसे रानीको सिंहासन पर विठाया। रानीके द्वारा इन सोलह स्वप्नोका फल पूछनेपर राजा समुद्रविजयने कहा, "हे प्रिये! तू त्रिभुवनके स्वामी तीर्थंकरको जन्म देगी। तेरा पुत्र भगवान्, महतोका महत और जगत्रयका गुरु होगा। तू धन्य है। मै इन सोलह स्वप्नोका फल सक्षेपमे तुम्हे बताता हूँ। शुक्लवर्णका हाथी देखनेका यह फल है, कि तेरा पुत्र सब मे श्रेष्ठ सबका एकाधिपति और सर्वोत्कृष्ट होगा। श्वेत वृषभ देखने का अभिप्राय यह है, कि तेरा पुत्र कलक रहित बुद्धिवाला, अपने गुणोसे अपने कुल और तीन लोकको शोभित करनेवाला, धर्मरथको और मोक्षमार्गको चलानेवाला होगा। स्वप्नमे सिंह देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र अत्यत वीर्यका धारी मिथ्यादृष्टियोके मदको हरनेवाला, अद्वितीय वीर और तपोवनका ईश्वर होगा। तुमने जो अभिषेक करती लक्ष्मी देखी है, उसका आशय यह है, कि जन्म समय सुरेन्द्र तेरे पुत्रका अभिषेक करेगे। दो पुष्पमालाए देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र सुगन्धित शरीरका धारक, अनन्त दर्शन-ज्ञानका धारक, लोक

और अलोक का ज्ञाता-द्दष्टा होगा और जो तूने स्वप्नमे चन्द्रमा देखा है, उसका अभिप्राय यह है, कि तेरा पुत्र जिनेन्द्र चन्द्र जगतका अधकार हरनेवाला होगा। सूर्यको स्वप्नमे देखनेसे तेरा पुत्र अपने प्रचण्ड तेजसे समस्त तेजस्वियोके तेजको जोत कर जगतमे तेजोनिधि होगा। और अन्तर वाह्यके अधकारको नष्ट करेगा। हे मृग नेत्रे ! मछलियोके जोडेको देखने का फल यह होगा, कि तेरा पुत्र इन्द्रियो-का भोग-उपभोग त्याग कर सिद्ध लोकमे अनन्त सुखरसका भोक्ता होगा। हे प्रियभाषिणी ! दो पूर्ण कलशोको स्वप्नमे देखनेका फल यह है, कि तेरा घर नव निधिसे पूर्ण होगा, तेरे पुत्रके सब मनोरथ पूरे होगे और उसके प्रभावसे जगत आनन्दरूप होगा। अनेक कमलोसे भरा जो सरोवर तूने देखा है, उसके परिणाम-स्वरूप तेरा पुत्र समस्त लक्षणोसे मण्डित होगा, महा ज्ञानी, तृष्णा रहित और मोक्षगामी जीवोकी तृष्णा दूर करके स्वय निर्वाण प्राप्त करेगा। गम्भीर समुद्र देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र समुद्र समान गम्भीर बुद्धि होगा और अनेक भव्य जीवोको अमृत रस पिलायेगा। रत्नोका सिहासन स्वप्नमे देखनेका फल यह है, कि उसके सिहासनको सब सेवेंगे और जो सबके द्वारा पूज्य सिहासन है, तेरा पुत्र उस पर विराजेगा। विमानको देखनेका फल यह है, कि जयत नामक विमान से प्रभु तेरे गर्भमे आयेंगे और हे प्रिये ! तूने जो नागेन्द्रका भवन निकलता देखा, उससे तेरा पुत्र मति श्रुति और अवधि तीन ज्ञानका धारक होगा। रत्नराशिको देखनेके कारण तेरा पुत्र गुण रत्नोकी राशिका धारक होगा। तूने जो निर्धूम अग्नि स्वप्नमे देखी, उसके फल-स्वरूप तेरा पुत्र शुक्ल ध्यान रूप अग्नि से समस्त कर्मोको भस्म करेगा। ऐसे पवित्र चरित्रवाले जिनेन्द्र सूर्यको जन्म देनेसे तू अपने वशको, अपनेको, मुझे और इस जगतको पवित्र करेगी।"

रानी शिवदेवी अपने पति के मुखसे स्वप्नोके ये फल सुन कर चित्तमे अति हर्ष मनाने लगी। इतना ही नही, वह यह मानकर

कि सर्वगुण सम्पन्न पुत्र उसकी गोदमे आ गया है, जिन-पूजा आदि प्रशसा-योग्य शुभ क्रियाए करने लगी।

जब प्रभु गर्भमे आये, तव माता शिवदेवीके गर्भकी और ही प्रभा हो गयी। न उसकी त्रिवली भग हुई और न उष्ण श्वास निकले। न उसे आलस्य हुआ और न उसके होठोका रग फीका पडा। इनके गर्भमे आते ही माता शिवदेवीका मन समस्त जीवोकी दयासे भर गया, मनमे निरन्तर तत्त्वोका विचार रहने लगा। उसके वचन सब जीवोके हित भाषणमे और जीवोका सन्देह निवारणमे प्रवृत्त रहने लगे। उसका शरीर व्रतरूपी आभूषणोसे सज गया और विनयके पोषणमे प्रवृत्त रहने लगा।

राजा समुद्रविजय महासमुद्रकी लीला, रग और रूपको धारने लगा। माता-पिता सभी सुर-नर और विद्याधरोके पूज्य बन गये। राजा-रानीका परस्पर स्नेह खूब बढ गया।

नौ महीने पूरे होने पर शुभ तिथि बैसाख शुक्ला त्रयोदशीको चित्रा नक्षत्रमे रात्रिकी शुभ वेलामे रानी शिवदेवीने मोक्षदाता, जगत मे प्रकाश करनेवाले, जीवोका मन हरनेवाले जगदीशको जन्म दिया। भगवान् नेमिनाथ हरिवशके आभूषण, तीन ज्ञान रूप नेत्र और एक हजार आठ गुणो को धारण करनेवाले थे। उनका शरीर नीले कमल समान श्यामसुन्दर, कातिमान था और वह दशो दिशाओ और प्रसूतिगृहको जगमगाने लगा था। जिनेन्द्र चन्द्रके जन्मसे जगत-मे हर्षका समुद्र लहरे मारने लगा और समस्त लोक हर्षसे नाच उठा। जन्म समय दैवी शख, ढोल, सिह-नाद तथा घण्टे शब्द करने लगे। इन्द्र आदिके सिहासन और मुकुट कम्पायमान होने लगे। तव वे अपने ज्ञानसे भगवान्के जन्म कल्याणकको समझकर आनन्द विभोर हो उठे। उन्होने भरत क्षेत्रकी तरफ प्रस्थान किया। विशुद्ध

दृष्टिवाले अहिमन्द्र देवने प्रभुके जन्मको जानकर सिहासनसे उठकर सात पग जाकर जिनराजके चरणारविन्दको नमस्कार किया।

सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्रानियो सहित ऐरावत हाथी पर सवार होकर देवाधिदेव तीर्थंकरके दर्शनको आये। भगवान् के जन्मके समय देवियाँ नाना प्रकार के आभूषणोसे सुसज्जित माता शिवदेवीके निकट श्वेत छत्र लिये खडी थी। और सिर पर चवर डुला रही थी। इन्द्रने आकर शचि नामक इन्द्रानीको प्रभुको प्रसूतिगृहसे लाने की आज्ञा दी। देवीने एक मायामयी वालक माताके पास छोड़कर माता शिवदेवी और नवजात शिशु तीर्थंकरको नमस्कार करके उस पुत्रको अपने कोमल करो से लाकर इन्द्रको सौप दिया। फिर वे भगवान्को ऐरावत हाथीपर सवार करके सुमेरु पर्वतपर लाये और वहाँ पाण्डुक शिलापर सिहासन पर भगवान्को बिठाकर पूजा, स्तवनो, गीतो और नृत्यके वीच उनका भक्तिपूर्वक स्वर्णमय कलशोमे भरे दूधसे महाअभिषेक किया। जन्म कल्याणकका यह दृश्य अति अद्भुत और भक्तिभावपूर्ण था। फिर अभिषेकके पश्चात् भगवान्को सुन्दर वस्त्र, आभूषण और पुष्पमालाएँ पहनायी। तव उनका नाम अरिष्टनेमि रखा। फिर सवने भगवान्की प्रदक्षिणा की।

सुरपतिने जिनेन्द्र भगवान्की स्तुति करते हुए कहा, "हे त्रिलोकीनाथ! आप विना पढ़ाये सकल श्रुतिके पारगामी, मति, अवधि निर्मल ज्ञानके धारक, मोहनिद्रा-रहित हो। आप समस्त जगत्को देखते हो और सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चरित्र रत्नत्रयसे युक्त हो। पूर्वजन्ममे आपने उग्र तप करके सोलह कारण भावनाए करके तीर्थंकर प्रकृतिका उपार्जन किया। देवोके समूह आपके चरणोकी सेवा करते हैं। आपके मुख कमलका दर्शन करते-करते तृप्ति नही होती। आपके यशसे भरत क्षेत्र और हरिवश पवित्र हो गये है। आपकी दीप्तिने सूर्य और पूर्णचन्द्रमाकी काति जीत ली है, वे मन्द पड गये

है। आपको बार-बार नमस्कार। आप तीन भुवनके परमेश्वर, सब जीवोपर दयालु है। अब आप अपार दुःखसे पूर्ण ससार-समुद्रको पार करके मोक्ष जाओगे। मोक्ष पद समस्त जगतका शिखर है। उसके अग्रभागमे सिद्ध परमेष्टि विराजते है। आप निर्वाण पदके अतीन्द्रिय, अखण्ड और अविनश्वर सुखको भोगोगे। वह सुख केवल भगवान्के सेवन योग्य है और सबका—देवो तथा मनुष्योका—सुख उसके सामने तुच्छ है, उसका अनतवाँ भाग भी नही है। ससारके समस्त पदार्थोंका निरूपण करनेवाला आपका ही मार्ग है। उसको पालनेसे प्राणी परम पद प्राप्त करते है। इस जगतके जीवोको कृतार्थ करनेवाले आप ही है। हम आपके गुणोकी प्राप्तिकी वाछासे आपकी आराधना करते हैं। आप सर्वोच्च है। सुमेर भी आपके स्नानका आसन बना था। हे वीतराग देव! हे सर्वज्ञ देव! आपको नमस्कार।" इस प्रकार श्री नेमिनाथकी स्तुति और उनको प्रणाम करके यह वरदान मागने लगे कि वे जन्म-जन्ममे उनकी भक्ति करे क्योकि भगवान्की भक्ति ही ससार-सागरसे पार उतारनेवाली है।

अभिषेक और स्तुतिके पश्चात् इन्द्र आदि भगवान्को ऐरावत हाथीपर सवार करके गीत गाते, नृत्य करते और बाजे बजाते सौर्यपुर लौटे। वे भगवान्को बढने, फलने-फूलने, चिरकाल जीवी होने आदिके अनेक आशीर्वाद दे रहे थे।

इस समयकी सौर्यपुरकी शोभा अवर्णनीय थी। नगर ऊची-ऊची ध्वजाओसे सजा हुआ था। बाजोके मधुर गम्भीर नादसे दसो दिशाए गूँज रही थी। महा मनोज्ञ सुगधित जलकी वर्षा हो रही थी। वहाँ पुष्पोकी इतनी वर्षा हुई, कि गलियाँ पुष्पपूर्ण हो गयी। सौर्यपुर लक्ष्मीका निधान, अनेक निधियोसे भरपूर और महा मगल पूर्ण था। वह नगर भगवान् नेमिनाथके जन्मसे ऐश्वर्य और आश्चर्य से परिपूर्ण हो गया। भगवान् नेमिनाथ पृथ्वीमे आनन्दको प्रकट

करते और जनताका प्रमोद वढाते हुए आये । वे आयुमे तो बालक थे, पर गुणोसे वृद्ध थे अर्थात् अपनी आयुकी अपेक्षा बहुत अधिक गुणवान् थे । इनके जन्मसे सौर्यपुरकी प्रजा और राजा समुद्रविजय कमलोके वनके सदृश प्रफुल्लित हो उठे । इन्द्रने ऐरावत हाथीसे भगवान्को उतारकर माता शिवदेवीकी गोदमे दिया । इस समय इन्द्र और इन्द्रानियो और देवियोने जो नृत्य तथा गान किये, वे अवर्णनीय थे ।

इन्द्र देवोको भगवान्की सेवा, प्रमोद, दिल बहलाने तथा रक्षाके लिए नियत करके अपने स्थान लौटा । इस प्रकार भगवान्का जन्मोत्सव पूर्ण हुआ ।



: २३ :

जरासिंध का यादवों पर आक्रमण

जब जरासिधने अपने भाई अपराजितके युद्धमे मारे जानेका समाचार सुना तो वह शोक रूपी समुद्रमे डूव गया। उससे पहिले उसका पुत्र कालयवन भी यादवोसे हारकर पर्वतोमे भाग चुका था। कस-वधका समाचार सुनकर जरासिधके क्रोधकी मीमा न रही। यद्यपि उस महाशोकमे उसके प्राण जानेकी सम्भावना थी, पर यादवोसे बदला लेने और युद्ध करनेके विचारसे उसके प्राण शरीरमे स्थिर रहे। वह अपने जमाई कस और भाई अपराजितको मारने और वेटे कालयवनको पराजित करनेका यादवोसे बदला लेनेके लिए उनसे लडनेको तैयार हो गया।

जरासिंधने अपने सव मित्र राजाओसे यादवोके नाशके उपायो आदिके सम्बन्धमे मत्रणा करके युद्ध की आज्ञा दे दी। राजा जरासिंध राजनयका ज्ञाता और पुरुपार्थी था। उसका आदेश पाते ही समस्त मित्र राजा तथा स्वामीभक्त राजा अपनी-अपनी चतुरग सेनाएँ लेकर उसके पास आ गये। सेनाओका समुद्र ठाठे मार रहा था। जिधर देखो उधर सैनिक ही सैनिक। इस समस्त सेनाको लेकर जरासिंधने यादवोपर चढाई की।

जब जरासिधके आक्रमण का समाचार चतुर गुप्तचरो द्वारा यादवोको मिला, तो अधकवृष्टि और भोजकवृष्टिके वशके वयोवृद्ध

राजनेता इस आगामी युद्ध-सकटके सम्वन्धमे मत्रणा करने लगे। यादवोने सोचा कि जरासिध तीन खण्डका स्वामी है और उसकी आज्ञा अखण्ड है। वह इतना प्रचण्ड है कि कोई उसे जीत नही सकता। उसके पास सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री है। वह अपने कृतज्ञ सेवकोका गुण माननें वाला है। और जो कोई उससे द्वेष करता है पर फिर उसे प्रणाम करता है, जरासिध उसे क्षमा भी कर देता है। उसने पहिले अनेक उपकार ही किये हैं, किसी का वुरा नही किया। पर अव उसका जमाई कस मारा गया, भाई अपराजित भी मारा गया और उसका पुत्र कालयवन यादवोसे हारकर भाग गया, इसे वह अपना अपमान समझता है। अव उस अपमान के मॅलको धोनेके लिए वह महा कोपवान है। वह गर्ववान् इतना है, कि अपने वल और सामर्थ्यको देखता हुआ भी नही देखता। यद्यपि उसे कृष्णके पुण्य और सामर्थ्य और वलभद्रका पुरुपार्थ वाल्यावस्थासे ही मालूम है, पर इस समय उसे वे भी दिखाई नही दे रहे थे। इसी यदुवगमे अव नेमिनाथ तीर्थंकर भी जन्म ले चुके है। उनका प्रभुत्व भी तीन लोकमे है। जिस तीर्थंकरकी सेवामे समस्त लोकपाल सावधान रहते है, उसके कुलको कौन हानि कर सकता है ? जिस कुलमे तीर्थंकर जन्म ले, वह कुल अपराजित होता है। ऐसा कौन है जो आगको हाथसे स्पर्श करे और उसके तापसे वच जाय ? तेज और प्रताप रूपी अग्निकी ज्वालासे युक्त ऐसे तीर्थंकर, वलदेव तथा वासुदेवके सन्मुख जीतनेकी इच्छा कौन कर सकता है ?

यद्यपि जरासिध प्रतिनारायण है, पर उसका नाश करनेवाला यह वलभद्र नारायण इस यदुकुलमे पैदा हुआ है। राजनेताओने मत्रणा की, कि इस लिए जव तक कृष्ण रूपी अग्निमे यह प्रति-नारायण जरासिव रूपी पतग अपने पक्षके योद्धाओके साथ स्वय आकर न भस्म हो, तव तक कालक्षेप करना, समयको टालना ही

उचित है। यह युद्ध-नीति संगत है। इसलिए कुछ दिनोंके लिए हमे शूरवीर कृष्णको यहाँसे दूसरे स्थान पर ले जाना उचित है। यह कृष्ण तीन खण्डको जीतनेवाला योद्धा है, पर इस समय वह जरासिंधसे लडनेमे समर्थ नही है। इसलिए इस स्थानको त्याग कर हम सब कुछ दिनो के लिए पश्चिम दिशामे किसी और स्थान पर रहे। कार्य को सिद्धि अवश्य होगी। यदि जरासिंध वहाँ भी आये, तो उस रण प्रेमीको वहाँ रणमे प्रसन्न करे।

यदु वशके वयोवृद्ध राजनेताओने आपसमे यह मत्रणा करके अपनी समस्त सेनामे सूचना दे दी। विगुल वजवा कर सबको चलनेके निर्णयसे सूचित किया गया। सब ही सेना और चारो वर्णोंकी प्रजा कुटुम्ब सहित यादवोके साथ चलनेको तैयार हो गयी। मथुरा, सौर्यपुर और वीर्यपुरके सभी नरनारियोने ऐसे प्रस्थान किया, मानो वे वन-क्रीडाको जा रहे है। उनके साथ अपरिमाण धनराशि वाहनोमे लदी थी। वे शुभ तिथि और शुभ नक्षत्रमे अपने स्थानसे चल पडे। यद्यपि बलदेव और वासुदेवके मनमे तब भी यह विचार आया, कि चलनेकी अपेक्षा जरासिंधसे लडा जाय, परन्तु बडोकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होने प्रस्थान ही किया।

मथुरा आदिसे यादवो, सेना और नर-नारियोका वह प्रस्थान कल्पना करने योग्य ही था। अनेक नदियो, वनो, पर्वतो और प्रदेशोको पार करते हुए वे पश्चिमकी ओर चले और विन्ध्याचलके समीप डेरा डाला। विन्ध्याचल पर्वत हाथियो, शेरो और अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके कारण बडा रमणीक है। उसके शिखर आकाशको छू रहे है। उसकी शोभाने सभी के मनको मोहित किया।

यादवोके प्रस्थानकी सूचना पाकर जरासिंधने उनका पीछा किया। जब यादवोको जरासिंधके पीछो करनेकी सूचना मिली, वे उत्सव मनाकर युद्धके लिए तैयार हो गये। दोनो पक्षोकी सेनामे

थोडा सा ही अन्तर रह गया था। आशका थी कि दोनो पक्षोमे युद्ध छिड जाय।

तभो वहाँ एक कल्पनातीत घटना घटी। दोनो सेनाओके बीचके स्थानमे प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो गयी। सब तरफ आग ही आग दिखाई देने लगी। अग्निकी लपटे आकाशको छू रही थी। यादवोके अधीश अग्निमे जले दिखाई देने लगे। सब सेना जली भस्म हुई प्रकट हुई। स्थान-स्थान पर इनके आभूषण और वस्त्र पड़े थे। हाथी और घोडे इधर-उधर भाग-दौड रहे थे। बुरा हाल था उनका। यह सब देव-रचित माया थी।

वही एक बुढिया बैठी जोर-जोरसे रो रही थी। जरासिधने उसे देखकर पूछा, "यह किसकी सेना जल रही है? तू क्यो रो रही है?" तब उस वृद्धाने कष्टसे रोते हुए लम्बे-लम्बे श्वास भरते हुए कहना आरम्भ किया, "हे तेजस्वी! राजगृह नगरमे प्रसिद्ध जरासिध राजा राज करता है। वह सत्यवादी है और उसकी प्रताप रूपी अग्नि वडवानलका रूप धारण करके समुद्रमे भी प्रज्वलित है। उससे वैर करनेमे कौन समर्थ है? यादवो पर कृपा करनेमे उसने कसर न छोडी, पर उन्होने अपराध पर अपराध किये और उस अपराध के प्ररिणामसे वचने के लिए वे किसी दिशामे प्रस्थान कर गये। समस्त पृथ्वी पर कही उनको शरण न मिली। चक्रवर्तियोके कोपसे कौन कहाँ वच सकता है? इसलिए उन्होने मरणको ही अपनी शरण समझ कर अग्निमे प्रवेश करके अपनेको भस्म कर लिया है। मैं उनके वडोकी दासी हूँ, इसलिए अपने स्वामियोकी दुर्बुद्धि देखकर दुःखी होकर रुदन कर रही हूँ। मै इतनी वड़ी हो गई, फिर भी मैं उनके साथ न जल सकी और आज भी जीनेकी आशा है। सभी यादव राजा अपनी प्रजाके साथ अग्निमे जल गये और मैं दुखिया स्वामियोके वियोगसे दुखी विलाप कर रही हूँ।"

उस वृद्धाके वचन और अंधकवृष्टि और भोजकवृष्टि के मरनेका समाचार सुनकर जरासिंधको बडा आश्चर्य हुआ। उसे हर्ष हुआ कि बिना लडे ही उसके शत्रु नष्ट हो गये। इसके पश्चात् जरासिंध अपने स्थानको वापिस आया। जलने वाले यादवोमे जो राजा जरासिंधके सम्बन्धी थे, वह उनको पानी देकर कृत-कृत्य होकर सुख से रहने लगा।

यह बुढिया एक देवी थी, जिसने रूप वदल कर बुढियाका बहाना करके जरासिंधको वापिस फेरा।

चलते-चलते यादव अपनी इच्छासे पश्चिमके समुद्रके वनोमे आये। उस वनमे लौंग, इलायची, दालचीनी आदि उत्पन्न होते है। वहाँ शीतल मन्द सुगन्धित पवन पर्यटकोको सुख दे रही है। दूर देश से आये ये यादव नृप पश्चिम सागरके तटपर अपनी प्रजा सहित डेरे डाले हुए हैं।

जिनके पुण्यका उदय होता है, शत्रु उनका वाल भी बाँका नही कर सकता।। इसलिए विवेकशील स्त्री-पुरुषोको धर्ममे स्थिर रहना चाहिए, क्योकि धर्मके प्रभावसे विघ्न टलते है।

यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई।

: २४ :

द्वारिका निर्माण

पश्चिमी समुद्रके तटपर डेरे डाल देनेके वाद श्री नेमिनाथ, राजा समुद्रविजय, उनके भाई और भोजकवृष्टि के पुत्र सभी समुद्र तटपर सैर करने और प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द उठाने गये। पश्चिम समुद्रकी छटा और सौन्दर्य कौन कवि वर्णन कर सकता है? उसमे उठनेवाली तरगोसे वह झूमते हुए मस्त हाथीके सदृश दिखाई दे रहा था। उसमे अनेक लहरे उठ रही थी। जलके मण्डल ऊँचे उछल रहे थे। उसमे फिरनेवाले मगरमच्छो तथा मछलियोको यादव वर्ग आनन्दपूर्वक देखने लगे। वह समुद्र गम्भीर, उसका तल अथाह और उसकी तरगें अति उत्तुग और चचल थी। उसमे अनेक नदियाँ गिरकर उसके जल और सौन्दर्यको बढा रही थी। समुद्रकी निर्मलता और विस्तीर्णता आकाशकी शोभाको अपनाये हुए थी। वह समुद्र अपने महान् उदरमे अनेक जलचरो तथा जीव-जन्तुओका पालन-पोषण तथा रक्षा कर रहा था। यह समुद्र उतना ही अलघ्य था, जितना कि जिन-मार्ग वादियों या तार्किको द्वारा अलघ्य है। जिन-मार्गके समान यह समुद्र भी सबको शीतलता देता है और उनके आतपको दूर करता है। ऐसे समुद्रको देखकर वे सब भद्रवर्गी बहुत प्रसन्न हुए। मथुरा आदि मे उन्होने यमुना तो देखी थी, वहाँ समुद्र कहाँ था?

समुद्रकी लहरोके साथ जो मूगे-मोती आदि अनेक रत्न तट पर आ रहे थे, वे मानो प्रसन्न समुद्र द्वारा भगवान् नेमिनाथके

चरणोमे चढायी हुई पुष्पाजलि थी। समुद्रका उछलना और गरजना यदुओको प्रसन्न करनेके लिए नृत्य और गानके समान थे।

समुद्र अपनी लहरो और ध्वनिके द्वारा श्री कृष्णका आदर-सत्कार कर रहा था। उस समुद्रका लहरोके रूपमे उठना बलभद्र के सत्कारमे उठना था। इस प्रकार वह समुद्र उस समय अपने तट-पर आये समस्त यादवोका यथायोग्य आदर-मान कर रहा था।

यादव अपने देशको छोडकर नया स्थान तलाश करने और निवास करने आये थे। शुभतिथिमे बलभद्र और कृष्णने तीन उप-वास किये, कुशासन पर समुद्रतटपर बैठकर णमोकार मत्रका जाप किया। नया नगर बसानेके लिए जितने तपकी आवश्यकता थी, वह उन्होने किया।

देवोने वहाँ थोडेसे समयमे ही द्वारिकापुरीका निर्माण कर दिया। यह नगर लम्बा चौडा था, परकोटे, खाई, बाजार, गली-कूचो, वाटिकाओ तथा मीठे जलके कुओ, भवनो, महलो तथा बाजारो आदि वाला था। उसमे मन्दिर भी थे। किसी चीजकी कमी न थी। उसके भवनोके शिखर आकाशसे बाते करते थे। उसके आस-पास बाग-बगीचोमे लताएँ, फलदार वृक्ष, नागर-बेल, लौंग, सुपारी, इलायची, अगरु और चन्दन आदि के अति सुन्दर वृक्ष थे। ये बाग नन्दन-वनकी शोभाको भी मात कर रहे थे। इन सब बातोके कारण द्वारिकापुरी स्वर्गपुरीके समान सुन्दर लग रही थी।

नगरमे समुद्रविजय आदि दस भाइयो, पुत्रो और रानियोके लिए अनुक्रमसे महल बनाये गये थे। बलदेव, कृष्ण और उग्रसेन सबके लिए अलग-अलग भवन थे।

कुबेरने कृष्णको मुकुट, हार, मणि, पीतवस्त्र, आभूषण, गदा, खड्ग, धनुष, दो तरकस और वज्रमई बाण दिये। इनके अतिरिक्त

कृष्णको सर्व आयुधोसे पूर्ण रथ भी दिया, जिसपर गरुडका झण्डा, चमर और सफेद छत्र थे ।

इसी तरह कुबेरने बलभद्रको भी नीले वस्त्र, रत्न माला, मुकुट, गदा, हल, मूसल, धनुष-बाण, दो तरकस दिये और उसने दिव्य अस्त्रोसे भरा रथ भी बलभद्रको दिया, जिस पर ताडके पत्रके आकारका झण्डा और चमर-छत्र थे । समुद्रविजय आदि सभी राजाओ तथा रानियोको उनके लिए उपयुक्त वस्त्राभूषण आदि दिये ।

भगवान् नेमिनाथको उनकी रुचि और अवस्थाके योग्य सभी वस्तुएँ ऋतु अनुसार हमेशा मिलती रहती थी ।

इसके पश्चात् कुबेरने यादवोको द्वारिकापुरीमे प्रवेश करने और प्रजाको उसमे बसानेकी प्रार्थना की । जैसे देवता स्वर्गमे प्रवेश करते है, वैसे यादवोने द्वारिकामे प्रवेश किया और अपने-अपने नियत भवनोमे रहना शुरू किया ।

द्वारिकामे रहना शुरू करने पर मथुरावासियोने अपने मुहल्लेका मथुरा नाम रख दिया, सौर्यपुरवालोने अपने भागका नाम सौर्यपुर रखा और वीरपुरवासियोने अपने निवास स्थानका नाम वीरपुर रखा । इससे द्वारिकाके मुहल्ले आदि के नाम भी रखे गये और पुराने निवास-स्थानोके स्मारक भी बन गये ।

श्री नेमिनाथ चन्द्रमाके समान समस्त कलाओके साथ बढने लगे । वह उदय होते सूर्यके सदृश शोभायमान थे । समुद्रविजय आदि दसो भाइयोके कमल रूपी शरीरोको नेमिनाथ रूपी सूर्य प्रफुल्लित करने लगा । नेमिनाथने सूर्यके समान अपनी ज्योतिसे समस्त अंधकारको दूर कर दिया । नेमिनाथने बलदेव और कृष्णके आनन्दको बढाना आरम्भ किया । समस्त यादवोकी रानियाँ नेमिनाथकी चाचियाँ आदि लगती थी । उन सबका ही वह प्यारा था । सभीकी

गोदमे वह बालक नेमिनाथ खेलता था। सबका दुलारा, प्यारा और आँखोका तारा था।

जब नेमिनाथ युवा हुए, तो उनके अनुपम तथा अद्वितीय रूप-सौन्दर्य की शोभा अवर्णनीय थी। नगरके नर-नारियो की दृष्टि सिवाय नेमिनाथके और किसी पर न टिकती थी। सब इनको देख कर मोहित होते थे, पर नेमिनाथ का मन किसीको देखकर मोहित न होता था। इतना ही नही, जब भाई-बन्धु नेमिनाथके पास शृंगार रसकी चर्चा करते या इनके विवाहकी बात चलाते, तो ये शर्माकर गर्दनको नीची कर लेते। तीन प्रकारके ज्ञानसे जिस नेमिनाथने मोह रूपी कलकको धो डाला है, उनके मनको ससारकी मोह-माया रूप की धूल कैसे मैला कर सकती थी ?

द्वारिकापुरी तो निस्सन्देह सुन्दर थी ही, पर नेमिनाथ आदिके गुणोसे उसकी सुन्दरताको चार चाद लग गये।



२५ :

रुक्मणी हरण और शिशुपाल वध

एक दिन जव यादवोकी सभा लग रही थी, तव नारद आकाश से विमानसे वहाँ आये। नारदकी जटाये पीली, दाढी-मूछ सफेद, पर शरद ऋतुके मेघके समान उज्ज्वल थी। उनके शरीरकी प्रभा विजलीके प्रकाशके समान थी। वहुरगे और विस्तीर्ण योग पटसे उनकी शोभा सुन्दर लग रही थी। वे अपने हिलते हुए वस्त्र, कोपीन और दुपट्टा पहने हुए सभामे ऐसे आये, जैसे जगतकी भलाईके विचार से कल्पवृक्ष आते हैं। उनके कण्ठमे यज्ञोपवीतका सूत्र ऐसा लग रहा था मानो वे रत्नत्रय युक्त हैं। मन, वचन और कायाकी शुद्धतासे जन्मसे धारण किये हुए वाल-ब्रह्मचर्यसे उज्ज्वल, रूप और महा पाण्डित्यके कारण उनका प्रभाव अद्वितीय था। उनकी प्रकृति मिथ्यात्व रहित होनेसे पवित्र थी। वलदेव और वासुदेव तो राज्यके उदयसे राजाओ द्वारा पूजित थे पर नारद काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्याके छह शत्रुओको जीतनेके कारण विना राज्यके ही सवके पूज्य थे।

जव नारद आकाशसे उतरकर सभामे आये, तव सभी राजाओ ने शीस नवा कर खडे होकर उन्हे नमस्कार किया, भक्तिसे उनके चरण पूजे और वैठनेको आसन दिया। नारदको तो केवल सम्मान से हर्ष होता था। किसीसे उसे और कुछ नही चाहिए था। वसुदेव और वासुदेव सवने नारदका सम्मान किया, पर नारद नेमिनाथ

जिनेश्वरको नमस्कार करके सभामे बैठे। तीर्थंकर नेमिनाथके दर्शन करके और उनके वचन सुनकर नारदको अति हर्ष हुआ। उसकी यह अभिलाषा थी, कि वह निरतर प्रभुके दर्शन करता रहे, वचन सुनता रहे। फिर नारदने सभी तीर्थंकरोकी कथा और सुमेर पर्वतकी यात्राका वर्णन सभाको सुनाकर उनके मनको तृप्त किया।

नारदका जिकर आते ही राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे नारदका हाल और उत्पत्ति पूछी। श्री गौतम गणधरने उत्तर दिया, "हे भूपेन्द्र! यादवोकी राजधानी सौर्यपुरके निकट दक्षिणकी ओर तापसोका आश्रम है, जहाँ बहुतसे तपस्वी कन्दमूल और फल-पत्तोका आहार करने वाले रहते हैं। उनमे एक तपस्वी सुमित्र है, जिसकी स्त्रीका नाम सोमयशा है। वह तपस्वी उञ्छ वृत्ति का है।"

राजा श्रेणिकने पूछा, "हे स्वामी! उञ्छ वृत्ति क्या होती है?"

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको बताया, "नगरमे बनियोकी दुकानके सामने अन्नके जो कण बिखर जाते है, उन्हे जो तपस्वी इकट्ठा करके अपने उदरकी पूर्ति करे, और कभी-कभी कन्द-मूल आदि भी भक्षण करे, उनकी इस वृत्तिको उञ्छ वृत्ति कहते है। सुमित्र तपस्वीके एक पुत्र नारद हुआ। इस वालककी काति चन्द्रमाकी कातिके समान थी। एक दिन भूख-प्यासमे पीड़ित वे पति-पत्नी बालक नारदको एक वृक्षके नीचे सुला कर नगरमे उञ्छ वृत्तिके लिए गये। बालक वृक्षके नीचे खेल रहा था। ज्रभक नामक एक देव आया। उस वालकको देखते ही पूर्व स्नेहवश वह देव नारदको वैताडय पर्वत पर ले गया। वहाँ एक गुफामे इस वच्चेको रखा और कल्प वृक्षोके भोजनसे इसे पाला-पोसा। जब यह वालक आठ वर्षका हुआ, तव देवने इसे जिनागमका रहस्य समझाया और इसे आकाश-गामिनी विद्या दी। देवने इसका नाम नारद रखा।"

राजा श्रेणिकने गोतम गणधरसे पूछा, "महाराज! इस नारद

के कुछ गुण भी बतानेकी कृपा करे।" तब गोतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, "हे नरेन्द्र! यह नारद अनेक शास्त्रोका पाठी महा विद्वान् है। मुनि राजोकी सेवा करके इसने श्रावकके व्रत लिये है। यह नारद स्वय तो जन्मसे ही कामको जीतनेवाला तथा महाशील-वान् और अति सुन्दर है, पर जो राजा कामी हैं उनका बडा प्रिय है और उनका मनवाछित स्त्रीसे विवाह करा देता है। यह लोभ-रहित, प्रसन्न-वदन और हास्यरसका अनुरागी है। यह बड़ा तेजस्वी और मानी है। यदि इसका सत्कार न हो, तो क्रोधसे प्रज्वलित हो उठता है। जो इसकी स्तुति कर देता है, यह उसका हो जाता है। यह लडाई-झगडे देखनेका बडा प्रेमी है और वातूनियोमे मुख्य है। देवस्थानो, तीर्थों, मन्दिरो और मुनियोके दर्शनका वडा अभि-लाषी है। चतुर्विध सघका वडा प्रेमी है। यह धर्म-प्रेमी, श्रद्धावान, शास्त्रोमे निपुण और चर्चा करनेमे चतुर है। यह बडा सज्जन स्वभावी और कौतूहली है। घुमक्कड इतना है, कि अढाई द्वीपमे सदा परिभ्रमण करता रहता है। यदि कही इसके आदर सत्कार मे कमी होती है, तो उस स्थानके प्रति इसकी अरुचि हो जाती है।"

राजा श्रेणिकने नारदके गुण सुनकर कहा, "हे प्रभो! वडी धार्मिक प्रवृत्तिवाला विचित्र व्यक्ति है यह नारद।"

यादवोकी सभामे धर्म-चर्चा करनेके वाद नारद राजा समुद्र-विजय आदि से पूछ कर राज भवनमे गया। राज दरवारके समान ही रनवासमे भी इसकी पहुँच थी। वहाँ कृष्णकी प्राण-प्रिया पटरानी महाशीलवती सत्यभामा स्नान आदि से निवृत्त होकर वस्त्रा-भूषण पहन कर मणियोके दर्पणमे अपना रूप-शृगार देख रही थी। वह अपने शृगारमे इतनी व्यस्त थी, कि उसने न नारदको देखा और न उसका सत्कार किया।

नारदने इस उपेक्षाको अपना निरादर समझा और तत्काल क्रुद्ध होकर घरसे निकल खड़ा हुआ। उसने सोचा कि इस पृथ्वीपर

सभी मुझे देखकर आदर करते है और रानियाँ भी मुझे नमस्कार करती है। पर इस सत्यभामाने रूपके मदसे गर्वित होकर मेरी तरफ आँख उठा कर भी नही देखा। यह विद्याधरीकी पुत्री महा ढीठ और अविनयी है। यदि मैंने इसकी सौतके वज्रके निपातसे इसके रूप-सौभाग्यके पर्वतको चकनाचूर न कर दिया, तो मै नारद नहीं। यदि मैं ऐसा न करूंगा, तो आगे मुझे कौन खातिरमे लायेगा? इसके रूपको मात करनेवाली रत्नपूर्ण वसुधरा तुल्य सौत मैं कृष्णके घरमे लाऊँगा। जब तक मैं इसे ठण्डी आहे भरते न देखूगा, तव तक मेरी क्रोधाग्नि शात न होगी। मुझ नारदको नाराज करके कौन निश्चित और सुखी रह सकता है? सत्यभामासे अधिक रूपवान युवतीकी खोजमे नारद जगह-जगह घूमा, पर उसे सत्यभामासे अधिक रूपवान् तो क्या उसके सदृश रूपवती-सी भी न मिली।

घूमता-घूमता नारद कुण्डलपुर आया। वहाँ शत्रुओके लिए महा भयकर भीष्म राजा राज करता था। उसके महा बुद्धिमान और अति पराक्रमी रुक्म राजकुमार और कला और गुणोमे प्रवीण रुक्मणी राजकुमारी थी। यह रुक्मणी रूप, यौवन और लावण्यमे अद्वितीय थी। रुक्मणी सध्या समय सूर्यकी लक्ष्मीके समान शोभावान थी। मानो कृष्णके पुण्यसे पूर्वोपार्जित कर्मने यह कन्या महा सुलक्षणो, महारूप और महा सौभाग्य एकत्रित करके बनाई थी। इसके हाथ, चरण, मुख रूपी कमल, जघा, नितम्ब, भुजाएँ, नाभि, उदर, भौहे, करण, नेत्र, सिर, कण्ठ, नाक और अधर आदि समस्त अग समस्त उपमाओको जीतकर रुक्मणीके अगमे मौजूद थे। रुक्मणी अनुपम थी। नारदने राज सभामें राजा भीष्मसे नमस्कार, सत्कार और आदर प्राप्त किया। फिर वह रनवासमे गया, तो रुक्मणीके रूपको साश्चर्यसे देखकर मनमे सोचने लगा, कि मैने अनेक राज कन्याएँ देखी हैं, पर इसके समान सुन्दरी कोई नही देखी। मै इस अनुपम कन्याका विवाह कृष्णके साथ करके सत्यभामाके रूप और सौभाग्यके पदको

निवारूंगा। जब नारद इस प्रकार विचार-निमग्न था, तब विनय मूर्ति और मधुर शब्दोके आभूषणोसे सुसज्जित रुक्मणीने उसे हाथ जोडकर प्रणाम् किया। नारदने उसकी विनयसे प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया, "हे रुक्मणी! तू द्वारिकापति की पटरानी हो।"

इस आशीर्वादको सुनकर रुक्मणीकी वुआने नारदसे पूछा, "हे महाराज! ये द्वारिकापति कौन है?" तब नारदने कृष्ण माधवके सब गुण और परिचय बताये। रुक्मणी कृष्णके गुणोका वर्णन सुन कर कृष्णके प्रति अति आसक्त हो गई। नारदने भी वहाँ चन्द दिन रहकर कृष्णके गुण-गान गाकर रुक्मणीकी चित्त रूपी भित्ति पर कृष्णको चित्रित कर दिया। फिर रुक्मणीके रूप, वर्ण, आयु और विद्याको अपने मनमे लिखकर वह वहाँ से चल पडा। वाहर आकर पहले नारदने एकान्तमे तुरन्त रुक्मणीके रूपका स्पष्ट चित्र वनाया और द्वारिका जाकर कृष्णको वह मनमोहक चित्र दिखाया।

श्री कृष्णको नारदसे जो स्नेह था, वह चित्र देखते ही दुगना हो गया। श्री कृष्णने चित्रमे सुलक्षणा अति सुन्दरीको देखकर पूछा, "हे भगवन्! यह आपने किस कन्याका रूप-सौन्दर्य चित्रपटमे उतारा है? ऐसा अद्भुत रूप न स्त्रियोका है और न देवियोका।" महात्मा नारदने उत्तर दिया, "हे मित्र! यह राजा भीष्मकी कन्याका रूपचित्र है।" इस उत्तरको सुनकर कृष्णके मनमे रुक्मणीके पाणिग्रहणकी चिन्ता पैदा हुई।

उधर कुण्डलपुरमे रुक्मणीकी बुआने एक दिन एकान्तमे उससे कहा, "हे वाले! मैं तुझे एक वात वताती हूँ। एक दिन अतिमुक्तक अवधिज्ञानी मुनि यहाँ पधारे थे। तुझे देखकर उन्होने भविष्यवाणी की थी, कि इस कन्याके ऐसे लक्षण और ग्रह पडे हैं, कि यह वासुदेव-के हृदयमे लक्ष्मीके समान निवास करेगी। केशवकी अनेक रानियोकी यह स्वामिनी होगी। यह कहकर मुनि तो चले गये, पर अपने घरमे

किसी ने कृष्णकी बात न सोची। ठीक ऐसे जैसे कि पूर्व जन्मकी कथा मनुष्यको याद ही नही आती। पर अब नारदने उस भविष्य-वाणीको याद दिलाया है और इधर तेरा भाई रुक्म महाराज शिशुपालके पास गया था। वह तेरी सगाई शिशुपालसे कर आया और अब शीघ्र ही तेरा विवाह उससे होने वाला है।"

बुआके ये वचन सुनकर रुक्मणीने अपनी बुआसे कहा, "मुनिके वचन कभी अन्यथा नही हो सकते। मेरा तो एक पति वासुदेव ही है। इसलिए मेरे मनकी बात शीघ्र ही द्वारिकापतिको पहुँचा दे।" रुक्मणीके मनकी बात जानकर उसकी बूआने एकान्तमे रुक्मणीकी तरफसे कृष्णको यह पत्र भिजवाया

"हे नाथ! मैंने आपके नामका आश्रय लिया है और इसीसे मेरे प्राण बचे हुए है। मै रुक्मणी आपके दर्शनकी चाह रखती हूँ। माह सुदी अष्टमी का लग्न है। इस लग्नपर आकर आप मुझे ले जाये। यदि आप न आये, तो मेरे पिता और भाई मुझे शिशुपालसे विवाह देगे। इससे मेरा मरण ही है। आपको न पाकर मैं जीती न रहूगी। नगरके बाहर नागदेवका मन्दिर है। वहाँ मै लग्नके समय पहलेसे आजाऊँगी। आप मेरे आनेसे पहले ही वहाँ पधारिये और कृपा कर मेरा करग्रहण करके ले जाये।"

रुक्मणीके इस पत्रको पाकर माधव रुक्मणीको हरण करनेके लिए तैयार हो गये।

उधर चन्देरीके राजा शिशुपालने अपनी सेना सहित कुण्डलपुरके स्वामी भीष्म राजाके निमत्रणपर विवाहके लिए आकर कुण्डलपुरके निकट डेरे डाल दिये।

इधर नारदने एकान्तमे मोहनसे कहा कि यही मौका है। तब कृष्ण बलभद्र सहित छुपकर, बिना किसीके जाने, निकले और रुक्मणी,-

उसकी बुआ और सखियोके नागदेवके मन्दिरमे आने से पहले ही वहाँ पहुँच गये। वहाँ कृष्णने रुक्मणीको देखा। पहले नारदने रुक्मणीके रूपका जो वर्णन कृष्णसे किया था, उसके सुनने से जो रागाग्नि पैदा हुई थी, वह अब पारस्परिक दर्शनसे और भडक उठी। कृष्णने रुक्मणीसे कहा, "हम तेरे लिए यहाँ आये है, तुम हमारे हृदयमे आ बैठो। यदि तेरा हमसे सच्चा स्नेह है, तो हमारे पास रथमे सवार हो जाओ और हमारा मनोरथ पूरा करो।"

जब कृष्णने रुक्मणीसे ये वचन कहे, तब रुक्मणीकी बुआने उससे कहा, "हे कल्याणरूपणी! अतिमुक्तक स्वामीके कथनानुसार तेरा वर तेरे पुण्यके उदयसे तेरे पास ही आया है। यद्यपि पुत्रीको विवाहमे देनेवाले माता-पिता कहे गये है, परन्तु वे भी विधि अर्थात् कर्मके अनुसार ही बेटीको देते है। इसलिए पूर्वोपार्जित कर्म ही गुरु है।"

बुआके ये वचन सुनकर रुक्मणी कृष्णमे अति अनुरक्त तो हो गई, पर लज्जावश वह रथ पर स्वय कैसे चढती? तब कृष्णने उसके मनके भावको समझकर उसको अपने दोनो हाथोमे उठाकर रथमे सवार किया। उनकी आँखे चार हुई और परस्पर अंग स्पर्श हुआ। इससे दोनोको अति सुख मिला और कामवासना जागी। दोनोका अद्भुत रूप था। दोनोके सुगन्धित शरीरो और मुखके सुगधपूर्ण श्वाससे वे सुगधमे भर गये। एक दूसरेके रूपसे दोनोके मन वशीकरण मन्त्रित हो गये। विधि बलवान होती है। जहाँका सयोग होता है, बेटी-बेटेका विवाह वहाँ ही होता है। यहाँ भी पूर्वोपार्जित कर्म रूपी विधिने रुक्मणीको शिशुपालसे विमुख और कृष्णके सन्मुख करके इनका सयोग कर दिया।

रुक्मणीको रथमे सवार करते ही कृष्णके मनमे विचार आया, कि वह इतना निर्बल तो है नही, कि रुक्मणीको चोरकी

तरह ले जाये। तब मोहनने पाचजन्य नामक शखको वजाया, जिसकी ध्वनि दशो दिशाओमे गूंज उठी। यह एक प्रकारसे लडाई-की चुनौती थी। शखकी ध्वनि सुनते ही शत्रुकी सेना क्षुब्ध हो गई। रुक्मणीका भाई रुक्म और शिशुपाल इस वृत्तान्तको जानकर अपनी चतुरग महासेनाको लेकर कृष्ण और बलभद्रके सामने युद्धके लिए आ डटे। तव कृष्णने रुक्मणीको शत्रु सेना दिखाई। रुक्मणी इस समय कृष्णके बायें अग बैठी थी। जव उस मृगनयनीने शत्रुकी प्रवल सेना-को देखा, तो उसके मनमे पतिमरणकी आशका पैदा हुई। उसने पति कृष्णसे कहा, "हे नाथ! इधर यह मेरा भाई रुक्म कुपित है और शिशुपालकी अपार सेना है। और यहाँ केवल आप दोनो भाई है। आपकी सेनाको रणमे इनपर कैसे विजय प्राप्त होगी? यही सन्देह मेरे मनमे है। मैं वडी मदभागिनी हूँ। आपतो वीरातिवीर हैं। आपको युद्ध की चिन्ता क्या? पर रण रण ही है।" रुक्मणीके सन्देहपूर्ण वचन सुनकर कृष्णने उससे कहा, "हे कोमलचित्तधा-रिणी! तू भय मत कर। ये सख्यामे ज्यादा है, तो क्या? मैं इतना पराक्रमी हूँ, कि इनके लिए एक ही वहुत काफी हूँ। मेरे होते ये क्या कर सकते है?"

इस पर रुक्मणीने कृष्णसे कहा, "हे नाथ! मुनि अतिमुक्तकने कहा था, जो व्यक्ति एक बाणसे सात तालके वृक्ष छेद दे, वह वासुदेव होगा। मैं इसमे सन्देह नही करती।" इतना सुनते ही कृष्णने अपना धनुष चढाया और एक बाणसे सात ताल वृक्षोकी पक्ति तुरन्त छेद दी। कृष्ण तो सामान्य अस्त्रोके अतिरिक्त दिव्यास्त्रो-को भी चलानेमे प्रवीण था। उसकी शस्त्रविद्याका क्या कहना? इतना ही नही, रुक्मणीकी अँगुलीमे वज्रमणीकी अगूठीको माधवने अपने हाथमे रगड कर चकनाचूर कर दिया। अव रुक्मणीका यह सन्देह तो दूर हो गया कि इस रणमे इन दोनो भाइयोका तो बाल भी वाका न होगा। अव उसने हाथ जोडकर विनती की, "हे नाथ!

आपसे प्रार्थना है कि इस युद्धमे मेरा भाई न मारा जाय, उसकी रक्षा करना ।" कृष्णने रुक्मणीको उसके कहे अनुसार आश्वासन दिया ।

अव लडाईके लिए कृष्ण रथमे सवार हो गया । रुक्मणी भी उसके साथ थी । वलभद्र स्वय सारथी वना और उसने रथको शत्रुओ की ओर वढाया । दोनो भाई क्रुद्ध हो बैरियोपर वाणोकी वर्षा करने लगे । थोडी देरमे लडाई रग पर आ गई ।

शिशुपालकी सेनाके वहुतसे सैनिक रणभूमिमे खेत रहे, वाकी इधर-उधर भाग गये । अव शिशुपाल और रुक्म उनके सामने खडे थे । श्री कृष्णने शिशुपालको लडनेके लिए ललकारा । यह शिशुपाल मदघोपका पुत्र था । वडा उन्मत्त और वीर लडाका था, पर कृष्णके एक वाणने ही उसके सिरको वेध कर भूमिपर डाल दिया । उसको सावन्तपनेका जो अति मद था, उसका वह मद भग कर दिया । इधर वलभद्रने रुक्मको घायल कर दिया, पर रुक्मणीका भाई समझकर और रुक्मणीकी इच्छानुसार उसे जीवनदान दिया ।

रणमे विजय प्राप्त करके वलभद्र और कृष्ण रुक्मणी सहित गिरनार गये । वहा कृष्णका रुक्मणीसे विधिपूर्वक विवाह हुआ । फिर वे लोग द्वारिका पधारे ।

वलभद्र अपनी प्रिया रेवतीके महलमे गया और कृष्ण नववधु रुक्मणीके साथ प्रेमपूर्वक दिन विताने लगा ।"

श्री गोतम गणधरने राजा श्रेणिकसे आगे कहा, "हे राजन् ! जब वासुदेवने शिशुपालको मार दिया और उसकी रथसेनाको चकनाचूर कर डाला, तव सूर्य भी अपनी किरणे सकोचकर अस्ताचलके आश्रय चला गया, क्योकि सूर्यने मनमे विचारा, कि यह माधव तेजस्वियोका तेज नही देख सकता । कही ऐसा न हो कि मुझे तेजवान समझकर पकड ले जाये, इसलिए दिवाकर अस्त हो गया ।

जब सूर्य अस्त हुआ और सध्या भी उसके पीछे चली गयी, तब समस्त जगत् काजल समान श्याम चादरसे आच्छादित हो गया। यह अधकार पटल मोहको पैदा करता है और कामको बढाता है। जैसे पराक्रमी राजाके वियोगसे दुष्टजन चौगिर्द सिर उठा लेते है, वैसे ही दिनकरके अस्त होनेपर अधकार सर्वत्र फैल जाता है। कुछ रात बीतने पर जब चन्द्रमा उदय हुआ और उसने अपनी रुपहली किरणोसे समस्त अधकारको दूर कर दिया, तो पृथ्वीपर चारो तरफ प्रकाश फैल गया। यह चन्द्रमा सयोगी जनोका तो मित्र है उन्हे प्रमुदित करता है और जो विरही है उन्हे आताप देता है। चादनी रातमे प्रिया प्रीतमके निकट विकासको उसी प्रकार प्राप्त करती है, जैसे चन्द्रमाके स्पर्शसे कमोदनी विकसित होती है। चन्द्रमाके उदयसे कमलनी खिल उठती है, पर चकवा-चकवी वियोगसे दुखी हो जाते है। ससारकी गति भी कितनी विचित्र है कि चन्द्रमा जहाँ किसी एक के लिए हर्षका कारण है, तो किसी दूसरेके लिए दुखका कारण।

जब रात्रिका समय हुआ, तो मानी नायकोके मान भग हो गये। रात स्त्री-पुरुषोको समान रूपसे सुख देती है। स्फटिक मणियोके महल चादनीसे अति सुशोभित हो रहे थे। ऐसे मनोहर समयमे सभी यादव नृप सुख से समय विता रहे थे। और कृष्ण अपनी नववधू रुक्मणीके साथ आनन्दमग्न था। जब प्रभात हुआ और मुर्गे बांग देने लगे, तो मानो वे रातके अन्तकी सूचना दे रहे थे। पहले तो मुर्गे जरा ऊँचे स्वरसे वोलते थे, फिर वे धीमे स्वरसे वोलने लगे। मानो वे यादवोकी रानियोके भयसे धीरे-धीरे वोलने लगे है, कि उन्हे दुख न हो। जब रात थोडी रहती है, तव मुर्गोका वोलना कामिनियोको नही सुहाता।

प्रभात समय सध्याके समान रुक्मणी कृष्णसे पहले जागी। पतिव्रता स्त्रियोका यही धर्म है, कि पति के शयन करनेके वाद सोये और पतिके उठनेसे पहले जागे और पतिको भोजन कराके स्वय

वादमे भोजन करे। कृष्ण अपनेसे पहले जगी रुक्मणीको देखकर अति अनुरागी हो उठा। ऐसी सुन्दर, कर्तव्य परायण और पति-भक्त स्त्री और किसके हो सकती थी ? प्रभातके समय बजते बाजों-की मधुर ध्वनि ऐसी लग रही थी, जैसे मेहकी हलकी ध्वनि होती है। द्वारिकामे घर-घर लोग जाग उठे। सव प्रजा अपने-अपने कार्य मे प्रवृत्त हो गई। रातका जो अधकार चन्द्रमासे पूर्ण रूपसे न मिटा था, वह सूर्यके उदयसे सर्वथा नष्ट हो गया। अब सर्व पदार्थ स्पष्ट प्रकट दिखाई देने लगे। सूर्य ही दुर्निवार अधकारको मिटानेमे समर्थ होता है, जैसे धर्म मिथ्यातत्त्वरूपी अधकारको दूर करता है और विधि मार्गमे प्रवृत्त होता है।



२६

प्रद्युम्नकुमार के पूर्व जन्म

विवाहके पश्चात् कृष्णने रुक्मणीको पटरानीका शिरोमणी पद देकर रानी सत्यभामाके महलके शिरोभागमे स्थान दिया। उसके भवनको द्वरपाल, सेवक, हाथी, घोडे, रथ, पालकी आदि सब सुविधाओ तथा पति प्रेमसे भर दिया। इस आदरसम्मानको पाकर रुक्मणी बहुत सतुष्ट हुई।

अब तक रुक्मणी और सत्यभामाका साक्षात् मिलाप नही हुआ था।

रुक्मणी बडी चतुर थी। वह मनमे जानती थी, कि सत्यभामा महा सुन्दर है और कृष्णके मनको अधिक भाती है। इसलिए वह चाहती थी, कि किसी प्रकार कृष्णकी उसपर अधिक कृपा दृष्टि रहे। उसे सत्यभामासे ईर्ष्या हो गई। इसलिए वह श्री कृष्णको अधिक से अधिक प्रसन्न रखने लगी। कृष्णको भी उससे अति स्नेह हो गया।

एक दिन कृष्ण रुक्मणीके मुखके सुगधित ताम्बूलका उगाल अपने पीताम्बरके पल्ले बाधकर सत्यभामाके रनवासमे गये। वे वही सो गये। उस ताम्बूलकी सुगधसे सारा शयनगृह महक उठा। सत्यभामा उस सुगध पर मोहित हो गई और कृष्णके पल्लेसे उसको खोलकर और पीसकर अपने अगोपर लगा लिया। इस पर माधव

मुस्कराये। सत्यभामाने ईर्ष्यासे कुपित होकर कहा, "रुक्मणी तो मेरी वहन है, आप क्यो हसते हो ?" हरिकी इस समयकी चेष्टाओ-को देखकर सत्यभामाने समझा, कि उसकी सौत रुक्मणी अति सौभाग्यशालिनी है। इसलिए उसके मनमे उसके रूप लावण्यको देखनेकी अभिलाषा पैदा हुई। उसने अपने पतिसे कहा, "हे नाथ! मुझे रुक्मणी दिखाओ। उसके गुणोको मै सुन चुकी हूँ। अब उसके दर्शनो से मेरी आँखोको तृप्त करो।"

कृष्ण सत्यभामाको रुक्मणीसे मिलानेके लिए मणिवापिकाके निकट बिठाकर स्वय रुक्मणीको लाने गये। कृष्ण सत्यभामासे ताम्वूल सम्वन्धी एक विनोद पहले कर चुके थे। अब उन्होने एक विनोद और किया। उन्होने रुक्मणीको तो वनमे प्रवेश करनेको कहा और स्वय पीछे आनेको कहकर वृक्षोके पीछे से सब कुछ देखनेके लिए छिप गये। जब रुक्मणी वनमे पहुँची, तो सत्यभामाने उसके रूप-सौन्दर्यको देखकर मनमे सोचा, कि यह वनदेवी है। उस समय रुक्मणी सुन्दर वस्त्रो और अद्भुत आभूषणोको पहने हुए आमके वृक्षकी डाल पकडे खडी थी। उसकी चोटीके केश कुछ ढीले हो गये थे। और वह उन्हे बाये हाथसे सवार रही थी। उसका अग कुछ नम्रीभूत था। यदि ऐसी शोभापूर्ण सुन्दर खड़ी रुक्मणीको सत्यभामा ने वनदेवी समझ लिया, तो इसमे आश्चर्य ही क्या था ? सत्यभामा-के चित्तमे तो सौतिया डाहका काटा पहले ही से चुभ रहा था। उसे देखते ही सत्यभामाने उसके चरणोपर पुष्पाजलि चढा कर अपने सुहाग और सौत रुक्मणीके दुर्भाग्यकी याचना की। ठीक उसी समय कृष्ण वहाँ आकर सत्यभामासे हसकर कहने लगे कि तुमको अपनी वहनका भली-भाँति अपूर्व दर्शन हुआ। सत्यभामा सव रहस्य-को समझ कर कृष्णसे कोप करके कहने लगी, "हम तो आपसमे पहले ही मिल रही है। आप क्या मिलाओगे ?" इस पर कृष्ण कुछ मुस्करा दिये। पर वडे कुलमे उत्पन्न स्त्री-पुरुषोके विनय लक्षणसे

युक्त रुक्मणीने तुरन्त सत्यभामाको नमस्कार किया। इसके पश्चात् कृष्णने दोनो रानियोके साथ लताओसे मंडित उस वनमे चिरकाल विहार और सैर की। फिर वे अपने घर लौट आये, जहाँ आनन्द सुखमे मग्न कृष्णके वहुत दिन एक दिनके समान बीतने लगे।

एक दिन हस्तिनापुरके अधिपति दुर्योधनने स्नेहपूर्वक अपने दूतके द्वारा श्री कृष्णको यह सन्देश भेजा, "आपकी दोनो रानियाँ सत्यभामा और रुक्मणी गर्भवती है। उनके पहले पैदा होने वाला पुत्र ही मेरी पुत्रीका वर होगा।" कृष्णने दुर्योधनके निवेदनको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके दूतको बडे सम्मानसे विदा किया। दूतने अपनी कार्यसिद्धिका समाचार अपने स्वामी दुर्योधनको सुनाया।

सत्यभामाने यह वात सुनकर अपनी दूती द्वारा रुक्मणीको यह सन्देश भेजा, "हे वहन! हम दोनोमे जिसके पुत्र होगा, वह पुत्र ही दुर्योधनकी पुत्रीको व्याहेगा। पर शर्त यह है कि यदि तुम्हारा पुत्र उसे व्याहे तो वह मेरे सिरके केश मुंडवाकर उनपर पाँव रख कर व्याहने जाय और यदि मेरा पुत्र व्याहने जाये तो वह तुम्हारे केशो पर पाँव रख कर व्याहने जाय।" रुक्मणीने सत्यभामाकी वात मान ली।

एक रात रुक्मणीने स्वप्नमे देखा कि वह हंस विमानमे आकाश मे विहार कर रही है। कृष्णने उसे उसका फल वताया, कि तेरा पुत्र एक महापुरुष और आकाशगामी होगा। यह सुनकर रुक्मणीके हर्षके सीमा न रही।

सोलहवे स्वर्गका अच्युतेन्द्र उपेन्द्र रुक्मणीके गर्भमे आया। उसी दिन संयोगसे सत्यभामाको भी शुभ-स्वप्न आये और गर्भ रहा। कृष्ण, रुक्मणी और सत्यभामा सभी परम सुखी और प्रसन्न हुए।

नौ महीने पूरे होने पर रुक्मणी और सत्यभामाके साथ-साथ पुत्र पैदा हुए। दोनो रानियोकी तरफसे श्री कृष्णको शुभ समाचार

सुनाने और बधाई देनेवाले रातके समय ही एक साथ आये। कृष्ण उस समय सो रहे थे। सत्यभामाके पुत्रोत्पत्तिकी बधाई देनेवाले गर्ववश कृष्णके सिरहाने खडे हो गये। उन्होने सोचा था कि कृष्ण-की दृष्टि पहले उनपर पडेगी। रुक्मणीके पुत्र-जन्मकी बधाई देने-वाले कृष्णके पायते खडे थे। जब कृष्णकी आँखे खुली, तब उन्होने पहले रुक्मणीके सेवकोको देखा और उनकी बधाईके प्रत्युत्तरमे बधाई दी। फिर सत्यभामाके सन्देशवाहकोको। इससे प्रथम पुत्रका पद रुक्मणीके पुत्रको मिला। और सत्यभामाका पुत्र दूसरा बना। कृष्णने प्रसन्न होकर उन्हे आभूषण भेट दिये।

इसी समय एक दुखद घटना हुई।

उसी समय एक महाबलवान असुर धूमकेतुका अग्निके समान प्रज्वलित विमान रुक्मणीके मन्दिर पर अटका। कुअवधिसे उसने रुक्मणीके पुत्रको अपना शत्रु समझा। क्रुद्ध होकर अग्निके समान लाल आँख करके विमानसे नीचे उतर कर उसने प्रच्छन्न रूपसे रुक्मणीके प्रसूतिगृह मे प्रवेश किया। नवजात शिशुको देखते ही उसकी पूर्व वैर-रूपी अग्नि भडक उठी। यद्यपि रुक्मणीके महलकी बडी सुरक्षा थी, कोई वहाँ पैर भी न मार सकता था, पर उस असुरने अपनी मायासे रुक्मणीको निद्रा मग्न कर दिया और बालकको वहाँसे उठा लिया। वह बालक अपने पुण्यके भार से पर्वत समान था, परन्तु वह मलिन बुद्धि असुर उसे लेकर आकाश मे चल दिया। ऊपर जाकर उसने मनमे सोचा कि यह मेरा शत्रु स्त्रीको हरनेवाला है। इसे मैं या तो हाथोसे मसलकर मार दू या नाखूनोसे चीर-फाड कर पक्षियोके खानेको छोड दू या इसे मगरमच्छोसे भरे समुद्रमे डाल दूँ। फिर उसने सोचा कि यह तो तुरन्त का जन्मा मासका पिण्ड है, इसको मारनेसे क्या लाभ ? यह तो बिना रक्षा, देख-भाल अपने आप ही मर जायेगा। फिर वह असुर आकाशसे नीचे उतर

कर एक बडी भारी शिलाके नीचे बालकको दवाकर स्वय अदृश्य हो गया ।

उसी समय मेघकूट नगरका अधिपति कालसम्वर विद्याधर अपनी कनकमाला पत्नी सहित विमानमे बैठा वहाँसे गुजर रहा था। बालकके पुण्यसे उसका विमान वही अटक गया । तव उसने एक शिलाको हिलते देखा । विद्याधरने अपने विद्याबलसे उस शिलाको उठाया, तो उसे वहाँ एक अखण्डित अग, स्वर्ण समान प्रभावान और साक्षात कामदेव सा बालक दिखाई दिया । उस बालकको वहाँसे उठाकर अपनी पत्नी कनकमालाको देनेको तैयार हो गया ।

कालसम्वर विद्याधरने अपनी रानी कनकमाला से कहा, "हे रानी ! तेरे पुत्र नही है, तू इसे ले ले ।" पहले तो कनकमालाने शिशुको लेने के लिए हाथ फैलाये, परन्तु किसी विचारके आनेसे उस दीर्घ-दर्शनी गम्भीर विचारवाली विद्याधरीने अपने हाथ खीच लिये । तव राजाने उसे कहा, "हे प्रिये ! ऐसे सुन्दर बालकको तू क्यो ग्रहण नही करती ?" तब इस पर रानीने उत्तर दिया, "हे नाथ ! आपके पाँच सौ पुत्र हैं और उनके ननसालवाले बडे राजा हैं । यह बालक हमे जगलमे पडा पाया है, जिसका न कुल मालूम, न माता-पिताका नाम मालूम । उन पुत्रोके सामने इसे कौन गिनतीमे लायेगा ? यह मारा-मारा फिरेगा और हर कोई इसको सिरमे चाटे मारेगा । मुझसे यह देखा न जायेगा । उस क्लेशसे तो मैं अपुत्रवती ही भली ।"

रानीके ये वचन सुन कर विद्याधर कालसम्वरने धैर्य वधाते हुए रानीके कानोके कर्णपत्रपर यह लिखा, कि मेरे जीवनकालमे यह बालक युवराज रहेगा और मेरे पश्चात् राजा होगा । फिर उसने उस पत्रको पट्टके साथ वालकके वाध दिया । तद कनकमालाने उस बालकको छातीसे लगा लिया । रानी कनकमाला राज विद्यामे वडी निपुण थी ।

इसके पश्चात् राजा कालसम्वर और रानी कनकमाला पुत्र सहित मेघकूट नगर गये। उस समय वह बालक कुल एक दिन का था और उन्हे जब रातके समय पाया था, तब वहा और कोई न था। नगर मे जाकर राजाने कहा कि रानीको गूढ गर्भ था, किसीको उसके गर्भ-की वात मालूम न थी। उसने मार्ग मे इस वालकको जन्म दिया। इस वालकके जन्मके उपलक्षमे नगर भरमे वड़ा उत्सव मनाया गया।

तव इस वालक का नाम प्रद्युम्न कुमार रखा गया, क्योकि इसकी काति स्वर्णकी चमकको जीतने वाली थी और प्रद्युम्न स्वर्ण को कहते है। वडे लाड चाव और दुलार से प्रद्युम्न कुमारका पालन-पोपरण होने लगा।

कुछ देर पश्चात् जव रुक्मरणी जागी और उसने अपने वालक-को अपने पास न पाया, तो उसने अपनी धायको बालकको ढूँढनेके लिए कहा। सारे महलमे वच्चेकी तलाश की गई, पर वह कही भी न मिला। पुत्रके न मिलने पर रुक्मरणीके शोककी सीमा न रही। वह विलाप कर-करके कहने लगी, "हाय पुत्र, तुझे किस बैरी ने हर लिया। मेरे पूर्वोपार्जित किसी पुण्य ने मुझे पुत्र रत्न दिया, पर परभव मे मैंने किसी स्त्री के पुत्र को हरा होगा, जिसका यह फल मुझे मिला।" रुक्मरणी के विलापको सुनकर सवको करुरणा पैदा हुई।

रुक्मरणीके महाविलापको सुनकर कृष्ण, वलभद्र, दूसरे कुटुम्बी-जन और सभी रानिया वहा आ गई। कृष्णने अपने भुजबल और सावधानी की निंदा की, उन्हे धिक्कारा। तव कृष्णने कहा, "जगत-मे दैव और पुरुपार्थ दोनो पदार्थोमे दैव ही प्रवल है। जो पुरुषार्थ-का गर्व करे, उसे धिक्कार है। जो पुरुपार्थ दैवसे प्रबल होता, तो मुझ नगी तलवार समान तेजस्वी कृष्णके पुत्रको कोई शत्रु कैसे ले जाता?" यह विचार कर के कृष्णने रुक्मरणीको धैर्य वधाते और

आश्वासन देते हुए कहा, "हे प्रिये ! तू शोक मत कर, धैर्य धर । तेरा पुत्र स्वर्गसे आया है और पुण्याधिकारी है । वह अल्पायु नही हो सकता । तुम्हारे सदृश माता और मुझ समान पिताके यहा पुण्य-हीन और अल्पायु पुत्र नही हो सकता । यह कोई भावी ही ऐसी थी, जो ऐसा हुआ । तेरी आखोके तारेको मै अवश्य लाऊगा । जैसे सूक्ष्म दृष्टिवाले आदमी दूजके चन्द्रमाको आकाश मे देख ही लेते है, मैं भी उसे देखूंगा ।" इस प्रकार वासुदेवने रुक्मणीको धैर्य वधाया । उसका मु ह धुलवाया । अब कृष्ण बालकको तलाश करने का उपाय करने लगे ।

उसी समय वहा नारदजी आ पहुचे । रुक्मणीके पुत्रहरणकी बात सुनकर वह क्षणिक शोक कर के नतमुख हो गया । उसने सब यादवोके दग्धकमल सरीखे मुख देख कर कृष्णसे कहा, "हे भाई ! तू शोक मत कर, मैं तेरे पुत्रका समाचार शीघ्र लाऊ गा । मैं पूर्व विदेहमे सीमंधर स्वामीसे पूछ कर तेरे पुत्रका समाचार लाऊ गा । इस प्रकार वलदेव आदि सव यादवोका धैर्य वाध कर वह शोकाग्निसे दग्ध मुखारविन्दवाली रुक्मणीके पास गया । शोकचित्त रुक्मणी नारदको देखते ही धैर्य कर उठ बैठी और नारदको नमस्कार करके पास आ बैठी । अपने हितैषीको देख कर पुराना पडा हुआ शोक भी नया वन जाता है । इसी कारणसे रुक्मणी नारदको देखते ही फूट-फूट कर विलाप करने लगी । दुख समुद्रसे निकलनेके लिए विवेकी कृष्णप्रिया रुक्मणीको सात्वना देते हुए कहने लगा, "हे पुत्री ! तू शोकको छोड दे । तेरा पुत्र जीवित है और किसी स्थानपर सुखसे है । किसी पूर्वजन्मके वैरीने उसे हरा है । वह महात्मा है, चिरजीवी है । तुम्हारे उदरसे पुण्यहीन वालक जन्म नही ले सकता । हे वेटी ! इस ससारमे जीवोके लिए सयोग और वियोग दोनों सुख-दुख के देने वाले होते हैं । तेरे दु खसे मुझे दु ख हुआ है । यह यादवोका बडा कुल है । इस कुलमे ज्ञानवान् व्यक्ति विशेप हैं और कार्यो के

रूप तथा फल को जानते हैं। इनके कुलमे दुखदायी उत्पन्न नही हो सकता। तू जिन-शासनके रहस्यको जानती है, ससारकी झूठी माया को भी भली प्रकार जानती है। यह संसार अपार है, इस लिए शोकातुर न हो। मै तेरे पुत्रका समाचार शीघ्र लाऊ गा।" इस तरह रुक्मणीके धर्मपिता नारद अमृत रूपी वचनोसे उसे सतोप देकर तीर्थकर सीमधरके पास आ गये। उन्हे नमस्कार करके नारद प्रवचन सभा मे जा बैठे।

वहा सभोसरणमे बहुत ऊ चे कद वाला पद्मरथ चक्रवर्ती अपनेसे छोटे कदके नारदको देखकर चकित हो गया। उसने नारद को हाथोमे उठाकर तीर्थंकर सीमधरसे पूछा, "हे नाथ! यह मनुष्याकार का कौन व किस जातिका जीव है?" भगवान सीमधरने पद्मरथ चक्रवर्तीसे कहा, "यह नारद कृष्णका मित्र है।" तब धर्मचक्रके धारक भगवान सीमधरने चक्रवर्तीको सब कथा सुनाई। और कहा, "हे राजन्! कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको उसके पूर्वजन्मका शत्रु हर कर ले गया। सोलह वर्ष बीतनेपर वह रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्याओका धारक इतना प्रबल पराक्रमी होगा, कि देव भी उसे न जीत सकेंगे। फिर वह अपने माता-पिता से मिलेगा।"

प्रद्युम्न कुमारका चरित्र और उसके हरणका कारण पूछनेपर सीमधरने नारदके सामने चक्रवर्तीसे कहा, "जम्बूद्वीपमे मगध देशमे शालिग्राम नगरमे सोमदेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी अग्निला रहते थे। वह स्त्री अग्निकी दीप्तिके समान पतिके लिए सुखदायी थी। उनके दो पुत्र अग्निभूति और वायुभूति थे।

ये दोनो पुत्र वेद-विद्याओमे प्रवीण थे और उन्होने अपनी विद्या से दूसरे ब्राह्मणोकी कातिको मन्द कर दिया था। वे वेद पाठियोमें ऐसे थे, जैसे नक्षत्रो मे शुक्र और बृहस्पति होते हैं। वेदाभ्यास से उनको गर्व हो गया। और ये बड़े वाचाल थे। माता-पिताके लाड़-

चावके कारण ये भोग-विलास मे तत्पर रहते थे। परलोककी चर्चा से इन्हे द्वेष ही था। लोक सुधारनेकी वात इन्हे सुहाती ही न थी।

एक दिन श्रुतसागरके पारगामी नन्दी वर्धन मुनि एक उद्यानमे आकर विराजे। उस गांवके चारो वर्णोंके स्त्री-पुरुष मुनि वन्दना और दर्शनको जा रहे थे। इन दोनो भाइयोने जनताके जानेका कारण पूछा। तब एक ब्राह्मणने वहां मुनिके आने और उनके दर्शनार्थ जनताके जानेका कारण बताया। तब इन दोनो भाइयोने सोचा, कि क्या हमसे बडा भी कोई विद्वान है ? वे दोनो अभिमानी भाई मुनि का माहात्म्य देखने गये।

वहा मुनि सघके एक मुनि सात्विक गुरुसे परे बैठे थे। उन दोनो विप्रपुत्रोको देखकर उसने मनमे विचार किया, कि ये अभिमानी हैं और गुरुके पास जाकर विवाद करके सभामे क्षोभ और गडबड करेगे। इस लिए सात्विक मुनिने उन्हे वहाँ ही ठहरानेकी बात सोची।

उस मुनिने उन दोनो विद्वान ब्राह्मणोको बुलाकर अपने पास बिठाया। उनको विवाद करने मे तत्पर और अभिमानी देखकर वहां बहुतसे लोगोकी भीड ऐसे लग गई, जैसे वर्षा ऋतुमे घरमे पानी भर आता है।

मुनिने उन ब्राह्मणोसे पूछा, "आप कहा से आये है ?'

"गावसे", उन्होने उत्तर दिया।

मुनिने फिर कहा, "यह तो मैं भी जानता हू और तुम शालिग्राम गावके निवासी हो। मैं तो यह पूछना चाहता हू, कि इस ससारमे भ्रमण करते-करते तुम कौनसी गतिसे आये हो ?" ब्राह्मणोने कहा, "यह ज्ञान हमे तो क्या किसी को भी नही है।"

तब उस मुनिने उन्हे बताया, "पहले जन्ममे तुम दूर गाव के निकट श्याल थे। परभवमे भी तुम मे प्रीति थी। इस गावमे एक प्रवरक नामक किसान ब्राह्मण रहता था। एक वार सात दिन तक वर्षा हुई, तेज वायु चली और विजलियां गिरी। ठण्डसे उस ब्राह्मण का शरीर कापने लगा। तब उसने एक बडके वृक्षके नीचे आश्रय लिया। वर्षासे ब्राह्मणके जूते तथा कपडे आदि खूब भीग गये। दोनो श्यालोने क्षुधा पीड़ाके कारण जो मिला वही खा लिया। इससे उनके पेटमे वायुशूल का ऐसा दर्द उठा, कि उनसे सहा ही नही गया और वे मर गये। वे मर कर मनुष्य योनि मे जन्मे। तुम सोम देव ब्राह्मणकी अग्निला स्त्रीके अग्निभूति और वायुभूति पुत्र हुए और तुम्हे कुलका घमण्ड है। यह कुलमद झूठा है। प्राणियोके पापके उदयसे दुर्गति और पुण्यके उदयसे सद्गति प्राप्त होती है। इसलिए कुल या जातिका मद क्यो ? गर्व करना वृथा है। जब वह किसान ब्राह्मण खेत मे आया, उसने मरे हुए श्याल देखे और उनकी खालोकी वाथडिया थैले बनवाये। आज भी वे दोनो बाथ-ड़ियाँ उसके घरमे है।

उन ब्राह्मण विद्वानोने मुनिसे पूछा, "महाराज ! फिर क्या हुआ ?" मुनिने उत्तर दिया, "वह प्रवरक ब्राह्मण मर कर अपने वेटेका बेटा हुआ। उसे जाति स्मरण हो गया और अपने पिछले जन्मकी वाते याद करते ही गूगा हो गया। वह अपने भाइयो मे वैठा अव मेरी ओर देख रहा है।"

इतना कहकर मुनिने उस गूगे आदमीको अपने पास बुलाया और कहा, "हे भाई! तू प्रवरक ब्राह्मण है और वेटे का वेटा हुआ है। अव तू शोक को छोड दे और गूगापन भी तज कर अमृत वचन वोल। इस ससारमे यह जीव नटकी तरह नाच नाचता है। वह स्वामीसे सेवक और सेवक से स्वामी होता है। पिता से पुत्र और पुत्र से पिता वनता है और पत्नीसे माता। संसारका स्वरूप ही उलट-फेर रूप है।

जैसे अरहटमे ऊपर की घडिया नीचे और नीचे की घडिया ऊपर हो जाती है, और भरी घडिया खाली हो जाती है और खाली घडिया भर जाती है, इस प्रकार ऊपर नीचे होता रहता है। यह जीव अनादि काल से ससार मे भ्रमण कर रहा है। इसलिए हे पुत्र ! तू ससार के असार और महाभयकर रूपको समझ कर सार पदार्थ का सग्रह कर। ससारमे दया धर्म मूल वाले पच महाव्रत—अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय—ही सार है।" इस प्रकार उस सात्विक मुनिने प्रवरक नामक किसान ब्राह्मणके जीवको समझाया। इस पर वह ब्राह्मण मुनिकी प्रदक्षिणा करके उसके पाव पडा। उसने मुनिको नमस्कार करके गद्‌गद्‌ वाणीसे कहा, "हे ईश्वर ! आप सर्वज्ञ तुल्य ससारकी वस्तुओका स्वरूप प्रत्यक्ष देखते हो। तीन लोककी रचना भी आपसे छिपी नही है। हे गुरु ! अब तक मेरा मन अज्ञान के पर्दे से ढका हुआ था। आपने ज्ञानके अजनकी सलाई-से उसे दूर कर दिया है। आपने मुझे अधकारसे निकाल कर प्रकाश-मे लाकर मुक्तिमार्ग दिखाया है। आप प्रसन्न हो मुझे मुनिदीक्षा दो ?" यह कहकर वह प्रवरक किसान ब्राह्मण मुनि हो गया और दूसरे कई आदमियोने भी मुनि तथा श्रावकके व्रत-नियम लिये।

यह सब देख-सुनकर वे दोनो भाई अग्निभूति और वायुभूति घर गये। इनके माता-पिताने इनकी वडी निन्दा की। रातके समय वे दोनो सात्विक मुनिको मारने गये। वह मुनि एकान्तमे ध्यान मग्न खडा था। उन्होने मुनिको मारने के लिए खडग चलाई, पर वन के अधिष्ठाता यक्ष देवने उनसे मुनि की रक्षा की और उन दोनो भाइयो को वही कील दिया। प्रभात होने पर जिसने इन्हे देखा, उसने इनकी निन्दा की, धिक्कारा। स्वय इनको भी अपने काम पर लज्जा आई। इन्होने मनमे सोचा, कि हमने प्रभावशाली मुनिके प्रति विनयाचार को उलघा और फल स्वरूप हम कीले गये। उन्होने मनमे सोचा, कि यदि अव हम इस वधनसे छूटे, तो जिनधर्मका आराधन करे।

जव इन दोनो भाइयोके दुष्कर्म और कीले जानेका समाचार इनके मा-वापने सुना, तो वे मुनिके पाव पडे और उन्होने उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया। मुनि तो महा दयावान थे, ध्यान मग्न बैठे थे। मुनिने यक्षसे कह कर उन दोनो ब्राह्मण पुत्रोके बधन खुलवाये। फिर इन दोनों भाइयोने गृहस्थ धर्मका रूप मुनिसे सुनकर गृहस्थके अणुव्रत ग्रहण किये और मरनेके पश्चात् प्रथम स्वर्गलोक गये।

पर इनके माता-पिता अश्रद्धापूर्वक मरनेके कारण कुगतिको गये।

वे दोनो भाई स्वर्गलोकके सुख भोगकर अयोध्यापुरीमे समुद्रदत्त सेठकी धारणी नामक सेठानीके यहाँ पूर्णभद्र और मणिभद्र दो पुत्र हुए और जैन धर्मावलम्बी हुए।

एक दिन ये दोनो भाई रथ पर सवार होकर मुनिदर्शनको जा रहे थे। मार्गमे एक चाण्डाल और कुतियाको देखकर इनके मनमे उनके प्रति अति स्नेह पैदा हुआ। तव इन्होने गुरुसे इस अनुरागका कारण पूछा। मुनिने उन्हे वताया कि ब्राह्मण जन्ममे ये उनके माता-पिता थे, पर पाप कर्मके फलस्वरूप नरकमे गये। वहाँके दुख भोग कर ये चाण्डाल और कुतिया हुए है।

श्री गुरुसे यह वात सुनकर वे दोनो भाई पूर्णभद्र और मणिभद्र उस चाण्डाल और कुतियाके पास गये और उन्हे उनके पूर्व जन्मकी वात कहकर धर्मोपदेश दिया। उस धर्मोपदेशसे उन्हे शान्ति प्राप्त हुई। उस समय चाण्डालकी आयु एक मास मात्र शेप थी। इसलिए उसने श्रावकके व्रत लेकर सव प्रकार के आहारका त्याग करके समाधि मरण किया और नन्दीश्वर द्वीपका अधिष्ठाता देव जन्मा। इस प्रकार उसने चाण्डालके शरीरसे देव योनि पाई। उस कुतियाने भी श्रावकके व्रत ग्रहण किये, समाधि मरण किया और फलस्वरूप अयोध्या के राजाके घर राजकुमारी हुई। जव यह नवयुवती विवाह योग्य

हुई, तो उसके स्वयम्वरकी तैयारी की गई। इसका नाम अग्नि-ज्वाला था। स्वयम्वर-मण्डप सजाया गया और उसमे देश-देशके बहुतसे नृप आदि एकत्रित हुए। स्वयम्वर विजेता बननेकी इच्छासे सम्मिलत हुए। जब अग्निज्वाला वरमाला हाथमे लेकर नवयुवकोको देख रही थी, तब वहाँ पर एक देव आ निकला। उसने इस नवयुवती-के कानमे विवाहसे विरक्ति लानेकी बात कही, उसे धिक्कारा। तभी इस राजकुमारीने वरमाला फेंक दी, आभूषण उतार दिये और ससारको असार समझकर साध्वी बन गई। अब उसके शरीर पर एक सफेद साडी थी।

ये दोनो भाई पूर्णभद्र और मणिभद्र श्रावकके व्रत लेकर समा-धिमरण करके स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे ये अयोध्याके राजा हेमनाथ-की धरावती रानीसे मधु और कैटभ पुत्र जन्मे। जब ये राजकुमार बडे हुए, तब राजा हेमनाथने बडे राजकुमार मधुको राज सौप दिया, कैटभको युवराज बना दिया और स्वय मुनि दीक्षा ले ली।

दोनो भाई मधु और कैटभ सुखसे राज करने लगे। इसी समय एक पहाडी राजा भीमने राजा मधुकी आज्ञाका उल्लघन किया और इसके राज्यमे गडबड करने लगा। राजा मधु अपनी सेना लेकर उसे दबाने चला। मार्गमे राजा मधुने अपने मित्र और भक्त राजा वीरसेनके नगर वटपुरमे विश्रामके लिए डेरे डाल दिये। राजा वीरसेनने उनका राज्योचित आदर-सम्मान और आतिथ्य किया।

वहाँ राजा वीरसेनकी रानी चन्द्राभाने अपने रूप और मधुर भाषण-से राजा मधुके मनको जीत लिया। यद्यपि राजा मधु नीति और धर्म शास्त्रोका जाननेवाला था, पर वह अपने मनको न रोक सका, वह मन्द बुद्धि हो गया। तब प्रधान मत्रीने राजाको सलाह दी, कि इस समय हमे राजा भीमको वशमे करना है और उपद्रव न उठाओ।

राजाने मंत्रीकी बात मान ली और राजा भीमको पराजित करके अयोध्या वापस आ गया।

पर राजा मधुका मन तो रानी चन्द्राभापर आसक्त था। उसने उस रानीको प्राप्त करनेके लिए वसन्तोत्सवका प्रपंच रचा और सब राजाओंको उसमें आनेका निमंत्रण दिया। राजा वीरसेन अपनी रानी चन्द्राभा सहित उत्सवमें सम्मिलित हुआ। दूसरे राजाओंको आदर-मान-उपहार आदिके साथ विदा किया। राजा वीरसेनको भी अधिक आदर-मानके साथ विदाकर दिया गया। पर रानीको यह कहकर रोक लिया कि उसके योग्य वस्त्राभूषण थोड़े दिनोंमें बनेंगे। वीरसेन भोला राजा था, राजा मधुके धोकेमें आ गया। फिर राजा मधुने रानी चन्द्राभाको सब रानियोंमें पटरानी बनाकर अपने महलमें रख लिया।

राजा वीरसेन अपनी पत्नीके वियोगमें पागल सा होकर चन्द्राभा चन्द्राभा पुकारता घूमता-घूमता अयोध्या आ गया। रानी चन्द्राभाने अपने पति वीरसेनको महलके झरोखेसे देख लिया। उसने राजा मधुको भी अपने पूर्व पतिको विलाप करते दिखाया। राजाने कोई उत्तर न दिया।

इसी समय नगरके कोतवालने किसी परनारीको हरण करनेवाले एक अपराधीको राजाके सामने न्यायके लिए पेश किया। राजा मधुने उस अपराधीको हाथ-पांव और सिर काटनेके दण्डोंमें से कोई दण्ड देनेको कहा। रानी चन्द्राभाने राजासे पूछा, "हे राजन्! यह दण्ड प्रजाके लिए ही है या राजाके लिए भी है?" "सबके लिए" राजाने उत्तर दिया।

इस उत्तरको सुनकर रानी नीचे मुंह करके मुस्करा दी, मानो वह कह रही थी, "हे राजन्! आप भी परदारारत अपराधी व पापी हो। दण्डके योग्य हो।"

रानीके प्रश्न कटाक्षने राजा मधुके अतरगकी ऑखे खोल दी। राजा मनमे समस्त बात समभ कर ऐसे मुरभा गया जैसे धूपसे जला हुआ कमल। राजाने इसे अपने कल्याणकी बात समभ कर रानी चन्द्राभाका उपकार माना। वह ससारसे विरक्त हो गया।

उसी समय अयोध्यामे मुनि विमल वाहन पधारे। राजा मधु और उसका छोटा भाई कैटभ मुनिसे धर्म श्रवण कर दीक्षा ले मुनि बन गये। रानी चन्द्राभा भी आर्यिका बन गयी। नगरके और बहुत से स्त्री-पुरुषोने भी उनका अनुसरण कर दीक्षा ले ली।

राजाका पुत्र माधव सिंहासन पर वैठकर राजकार्यका सचालन करने लगा।

मधु और कैटभ मुनि बन कर महाव्रतोका पालन करने लगे, वे कठोर-से-कठोर तप, उपवास करने लगे। वे ग्रीष्म ऋतुमे तपते पहाडो पर तप करते, वर्षामे वृक्षोके नीचे ध्यान करते और शीत-कालमे वे नदी या सरोवरके किनारे ठण्डी-ठण्डी पवनोके बीच तप करते। तपस्वियोमे ये दोनो मुनि आदर्श उदाहरण बन गये। ये तीर्थराज सम्मेद शिखरसे देवलोक गये।

स्वर्गसे मधुका जीव तो श्री कृष्णकी रानी रुक्मणीकी कूखसे प्रद्युम्न पैदा हुआ और कैटभ श्री कृष्णकी दूसरी रानी जाववतीके सम्बुकुमार पुत्र होगा और वह वटपुरका राजा वीरसेन रानी चन्द्राभाके विरहके सतापमे दुर्विचारोके साथ मर कर कई योनियोमे भ्रमण करके धूमकेतु नामका असुर वना और अपने पूर्व जन्मके वैरी राजा मधुके जीव प्रद्युम्नको जन्मते ही उठा कर ले गया। यह वैरभाव पापको वढाने वाला है। इसी वैरके कारण प्रद्युम्न हरा गया। पर उसने मुनि वनकर जो तप किया था, उसके प्रतापसे प्रद्युम्नकी रक्षा मेघकूटके विद्याधर कालसम्वरने की।"

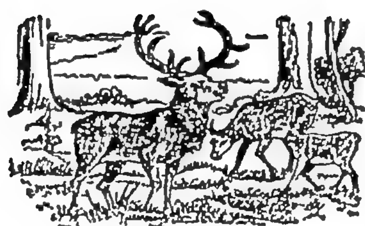
ये सब बाते सीमधर जिनेन्द्रने पद्मरथ चक्रवर्तीको वतायी। नारद भी सब बाते सुननेके पश्चात् सीमन्धर स्वामीको प्रणाम करके प्रसन्न-चित्त मेघकूट नगर अपनी आँखोसे प्रद्युम्न कुमारकी दशा देखने गया। कालसम्वर विद्याधरने नारदजीका वडा सम्मान किया। वहाँसे नारद रनवासमे विद्याधरी कनकमालाके पास गया। उसने बडी विनयसे नारदको नमस्कार किया। नारद प्रद्युम्न कुमारको सकुशल देखकर वहुत प्रसन्न हुआ।

वहाँसे नारद तुरन्त आकाशमार्गसे द्वारिका लौट आया और उसने सीमन्धर स्वामीसे सुनी समस्त बात तथा मेघकूटमे अपनी आँखो देखे प्रद्युम्नके सव वृत्तान्तको कृष्ण और दूसरे यादवो-को सुनाया।

प्रद्युम्नकी सुरक्षाका समाचार सुनकर सवको अति हर्ष हुआ। फिर प्रफुल्लित मुखकमल नारद रुक्मणीके पास जाकर कहने लगा, "हे रुक्मणी! तेरा पुत्र मेघकूट नगरमे कालसम्वर विद्याधर और उसकी रानी कनकमालाके यहाँ सकुशल है। वह सोलह वर्षकी आयुमे प्रज्ञप्ति विद्याको प्राप्त कर यहाँ आयेगा। जिस दिन आयेगा, उस दिन तेरे नगरके उपवनोमे बिना समय मोर नाचेगे, ध्वनि करेगे, सूखे तालाव जलसे भर जायेगे और तेरा शोक दूर करनेके लिए अशोक वृक्ष प्रफुल्लित हो जायेगे, इतना ही नही, गूँगे वाचाल हो जायेगे और कुबडोका कुवडापन जाता रहेगा। तव तुम अपने प्रिय पुत्रका आगमन समझना। ये सीमन्धर स्वामीके वचन है, अन्यथा नही हो सकते।"

नारदके मुखसे अपने पुत्रकी इतनी वाते सुनकर, उसकी जानमे जान आई और स्तनोमे दूध भर आया।

रुक्मणीने नारदका आभार मानते हुए कहा, "हे भगवन्! यह काम आप जैसा भाई ही कर सकता है, दूसरा नहीं। मैं तो छोटीसी बालिका ही हूँ। मैं पुत्रके शोककी आगसे जल रही थी। मेरा कोई सहारा नहीं था। परन्तु आपने हस्तावलम्ब देकर मुझे थामा है। जो कुछ सीमन्धर स्वामीने कहा है, वह सत्य ही है। मुझे जीवित पुत्रके दर्शन अवश्य होगे। मै जिनेश्वरके वाक्यपर ही जीवित हूँ। आप इच्छानुसार जहाँ चाहो जा सकते हो, पर शीघ्र दर्शन देना।" इस तरह रुक्मणीने नारदसे मीठे वचन कहकर प्रणाम किया। नारदने भी उसे आशीर्वाद दिया और चला गया।



: २७

कृष्णके और विवाह

कृष्णके सुभद्रा और रुक्मणीके साथ विवाहोका वर्णन पीछे दिया जा चुका है। यहाँ उसके और विवाहोकी बात बताई जायेगी।

एक दिन नारद कृष्णके पास आकर पारस्परिक क्षेम-कुशल पूछनेके पश्चात् कहने लगा, "हे कृष्ण! विजयर्द्धि पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे जम्बुपुर नगरका राजा जाम्बूब विद्याधर है, जिसकी रानी शिवचद्रा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शरीरवाली है। उसके विश्वक श्रेणी पुत्र और जाम्ववती राजकुमारी है। उस राजकुमारीको मैने उसकी सखियोके साथ गगामे स्नान करनेके लिए प्रवेश करती देखी। वह रूप-सौन्दर्यमे ऐसी सोहती थी, मानो तारो से युक्त चन्द्रकाति ही शोभायमान हो।"

इतना सुनते ही कृष्ण जाम्ववतीको प्राप्त करनेको तैयार हो गया। वह अपने वडे भाई अनावृष्टिके साथ गगा पर गया और ज्यो ही कृष्ण और जाम्ववतीने एक दूसरेको देखा, उनकी आँखे चार हुई, आपसमे उनका प्रेम हो गया। कृष्णने उसे अपनी दोनो भुजाओमे उठा लिया। जाम्ववतीको उठाते ही उसकी सखियोने विलाप करना आरम्भ कर दिया। उसका पिता राजा जाम्बूब तुरन्त अपनी सेना तैयार करके कृष्णसे लडने और अपनी पुत्रीको छुडाने आ गया। पर अनावृष्टिने लडाईमे उसे पराजित कर दिया और वाध कर लानेके पश्चात् कृष्णको सौंप दिया। तव उस राजाको विरक्ति हो गई।

और उससे अपना राज्य अपने पुत्र विश्वकसेनको सौप कर स्वय मुनि दीक्षा ले ली। विश्वकसेनने अपनी बहन जाम्ववती का विवाह विधिपूर्वक कृष्णसे कर दिया। द्वारिकामे रुक्मणीके महलके निकट ही जाम्ववतीको निवास स्थान दिया। और उन दोनोमे गहरा प्रेम हो गया।

इसके पश्चात् कृष्णने सिंहल द्वीपके राजा श्लक्षणरोमसे लड़ कर उसकी राजकुमारी लक्षणाको हर कर लाकर विवाह किया। कृष्णने उसे जाम्ववतीके निकट भवन दिया।

फिर राष्ट्रवर्धन देशकी अजासुरी नगरीके राजा सुराष्ट्रकी विनया-रानी, महापराक्रमी तथा महाबुद्धिमान नेमित पुत्र और सुसीमा राजकुमारी थी। सुसीमा जैसी वनिता वसुधापर और कोई न थी। राजा सुराष्ट्रने पुत्रको युवराज पद दे दिया। एक दिन राजकुमार नेमित कुमार अपनी बहन सुसीमाके साथ समुद्रपर स्नान करने गये। नारदने कृष्णको बताया कि सुसीमा रूप-गुणकी खान है। कृष्ण अपनी सेना लेकर सुसीमा को लेने गये। नेमितको लड़ाईमे पराजित करके कृष्ण सुसीमाको द्वारिका ले आया। कृष्णने सुसीमाको लक्षणाके महलके समीप निवास दिया।

सिंधु देशके इस्वाकु कुलके राजा मेरूकी पुत्री गौरी थी। वह साक्षात् गौरी यानी पार्वती समान और मूर्तिवती विद्या ही थी। कृष्णने राजा मेरूके पास अपना राजदूत भेजा। उसे किसी निमित्त ज्ञानीने पहले ही वता रखा था, कि उसकी बेटी गौरीका पति कृष्ण होगा। मेरूने सहर्ष अपनी पुत्री गौरी श्री कृष्णसे विवाह दी।

अरिष्टपुरका राजा हिरण्यनाभि वलभद्रका मामा था। उसकी रानीका नाम श्रीकान्ता और पुत्रीका नाम पद्मावती था। वह साक्षात् लक्ष्मीके सदृश थी। उसके स्वयम्वरका समाचार सुनकर कृष्ण, वलभद्र और वडा भाई अनावृष्टि वहाँ गये। राजाने उन सव-

का बडा आदर-मान किया। राजकुमारी पद्मावतीने स्वयम्वरमे कृष्णको फूलमाला पहनाई। उनका विवाह हो गया। हिरण्यनाभके बडे भाई रेवतकी चार राजकुमारियो—रेवती, वन्धुवती, सीता और राजीवनेत्रा—की सगाई पहले ही बलभद्रसे हो चुकी थी। इसलिए इस अवसरपर उनके विवाह भी बलभद्रसे कर दिये गये। दोनो वलभद्र और कृष्ण अपनी नववधुओके साथ द्वारिका वापिस आये।

गाधार देशकी पुराकलवती नगरीके राजा इन्द्रगिरि और रानी मेरूमतीकी राजकुमारी गाधारी थी। उसके भाईका नाम हिमगिरि था। उसने अपनी बहनकी सगाई हयपुरके राजा सुमुखसे की थी। नारदने कृष्णको यह सब बात सुनाई। कृष्णने युद्धमे हिमगिरिको पराजित करके गाधारीसे विवाह किया।

ये कृष्णकी आठ पटरानियाँ थी। उसकी बहुत सी रानियाँ और भी थी।

कृष्णने पुण्यसे प्राप्त नारायण पदके भोग रूप फलोको भोगा। उसके राजमे कोई भी पुरुष दु खी नही था। वह धर्मका रक्षक राजनीतिमे प्रवीण और सन्मुख आनेवाले शत्रुओको क्षणमात्र मे तृणके समान उखाड डालनेवाला था।

जिन-धर्मके पालनसे कृष्णके समान मनवाछित सुख प्राप्त होते हैं।



: २८ :

कौरव, पांडव और द्रौपदी स्वयम्वर

राजा समुद्रविजय आदि दस भाइयोके प्रसिद्ध पाच पाण्डव युधिष्ठर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भानजे थे। राजा श्रेणिकने पाण्डवोका नाम सुनते ही श्री गौतम गणधरसे पूछा, "हे प्रभो ! ये पाण्डव कौन है और किस वशमे पैदा हुए है ?

उत्तरमे गौतम गणधरने पाण्डवोकी उत्पत्ति और उनका नीचे लिखा वृत्तान्त सुनाया

"सोमप्रभ श्रेयासके वशमे राजा कुरू हुए थे। उसके वशमे तीन तीर्थंकर शातिनाथ, कुथुनाथ और अरहनाथ हुए। इस वशके सभी राजा चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके साधक हुए थे। इस वशमे बहुतसे बडे-बडे राजा हुए। कुरूजागल देशमे हस्तिनापुरमे पृथ्वीके आभूषण प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देवके समय राजा सोमप्रभके पुत्रका नाम जय कुमार था, उन्हे मेघेश्वर भी कहते थे। यह मेघेश्वर भरत चक्रवर्तीका मत्री था। इनके कुरू नामका पुत्र हुआ। राजा कुरूके कुरूचन्द पुत्र हुआ। इस प्रकार प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथसे लेकर बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथके समय तक इस वशमे करोडो राजा महाराजा हुए। बहुतसे राजाओके पश्चात् चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार कुरूवशमे ही हुए। इसी वशमे राजा विश्वसेन और रानी एराके पचम चक्रवर्ती सोलहवे तीर्थंकर शातिनाथ हुए। इनसे बहुत समय पश्चात् राजा सूर्य और रानी श्रीमतीके यहाँ

भगवान् कुंथुनाथ सतरहवे तीर्थंकर और छठे चक्रवर्ती हुए। इनके पीछे अनेक राजा और हुए। फिर राजा सुदर्शन और रानी मित्राके घरमे अठारहवे तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ सातवे चक्रवर्ती हुए। महापद्म नवे चक्रवर्ती भी इसी वशमे बहुत बादमे हुए।

अनेक राजाओके पश्चात् राजा धृतराज हुआ, उसकी तीन रानियाँ अंबिका, अबालिका और अबा थी। धृतराजकी रानी अंबिकासे धृतराष्ट्र पुत्र हुआ, अबालिकासे पाण्डु पुत्र हुआ और अंबा से विदुर पुत्र हुआ। ये तीनो पुत्र महाज्ञानवान थे। राजा धृतराजके भाई रुक्मणके यहाँ रानी गगासे भीम पुत्र हुआ।

राजा धृतराष्ट्रकी रानी गाधारीके दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए जिनमे आपसमे वडा प्रेम था। ये सब भाई शस्त्रविद्यामे प्रवीण थे। राजा पाण्डु की दो रानियाँ कुन्ती और माद्री थी। कुन्तीके कर्ण तो गाधर्व विवाहसे हुआ और फिर युधिष्ठर, भीम और अर्जुन हुए और माद्रीसे दो पुत्र नकुल और सहदेव हुए। ये पाँचो भाई महा जिनधर्मी और पचपरमेष्ठीके दास थे। कुछ समय पश्चात् पाण्डुने मुनि दीक्षा और माद्रीने आर्यिका दीक्षा ले ली और स्वर्ग गये।

धृतराष्ट्रके सौ पुत्रों और पाण्डुके पांच पुत्रोमे राज्यके बटवारे-पर विरोध पैदा हो गया। तब भीष्म, विदुर और दुर्योधनके मत्री शकुनिने मध्यस्थ वनकर पाँच पाण्डवो और धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोमे आधा-आधा राज्य वाँट दिया।

परन्तु दुर्योधन आदि सौ भाई इस बटवारेसे असतुष्ट और अप्रसन्न थे।

इसी समय जरासिंध, दुर्योधन और कर्णमे एकान्तमे बातचीत हुई और इनमे अटूट प्रेम हो गया।

धनुर्विद्याके प्रसिद्ध आचार्य भार्गवाचार्यके वशमे द्रोणाचार्य बड़े नामी शस्त्रविद्या विशारद थे। ये पाचो पाण्डवो और दुर्योधन आदि सौ भाइयोको धनुर्वेद समान भावसे सिखाते थे।

द्रोणाचार्यका नाम सुनते ही राजा श्रेणिक गौतम गणधरसे पूछने लगे, "हे प्रभो! भार्गवाचार्यके वशज द्रोणाचार्यके वशकी कथा मुझे सुनाओ।" गौतम गणधरने कहा, "पहले आत्रेय हुए थे। उनका पुत्र और शिष्य कौथुमि था। उसका पुत्र अमरावर्त, उसका सित्व, उसका वामदेव बेटा हुआ। फिर कपिष्ठल जगस्थामा, सरवण और सरासरण हुए। सरासरणका पुत्र विद्राबण हुआ, जिसका पुत्र द्रोणाचार्य हुआ। द्रोणाचार्यकी अश्विनी रानीसे अश्वस्थामा बडा धनुर्धारी पुत्र था। उसके सामने सिवाय अर्जुनके और कोई नही आ सकता था।"

गौतम गणधरने द्रोणाचार्यका वृत्तान्त सुनानेके पश्चात् फिर पाण्डवोकी बात कहनी आरम्भ करदी। "अर्जुनके प्रताप और धनुर्विद्या ज्ञानको दुर्योधन आदि सौ भाई सहन न कर सके। पहले राज्य का जो विभाजन और सधि हुई थी, वे उसमे दोष निकालने लगे। उनको यह बात ही सहन न थी, कि आधे राज्यके पाँच पाण्डव मालिक वने और आधेके वे सौ भाई।

दुर्योधन आदिके मनके असन्तोषकी वात पाण्डवोने सुन ली। युधिष्ठर तो महावीर था, इसलिए यह सुनकर उसे क्रोध पैदा न हुआ। पर दूसरे चारो छोटे भाई यद्यपि समुद्र समान निर्मल और गम्भीर थे, दुर्योधन आदिके वचन सुनकर उन्हे भी क्षोभ हो गया। सबसे पहले अर्जुनने उठकर कहा कि मैं बाणोकी वर्षासे शत्रुओको नष्ट कर दूंगा। तव युधिष्ठरने उसे शात किया। फिर भीम वडे अजगरके समान फुकार कर कहने लगा, "मैं अपनी दृष्टिसे सौ शत्रुओको भस्म कर दूंगा।" उसे भी वडे भाईके वचनोने मत्रवत्

शांत किया। इसी प्रकार नकुल और सहदेवको भी युधिष्ठरने क्रोध करनेसे रोका। ये सभी चारो भाई युधिष्ठरके लिए प्राण समान थे और वे बडे भाई की आज्ञा मानते थे। वे सब शातिसे घरमे रहने लगे।

धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदि तो बडे कपटी थे। उन्होने उस घरको रातके समय आग लगा दी, जिसमे पाण्डव सो रहे थे। अग्निसे बचनेके लिए पांचो पाण्डव माता कुन्ती समेत सुरगके मार्गसे निकलकर विदेश चले गये।

छल प्रपचसे पाण्डवोको मारनेके कारण दुर्योधनका बडा-अपयश हुआ, हस्तिनापुरकी समस्त प्रजा, स्त्री-पुरुष, उसकी निन्दा करने लगे।

सुरगसे निकलकर इन पाँचो भाइयोने गगा पार करके भेष पलट लिया और पूर्वकी ओर चल पडे। मार्गमे वे कोसिकपुरी पहुँचे, जहाँका राजा वर्ण था। उसकी रानी प्रभावती और पुत्री पुष्पके समान कोमल सुदर्शना थी। इस राजकुमारीने युधिष्ठरके रूप-शौर्यकी प्रशसा पहले सुनी थी। इसलिए उसे युधिष्ठरके प्रति अनुराग था। अब दोनोने एक दूसरेको देखा, तो वे दोनो एक दूसरे पर अनुरक्त हो गये। पर युधिष्ठरने दूरदर्शितासे उसे भविष्यमे विवाहके सकेतसे आश्वासन दिया। सुदर्शना भविष्यमे युधिष्ठर मिलनकी आशा से सखियोमे विनोद करती हुई अपना समय बिताने लगी।

ब्राह्मणोके भेष्मे ग्राम-ग्राम नगर-नगर जाते हुए पाँचो राजकुमार सबके मनोको मोह लेते थे और इन्हे रास्ते भर स्वादिष्ट भोजन और सभी सुविधाएँ मिलती रहती थी। इन्हे कोई कष्ट नही हुआ।

आगे इन पाँचो पाण्डवोने ब्राह्मणोके भेपसे तपस्वियोका भेष बदल लिया। ये मूलेष्मान्तक तपोवनमे तपस्वियोके अति रमणीक

आश्रममे विश्राम करने लगे। वहाँ आश्रममे कुन्ती और युधिष्ठरका एक तपस्विनीसे अकल्पित और अपूर्व मिलन हुआ। इसका नाम वसन्त सुन्दरी था। वह वसुन्धरपुरके राजा विंध्यसेन और रानी-नर्मदाकी राजकुमारी थी। उसके माता-पिताने राजा युधिष्ठरसे उसका विवाह करनेकी बात सोची थी। पर उनके जल जानेका समाचार सुनकर यह वसन्त सुन्दरी राजकुमारी अपने पूर्वोपार्जित कर्मोकी निन्दा करती हुई तपस्वियोके आश्रममे इस विचारसे तप करने लगी, कि उसके फलस्वरूप जन्मातरमे युधिष्ठर ही उसका पति होगा। अत्यन्त रूप लावण्य वाली यह तपस्वनी पाटवरकी साडी पहने और सिरपर जटा बढाये, कानो तक फैले विशाल और तीक्ष्ण नेत्रो और लाल फूलोसे होठोवाली, चन्द्रमुखी देवताओके मनोको भी हर लेनेवाली थी। सभी तपस्विनियोकी वह पूज्य बनी हुई थी और चन्द्रकला समान निर्मल वह समस्त तपोवनको उज्ज्वल कर रही थी। जब पाण्डव उस आश्रममे पहुँचे तो उस वसन्त सुन्दरी तपस्विनीने उनका समुचित आतिथ्य-सत्कार किया, मधुर वचनोसे उनके मार्ग यात्राके कष्टोको दूर किया।

ज्योही माता कुन्तीने उसे देखा उसने स्त्री-स्नेह वश वसन्त सुन्दरीसे पूछा, "हे बाले! हे कमल कोमली! तूने नवयौवनमे किस कारणसे वैराग्य धारण किया?" तब उस मृगनयनी मधुर भापिणी राजपुत्रीने अपने वचनोसे माता कुन्तीका मन हरते हुए अपने पिताके युधिष्ठरके साथ उसका विवाह करनेके विचारको बताया। उसने यह भी बताया कि पाण्डवोके जल जानेके समाचारको सुनकर वह इस जन्ममे युधिष्ठरको पानेकी आशा छोड उसे अगले जन्ममे पति रूपमे प्राप्त करनेकी अभिलाषासे तपस्विनी बन गई। वह कहती चली गई कि उचित तो यह था पतिके अग्निदाहका समाचार सुनते ही वह भी अग्निमे प्रवेश करके प्राण त्याग देती, पर हीन शक्ति होनेके कारण वह ऐसा न कर सकी। माता कुन्तीने उसकी दूर-दर्शिता, विचारशीलता और पतिप्रेमकी सराहना की।

इसी समय युधिष्ठर भी माके पास आकर खडा हो गया और मां और राजकन्या तपस्विनीकी वात सुनने लगा। युधिष्ठरने उन दोनोको धर्मोपदेश देकर शान्त किया और धीरज बधाया। युधिष्ठरके रूप और राजलक्षण आदि देखकर वसन्त सुन्दरीने उन सबको हर प्रकारका सुख दिया। प्रात.काल पाँचो पाण्डव और कुन्ती आश्रमसे यात्राके लिए चलनेको तैयार हुए। चलते समय युधिष्ठरने वसन्त सुन्दरीसे भविष्यमे मिलनेकी आशा प्रकट की और आगे चल पडे।

वसन्त सुन्दरी श्राविकाके पचाणुव्रत लेकर भविष्यमे पति मिलन की आशासे वही तपोवनमे रहने लगी।

तपोवनसे निकलते ही पाण्डवोने तपस्वी भेष त्यागकर फिर ब्राह्मण भेष वना लिया और इहापुर नगर चले गये।

जव राजा समुद्रविजयने द्वारिकामे यह सुना कि दुर्योधनने माया-चारसे कुन्ती और पाँचो पाण्डवोको अग्निमे जला दिया है और वे मर गये है, तव वह दुर्योधनपर बड़ा क्रुद्ध हुआ और कौरवोको नष्ट करनेको तैयार हो गया।

इधर इहांपुरमे भीमसेनने एक नर भक्षी राक्षस भृंगको मारकर जनताका भय दूर किया और यश प्राप्त किया।

वहाँसे चलकर पाँचो पाण्डव कुन्ती सहित तृश्रृंग नगर पहुँचे। वहाँके राजा चडवाहनकी दस सुन्दर कन्याएँ थी। राजाने उन लड-कियोका विवाह युधिष्ठरके साथ करनेका विचार किया था। पर जब उसने पाण्डवोंके अग्निमे जल जानेकी बात सुनी। तव उन लडकियोने श्राविकाके अणुव्रत लिये। उसी नगरके एक वडे धनवान सेठ प्रियमित्रने भी अपनी दो पुत्रियोके विवाह युधिष्ठरके साथ करनेका विचार किया था। पाण्डवोके परलोक सिधारनेका समाचार सुनकर उन दोनो लड़कियोने भी श्राविकाके अणुव्रत ले लिये।

फिर वे पाँचो भाई चम्पापुरी गये। वहाँ राजा कर्ण राज करता था। वह दुर्योधन और जरासिंधका मित्र था। उस नगरमे भीमसेनने एक उपद्रवी हाथी को मद-रहित करके प्रजाको उसके उपद्रवोसे मुक्त किया। पर वहाँ भीमने अपने आपको प्रकट नही किया।

इसके पश्चात् पाँचो पाण्डव अपनी माता कुन्ती सहित वैदिसि-नगर पहुँचे। वहाँ राजा वृषध्वज राज करता था। उसके द्यसानन्दा बड़ी यशवाली और निर्मल चरित्रकी लडकी थी। भीम उस राजाके घर भिक्षा मागने गया। पर राजाने भीमको महा पुरुष जानकर अपनी पुत्री द्यसानन्दाको ही उसे भिक्षामे देना चाहा। तब भीमने कहा, कि वह स्वतन्त्र नही है। अपनी माता और बडे भाईकी आज्ञा बिना इसे स्वीकार नही कर सकता। उनकी आज्ञा पाकर भीमसेनने द्यसानन्दाका पाणिग्रहण किया।

आगे नर्मदा नदीको पार करके पाण्डव सध्याकार नगरमे पहुँचे। वहाँके राजा सिंहघोष की अति सुन्दर पुत्री हृदयसुन्दरी थी। त्रिकू-टाचलके राजा मेघघोषने राजासे हृदयसुन्दरीको विवाह मे मागा, पर राजाने उसकी माग अस्वीकार कर दी। किसी निमित्त ज्ञानीने राजा सिंहघोषको बताता कि राजा मेघघोप विध्याचल पर्वतपर गदा नामकी विद्याको साधता है। जो वीर पुरुष राजा मेघघोपको मारेगा, वही हृदयसुन्दरीका पति होगा। भीमुसेनने युद्धमे राजा मेघ-घोषको मार कर गदा और हृदयसुन्दरीको विवाहमे प्राप्त किया।

फिर पाण्डु-पुत्र देश-विदेशमे विहार करते हस्तिनापुर जानेकी इच्छासे मार्गमे देवपुरोके समान माकदी नगरीमे आये। वहाँके राजा का नाम द्रुपद था। उसकी रानी भोगवती, धृष्टद्युम्न आदि पुत्र और पुत्री द्रोपदी थी। द्रोपदीका शरीर रूप लावण्य, सौभाग्य और कलाओसे अलकृत तथा शोभित था। उसके समान और सुन्दरी नही थी, और स्त्रियोमे वह बेमिसाल-अनुपम थी।

सभी राजकुमार इससे विवाह करनेके लिए राजा द्रुपदसे द्रोपदी की याचना करते थे। राजा द्रुपदने किसीकी प्रार्थनाको भग न करने के विचारसे द्रोपदीका स्वयम्वर रचा और सभी राजाओको उसमे निमन्त्रित किया। स्वयम्वरकी शर्त यह थी, कि जो राजकुमार गाडीव धनुपको गोल करके चन्द्रक यत्रको वीधेगा वही द्रोपदीका पति होगा।

द्रौपदीके रूप-सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर कर्ण तथा दुर्योधन आदि सभी राजाओका समूह माकदी नगरीमे स्वयम्वरमे भाग लेनेके लिए आये। अर्जुन आदि भी उस स्वयम्वरमे सम्मिलित हुए। द्रोण और दुर्योधन आदि धनुषके समीप आये और आकर उसे देखा। वह देवा-धिष्ठित धनुप था, उसे वे चढा भी न सके। तव द्रोपदीके भावी पति अर्जुन उस धनुपके समीप आया और उसने धनुपको ऐसे चढाया जैसे पति पतिव्रता स्त्रीको वशमे कर लेता है, वैसे ही उस धनुपकी फिडचि अर्जुनके वशमे हो गई। फिडचिके चढाने मात्रसे इतने जोर-का शब्द हुआ कि कर्ण और दुर्योधनादि के कान बहरे हो गये और वहाँ और कोई आवाज सुनाई न दी। अर्जुनके गाडीव धनुपको चढाते ही द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदिको यह शका हुई कि कही यह व्यक्ति अर्जुन ही न हो, मरकर दुवारा न पैदा हुआ हो, क्योंकि और किसी धनुपधारीके पास यह विद्या कहाँ? उन्होने उसकी दृष्टि, मुट्ठी और चतुराईकी प्रशसा की। इधर तो यह शका और विचार हो रहा था, उधर वेध-विद्यामे प्रवीण अर्जुनने अपना निशाना लगाकर चन्द्रक यत्रको वीध दिया। निशानेका लगना था, कि द्रोपदीने शीघ्र आकर अपने करकमलोसे इसके सुन्दर कण्ठमे जय-माला डाली। जल्दीवाजीके कारण जयमालाका धागा टूट गया और मालाके पुष्प वायुकी तेजीसे अर्जुनके गलेके साथ दूसरे चारो पाण्डवोपर भी आ पडे। तव किसी विवेकहीन मनुष्यने यह कह दिया, कि द्रोपदीने तो इन पाँचो राजकुमारोको वरा है। महासती

द्रौपदी अर्जुनको वर कर उसके पास खडी लताके समान लग रही थी। कुशल अर्जुन तभी नूपुर पहनी उस पार्वतीको राजाओंके बीचसे अपनी माता कुन्तीके पास ले जाने लगा।

द्रौपदीके जाते ही स्वयम्वरमे आमत्रित कुछ राजा लडनेको तैयार हो गये, पर नीति चतुर राजा द्रुपदने सबको रोका, मना किया, पर वे राजा अपने बलके नशेमे चूर थे और न माने। वे तब अर्जुनका पीछा करने लगे। भीम अर्जुन और धृष्टद्युम्न तीनो धनुषधारियोने उन्हे आगे न आने दिया, वे पीछे भी न जा सके। धृष्टद्युम्न अर्जुनके साथ रथमे सवार था। तब उसने अर्जुनसे निवेदन किया कि वह भीष्म और द्रोणको अपने व्यक्तित्वसे परिचित कराये। तब अर्जुनने अपने नामका पत्र लिखकर बाणके साथ द्रोणके पास फेका और वह पत्र द्रोणकी गोदमे पडा। इस परिचय-पत्रको पढ कर द्रोण अश्वत्थामा, भीष्म और विदुरको वडा हर्ष हुआ। सवका यह मिलन कितना आह्लादकारी था। उन्होने दुर्योधनको भी वहॉ बुलाया। सभी कौरव-पाण्डव अर्जुन और द्रोपदीके विवाहमे सम्मिलित हुए। विवाहके बाद दुर्योधन आदि भी पाँचो पाण्डवो, कुन्ती और द्रौपदी आदिको लेकर हस्तिनापुर आये। आधा राज पाण्डवोको दे दिया।

इसके पश्चात् युधिष्ठरकी सभी मगेतरोका युधिष्ठरसे और भीमसेनकी मगेतर राजा वृषध्वजकी पुत्री द्यसानन्दाको वुला कर उन्हे विवाह दिया गया। द्रौपदी भी अर्जुनके साथ सुखपूर्वक रहने लगी। वह युधिष्ठर, भीम और अर्जुनके दोनो बडे भाइयोके लिए पुत्रवधु तुल्य थी और नकुल और सहदेव अर्जुनके दोनो छोटे भाइयोकी भाभी इनके लिए माता सदृश थी।

इन पॉचो पाण्डवो और द्रौपदीके विरुद्ध विवेकहीन मनुष्योका यह कथन कि द्रौपदीके पाँच पति थे, वडा ही पाप पूर्ण है। दूसरेके

सच्चे दोषको भी प्रकट करना पापका कारण है, पर जो दूसरेमे वृथा झूठा दोष लगाता है, उसके पापको क्या कहा जाये ? जो आदमी छोटे-से-छोटे मनुष्यके सच्चे दोषको भी कहता है, वह कुगति मे जाता है, ससारमे उसकी निन्दा होती है। सज्जन पुरुष परदोष को नही कहते। स्त्रीकी सच्ची निन्दा करने की अपेक्षा सत्पुरुष मौन रहते है और दूसरोको मना करते है। आदमीका कर्तव्य है कि वह निन्दा सूचक असत्य वचनोको छोडे और निष्पाप तथा दया-मयी जो सत्य वचन है उन्हे बोले।



: २६ :

कीचक निर्वाण

धीर-वीर पाण्डवोके हस्तिनापुरमे रहते समय उनकी उत्कृष्ट विभूति और यशको देखकर सौ कौरव पहलेके समान उनसे फिर ईर्ष्या करने लगे और वचन मर्यादा तथा राज विभाजनके इकरारसे विचलित हो गये। मन्त्री शकुनिकी सम्मतिसे दुर्योधनने कपटके पासोसे भोले-भाले युधिष्ठरको जुएमे जीत लिया। दुर्योधनने हारे हुए युधिष्ठरसे कहा, "हे युधिष्ठर! तुम सत्यवादी हो, प्रतिज्ञाको पूरा करनेवाले हो, इसलिए यहाँसे चले जाओ और वारह वर्ष तक छिप कर ऐसी जगह रहो, जहाँ तुम्हारा नाम तक किसीको मालूम न हो।"

दुर्योधनके इस वचनसे यद्यपि भीमसेन आदि छोटे भाइयोको बड़ा क्षोभ हुआ, पर युधिष्ठरने उन्हे शान्त कर दिया। वे सब राज-पाट छोड कर हस्तिनापुरसे वारह वर्षके लिए चल पडे। जैसे चादनी चन्द्रमाके पीछे-पीछे चलती है, वैसे ही प्रेम और हर्षके साथ द्रौपदी भी अर्जुनके पीछे-पीछे अज्ञातवास के लिए चल पडी।

पाँचो पाण्डव कृष्णके यहाँ आश्रय पानेके लिए चल दिये। चलते-चलते वे कालान्जना नामक वनीमे पहुँचे। उस समय वहाँ प्रकीर्णक विद्याधरका पुत्र असुरोद्वीप नगरसे सुतार विद्याधर अपनी पत्नी कुसुमावलीके साथ वनीमे क्रीडा कर रहा था। पति-पत्नीने भीलो-का भेष वनाया हुआ था। अर्जुन और उस विद्याधरमे धनुर्युद्ध होने

लगा और बाणोसे सब दिशाएँ आच्छादित हो गयी। फिर दोनोमे वाहुयुद्ध होने लगा और अर्जुनने उस विद्याधर की छातीमे ऐसे जोर-से मुक्का मारा कि वह जमीनपर गिर पडा। तब उसकी स्त्री कुसुमावलीने पतिके प्राणकी भीख मागी और दयावान अर्जुनने उसे क्षमा कर दिया। तब वह विद्याधर अर्जुनको नमस्कार करके विजयार्द्धगिरिकी दक्षिण श्रेणीमे चला गया।

चलते-चलते ये पाण्डव मेघदल नगर पहुँचे। वहाँके राजा सिंह-की रानी कनकमेखला थी और राजकुमारी कनकावती थी, जो महासुन्दर थी। उसी नगरके मेघ वणिककी अलका पत्नी थी। उनके लक्ष्मीकान्ता पुत्री थी। किसी निमित्तज्ञानीके कहनेके अनुसार उन दोनो पुत्रियोकी माताओने उन्हे भीमसेनको देने का निश्चय किया। भीमसेन भेष बदलकर उनके यहाँ भिक्षा मांगने गया और भिक्षामे पुण्यके योगसे ये दोनो कन्याएँ मिली।

इसके पश्चात् ये सब पाण्डव भाई कौशल देश गये। कुछ समय वहाँ रहकर वे रामगिरि पर्वत गये, जहाँ उन्होने राम लक्ष्मण द्वारा निर्मित जिन-चैत्यालयोके दर्शन किये।

इस प्रकार स्वेच्छासे इन पाण्डवोने छिपकर ग्यारह वर्ष व्यतीत किये। और किसीको इनके वारेमे पता न चला।

विराट नगरका राजा विराट और उसकी रानी सुदर्शना थी। ये पाण्डव वहाँ पहुँच गये। पाण्डव और द्रोपदी अपना भेष बदल कर विराट नगरमे रहने लगे। वहाँ उनका बडा सम्मान हुआ। युधिष्ठर तो पण्डित वनकर रहने लगा। भीमसेन रसोइया वन गया। अर्जुन नृत्यकाली, नकुल सहदेव सलोहतरी यानी साइस और द्रोपदी मालिन वन कर वहाँ रहने लगी। ये वडे विनोद और आनन्दसे वहाँ अपना समय विताने लगे।

इसी समय वहाँ नीचे लिखी यह घटना हो गयी।

चूलिका नगरीका राजा चूलिक था। उसकी रानीका नाम विकचा था, जो खिले कमलके समान मुख वाली और सा पुत्रोकी माँ थी। उन पुत्रोमे सबसे बडे पुत्रका नाम कीचक था और वह दुराचारियोमे सबसे बडा और रूप, यौवन, चतुराई, शूरवारता और धनके मदमे चूर रहता था। कीचककी बहन सुदर्शना राजा विराट की रानी थी। एक बार कीचक अपनी बहनसे मिलने विराट नगर आया। वहाँ उसने द्रोपदीको देखा और उसपर आसक्त हो गया। वह पापी यह नही जानता था, कि यह महासती है। अत्यन्त मानी कीचक भी द्रोपदीके रूपके सामने मानहीन-दीन समान प्रेमकी भीख मागने लगा। उसने अनेक उपायो, लोभ-लालच और राग पूर्ण वचनोसे फुसलानेका प्रयत्न किया। दूसरोके द्वारा भी कीचकने द्रोपदीको प्रलोभन दिलवाये, पर उस महासतीके सामने वे सव वेकार। परन्तु कीचकके वार-वार आग्रह करने पर भी द्रोपदीने उसे इस दुस्साहसका मजा चखानेके लिए मिलनेका झूठा विश्वास दे दिया।

द्रोपदीने कीचककी सव वात अपने जेठ भीमसेनसे कह दी। भीमसेन तो इतना सुनते ही आग-वगूला हो गया, उससे द्रोपदीके द्वारा कामातुर कीचकको सायकाल एकान्त स्थानमे मिलनेकी वात पक्की करा ली। फिर भीम शैलघ्री (द्रोपदी) का रूप वनाकर उस स्थान पर जा पहुँचा। भीम अत्यन्त वलवान तो था ही, नियत समय पर मस्त हाथीके समान वह कामातुर कीचक मौतके मुंहमे जा पहुँचा। भीमसेनने तुरन्त अपनी दोनो भुजाओसे उसे गलेसे लगा कर और गला दवोच कर पृथ्वी पर पटक मारा और उसकी छाती पर चढ बैठा। फिर मुक्को पर मुक्के मार कर उस परदारारत कामी तथा कुशीलाभिलाषीको पापका फल चखा कर दया करके छोड दिया।

यह दुर्गत और ठुकायी कीचकके लिए वरदान सिद्ध हुई।

विपयासक्ति जनक पापका फल प्रत्यक्ष देख-भोग कर उसके अतरग की आँखे एक दम खुल गयी और उसे संसारसे अत्यन्त विरक्ति हो गयी। उसने रतिवर्द्धन मुनिसे मुनि-दीक्षा ले ली। अब क्या था ? कीचक मुनि आत्म स्वरूप चितन, शास्त्राध्ययन और भाव शुद्धिके घोर तप कार्यमे तल्लीन हो गया। वह रत्नत्रयकी प्राप्तिका उद्यम करने लगा।

कीचकके मुनि वनने की वात उसके भाइयोको भी मालूम न हुई। जव उन्होने कीचकको न देखा, तो वे वहुत चिंतित हुए, घवराये। उन्होने कीचककी जगह-जगह खोज की, पर उन्हे उसका पता तक न मिला। फिर उन्होने एक जलती चिता देखी और किसीने उन्हे कह दिया, कि यह कीचककी ही चिता है। उन्होने सोचा कि इस मालिन (द्रोपदीके) कारण ही कीचक मारा गया है। वे द्रोपदीको जलानेको तैयार हो गये। उन पापियोने अग्नि जलाई और जव उन्होने द्रोपदीके भेपमे भीमको जलाना चाहा, तव उस महावली भीमने उन सभी भाइयोको जलती चितामे डाल दिया और वे जलकर राख हो गये। उसने उन सव पापियोका नाम-निशान ऐसे मिटा दिया जैसे एक शेर अनेक हाथियोको नष्ट कर देता है।

मुनि-मार्गपर चलना वड़ा कठिन है। फिर देवता, यक्ष और परीक्षा प्रधानी गृहस्थ मुनिकी हर समय परीक्षा करते रहते है। जव मुनि कीचक वनमे एकान्तमे ध्यानारूढ था, तव एक यक्षने उन्हे देखा। यक्षने सोचा कि यह तो द्रोपदी पर आसक्त था, देखूं अव इसके मनमे कितनी दृढता है। मुनि कीचकके चित्तकी परीक्षाके लिए वह यक्ष आधी रातके समय द्रोपदीका रूप वना कर मुनिके सामने जाकर कामोन्माद पूर्ण चेष्टाएँ करने लगा, जिससे उसका मन डिगे, वह उसके प्रति राग प्रकट करे। पर कीचक तो मानों आँखोसे अधा और कानोसे वहरा वना हुआ ध्यान मग्न था, न उसने द्रोपदी रूपी यक्षकी काम चेष्टाएँ देखी और न राग भरी वाते सुनी। उसने तो

अपनी सभी इन्द्रियोको वशमे कर रखा था, उन्हे जीत लिया था और मनको तपाग्निमे शुद्ध कर लिया था। यक्षकी एक न चली। वह हार गया और मुनि कीचक इस परीक्षामे उत्तीर्ण हो गया।

इसी समय मुनि कीचकको केवल ज्ञान पैदा हुआ, उन्हे त्रिकाल और त्रिलोककी सब वस्तुएँ—बाते हस्तकमलवत् ज्ञानमे उन्हे झलकने लगी। केवल ज्ञान उत्पन्न होते ही यक्षने असली रूपमे प्रकट होकर उन्हे नमस्कार किया और क्षमा याचना की।

फिर यक्षने मुनि कीचकसे द्रोपदीके प्रति इतना मोह पैदा होने का कारण पूछा क्योकि बिना कारण ऐसा तीव्र मोह होना कठिन है।

तब कीचक मुनि यक्षसे अपने और द्रोपदीके कुछ पूर्व जन्मोका वृत्तान्त बताने लगे, जिससे इस मोहका कारण मालूम हो जाय।

कीचक मुनिने कहा, "हे यक्ष! एक समय मै तरङ्गिणी और वेगवती नदियोके सगम पर रहनेवाला महादुष्ट मलेच्छ था। मेरा नाम क्षुद्र था और मै महापापी गरीब जीवोका वैरी था। मेरे भावो मे हर समय क्रूरता रहती थी। सौभाग्यसे मुझे एक साधुके दर्शन हो गये। और मेरे परिणाम शान्त हो गये। मैंने मरकर मनुष्य योनिमे जन्म लिया। मेरा नाम कुमार देव रखा गया। मेरे पिताका नाम धनदेव और माताका नाम सुकुमारिका था। मेरी माँने भोजनमे विष मिलाकर एक सुव्रत मुनिको मार डाला। उसके फलस्वरूप वह पापिनी मर कर नर्कमे जन्मी और वहाँ दुख भोगती रही।

फिर वह पशु गतिमे पैदा हुई और फिर नर्क गई। मैंने यद्यपि मनुष्य योनि तो प्राप्त कर ली, पर मैंने जीवनमे सयम व्रत कुछ न पाले। सो मैने भी कभी कही जन्म लिया, कभी कही। फिर मैंने सित नामक तपस्वी और उसकी मृगश्रृङ्गिणी तपस्विनीके पुत्रके रूपमे जन्म लिया और मेरा नाम मधु रखा गया। मै उनके आश्रम

से हर प्रकारसे बढ़ा। फिर मैंने एक मुनि विनयदत्तको किसी भाग्य-शाली आदमीके द्वारा भोजन दिये जाता देखा। उसके महात्म्यको देख कर मैंने मुनि दीक्षा ले ली। मुनि अवस्थामे तप करनेके फल-स्वरूप मै स्वर्ग गया और फिर वहाँसे आकर कीचक राजा हुआ। पहले जो मेरी माता सुकुमारिका थी और मुनिको विप देनेके कारण नर्कमे गयी थी, वह यहाँ-वहाँ जन्म लेकर स्त्री हुई और उसका नाम अनुमति हुआ। अन्तमे कुछ तपके फलस्वरूप वह द्रोपदी हुई। इसी कारण मेरे मनमे उसके प्रति मोह पैदा हो गया। मै उस पर आसक्त हो गया था।"

मुनि कीचकसे इतना वृत्तान्त सुनकर यक्ष आश्चर्यचकितसा मुनिके मु हको देखने लगा। मुनि तो केवल ज्ञानी थे ही, वे यक्षके मनोभावको समझ कर कहने लगे, "हे यक्ष! देखो, जन्म-जन्ममे मनुष्योके सम्वन्ध कैसे-कैसे वदलते रहते है। माता बहिन हो जाती है, पुत्री प्रिया स्त्री वन जाती है। इसलिए ससारी स्त्री-पुरुषोको ससारकी इस विचित्रताको समझ कर इन्द्रिय-जनित-विपय-वासनाओके सुखोसे विरक्त होकर सदाचार और तपसे मोक्ष प्राप्तिका ही यत्न करना चाहिए।"

कीचक मुनिके उपदेशसे यक्षको वडी शान्ति मिली। वह अपनी देवियोके साथ-साथ सम्यग्दर्शनसे अलकृत हो गया। फिर वह यक्ष अपनी देवियो समेत मुनिको नमस्कार कर वहाँ से अंतर्हित हो गया, अदृश्य हो गया।

कीचक मुनि देवो, मनुष्यो और विद्याधरो द्वारा पूजनीय हुआ। अतरग तथा वाह्य तपके पश्चात् मोक्षको गया।

: ३० :

प्रद्युम्नकुमार की द्वारिका वापिसी

जब दुर्योधनने कीचकके सौ भाइयोके मारे जाने की बात सुनी, तो उसने सोचा कि बिना पाण्डवोके यह काम और कोई नही कर सकता। उसने यह भी मालूम किया कि बारह वर्षमे कितने दिन शेप है। दुर्योधनने उन्हे विराट नगरमे प्रकट देखनेकी योजना बनाई। तब दुर्योधनआदि सौ भाई विराट नगरमे आये और वहाँ की गऊ-आदि पशुओको चुरा ले गये। अब अज्ञातवासकी अवधि भी पूरी हो गई। तब पाण्डवोने उनपर चढाई की। कुछ लडाईके पश्चात् दुर्योधनने फिर एकता का प्रस्ताव किया। युधिष्ठर तो निर्मल-बुद्धि तथा महाधीर था और किसी का भी बुरा न चाहनेवाला था।

वे सब हस्तिनापुर आगये। यद्यपि दुर्योधन आदि बाहर से उन्हे प्रसन्न रखने का प्रयत्न कर रहे थे, फिर भी भीतर-ही-भीतर वे उन्हे परास्त करनेके उपाय करने लगे। वे पहलेके समान सधिमे दोष निकालने लगे। इससे भीमसेन और अर्जुन आदि छोटे भाई उत्तेजित तथा क्षुब्ध हुए, पर युधिष्ठर उन सबको शान्त करते रहे। युधिष्ठर कौरवोका भी अहित नही चाहते थे। इसलिए वे सब भाई माता कुन्ती और परिवार सहित दक्षिण दिशा की ओर चल दिये।

चलते-चलते रास्तेमे उन्होने एक आश्रममे विदुर मुनिको देखा। सबने उसे प्रणाम किया और उसकी स्तुति की।

वहाँ से चल कर वे पाण्डव सपरिवार द्वारिका पहुँचे, जहाँ समुद्रविजयादिने उनका स्वागत किया। बहन-भानजोके आने से यादवोके यहाँ विशेष उत्साह और खुशी हो रही थी। पहले पाण्डवोने श्रीनेमिनाथके दर्शन किये। फिर वे अपने मामा समुद्रविजय, बलदेव, वसुदेव आदि से मिलने के बाद अन्त पुरमे रानियों नानी-भाभी आदि से मिले।

कृष्णने इन पाँचो भाइयोको समस्त भोगोपभोगकी सामग्रियोसे भरपूर पाँच सुन्दरभवन रहने को दिये। समुद्रविजयादि दस भाइयोने इनसे पाँच पुत्रियाँ विवाही, युधिष्ठरसे लक्ष्मीमति, भीमसे सेखवती, अर्जुनसे सुभद्रा, नकुलसे विजया और सहदेवसे रति। नववधुओंके साथ ये पाँचो पाण्डव बड़े सुख-चैनसे दिन बिताने लगे।"

गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे पाण्डवोकी यहाँ तक की कथा सुनाने के पश्चात् रुक्मणी-कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नकुमारकी बात कहने लगे।

प्रद्युम्नकुमार मेघकूट नगरमे विद्याधर कालसम्वर और रानी कनकमालाके साथ रह रहा था। बडे लाड-प्यारसे उसका पालन-पोषण हो रहा था। प्रद्युम्नकुमार सब गुणोको प्राप्त कर रहा था और कलाओमे निपुण हो रहा था। विद्याधरोकी विद्याएँ जैसे आकाश गामिनी विद्या आदि को भी प्रद्युम्नकुमारने सीख लिया।

युवावस्थामें पहुँचते-पहुँचते प्रद्युम्नकुमार रूप-लावण्यमें तो निखर ही गया, समस्त शस्त्र-विद्याओमे भी वह निपुण हो गया। प्रद्युम्नकुमारके अनेक नाम पड़ गये, जैसे मन्मथ, मदन, काम, कामदेव, मनोभव और अनगसुन्दर आदि। शरीरसे रहित न होते हुए भी उसे अनंग नामसे भी पुकारा जाता था।

प्रद्युम्नकुमार बडा पराक्रमी और वीर था। सिंहरथ विद्याधर कालसम्वरके विरुद्ध हो गया और उसने कालसम्वरके पाँच सौ पुत्रोको

पराजित कर दिया। तब प्रद्युम्नकुमारने सिहरथको युद्धमे हराकर उसे कालसम्वरके सामने पेश किया। प्रद्युम्नके इस शौर्यसे राजा प्रसन्न हुआ और उसने समझा कि वह विजयार्द्धकी दोनो श्रेणियोका स्वामी बन गया है। उसने कुमारको विधि-विधान पूर्वक युवराज पदका महापट्ट बाँध दिया।

इस घटनासे और प्रद्युम्नकुमारके युवराज वन जाने से राजा कालसम्वरके पाँच सौ पुत्र ईर्ष्यावश इसके नाशके उपाय सोचने लगे। उन्होने छलसे प्रद्युम्नकुमारको आसन, सेज, वस्त्रो, ताम्बूल, खाने और पीने के पदार्थोके माध्यमसे मारना चाहा, पर निष्फल। उनकी एक न चली।

अन्तमे वे मायाचारी सभी राजकुमार निष्कपट और महा विनयवान प्रद्युम्नकुमारको सिद्धायतनके गोपुरके पास ले गये। उन्होने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, "जो इस द्वार पर चढेगा, उसे यहाँ के निवासी देवसे वहुतसी विद्याएँ और मुकुट मिलेंगे।" उस द्वारसे परे सोलह वनगुफाएँ और वाटिकाएँ आदि थी, जिनमे बड़े भयकर देव रहते थे। पर प्रद्युम्नकुमारने उन सवको प्रसन्न करके या जीत कर उनसे बहुतसे वहुमूल्य पदार्थ, खड्ग, छत्र, चमर, सिंहासन, नाग शैया, विद्यामयी वीणा, ध्वजा, कुण्डल, मुकुट, अमृतमाला, विद्यामयी हाथी, आभूषण और दिव्य शख आदि भेटमे प्राप्त किये। इसी समय उसे इन्द्रजालकी प्राप्ति भी हुई। दो विद्याधरोकी कन्याएँ भी प्रद्युम्नकुमारको प्राप्त हुई। जव इन सोलह स्थानोंसे प्रद्युम्नकुमार इतने बहुमूल्य पदार्थ, अस्त्र विद्याएँ और कन्याएँ लेकर निर्विघ्न और सकुशल वाहर आया, तव इन पाँचसौ कुमारोको वडा आश्चर्य हुआ। वे इनकी प्राप्ति को प्रद्युम्नकुमारके पुण्यका माहात्म्य समझ कर उसकी प्रशसा करने लगे और वापिस मेघकूट राजा कालसम्वरके पास आये।

जिस समय प्रद्युम्नकुमारने मेघकूट नगरमे प्रवेश किया उस समय देवोपुनीत दिव्य रथ, महा उज्ज्वल वैल, धनुप, छत्र तथा चमर आदि के कारण उसकी शोभा देखने योग्य थी। उसके साथ पाँच-सौ राजकुमार थे। नगरके सभी स्त्री पुरुप प्रद्युम्नकुमारको देखकर उस पर मोहित हो गये। कुमारने राजा कालसम्वरको प्रणाम किया। राजाने उसे हर्षपूर्वक छातीसे लगा लिया। फिर वह माताके पास गया और उसे प्रणाम किया। उसने प्रद्युम्नकुमारको उसकी जननी कनकमालाके पास भेजा। राजकुमारके रूप और छविको देखते ही रानीके भाव विगड़ने लगे। उसने अपनी माँको विनयसे प्रणाम किया। रानी कनकमालाने उसे छातीसे लगाया, गोदीमें लिया और उसके मस्तकको चूमा।

प्रद्युम्नकुमारका स्पर्श तथा चुम्वन करते ही कनकमालाके मनमे मोहका तीव्र उदय हो गया, दुर्विचारोने उसके मनमे उथल-पुथल मचा दी, उसने प्रद्युम्न कुमारके आलिंगनको प्राप्त करना चाहा। उसने मनमे सोचा कि उसकी प्राप्तिमे ही उसके रूप, लावण्य, सौभाग्य और चातुर्यकी सफलता है, वरना वे तृणके समान तुच्छ हैं। प्रद्युम्नकुमारके मनमे कनकमालाके ऐसे विचारो, सकल्प-विकल्पकी कल्पना भी न थी। उसने कनकमालाको प्रणाम किया, उसका आशीर्वाद लिया और अपने घर चला गया।

प्रद्युम्नकुमारको न पाकर विद्याधरी कनकमाला खाना-पीना तथा स्नान सस्कार सव भूल गई। दूसरे दिन माताके अस्वस्थ होने-का समाचार पाकर प्रद्युम्नकुमार कनकमालाको देखने गया, तो उसने देखा कि वह कमलिनीके पत्तोकी शय्या पर पडी अति व्याकुल हो रही है, उसका हाल-वेहाल है। उसका शरीर कुमलाया हुआ है और उसकी देहकी तपन से पुष्पो और कलियोकी सेज भी कुमलाई हुई है। प्रद्युम्नकुमारने उसके शरीरकी इस हालतका कारण पूछा।

जब प्रद्युम्नकुमारने उसके अंगोंकी कुचेष्टाएँ और मनकी विपरीतता देखी, तब उसने ऐसे कर्मों और चेष्टाओंकी निन्दा की और वह उसे माता और पुत्रके सम्बन्धोंको बतलाने लगा।

कनकमालाने भी प्रद्युम्नकुमारको शुरूसे अब तक उसके, कालसम्वर और अपने पास आने का पूरा वृत्तान्त सुनाया। आकाशगामिनी विद्याके लाभकी बात भी उसे बताई।

रानीके मुखसे सारा हाल सुनने के पश्चात् प्रद्युम्नकुमार एक जिन मन्दिरमे सागरचन्द मुनिके पास गया और अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा। तब मुनिने कुमारको बताया, "हे कुमार! पूर्व भवमे यह कनकमाला रानी चन्द्राभा राजा वीरसेनकी पत्नी थी और तू प्रद्युम्नकुमार राजा मधु अयोध्याका राजा था। गौरी और प्रज्ञप्ति विद्याएँ भी रानी कनकमाला तुझे देगी।"

मुनिसे सब वृत्तान्त सुननेके पश्चात् प्रद्युम्नकुमार रानी कनकमालाके पास गया। रानीने प्रसन्न होकर उसे दोनो विद्याएँ लेनेको कहा, पर उसने उन्हें भिक्षामे मांगा। तब उस दुराचारिणी कनकमालाने विद्याधरोको भी दुष्प्राप्य ये दोनो विद्याएँ विधिपूर्वक प्रद्युम्नकुमारको दे दी। जब प्रद्युम्नकुमारने हाथ पसार कर विद्याएँ ली, तब रानी बडी प्रसन्न हुई और उसके मनके भाव कुछ और हो गये। तब फिर प्रद्युम्नकुमारने कनकमालाको समझाते हुए कहा, "आप मेरी प्राण दाता हैं, इसलिए माता है और विद्याओंके दानसे मेरी गुरु हैं।" इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारने हाथ जोडकर उसे नमस्कार किया और अपने घर चला गया।

रानी कनकमालाने सोचा कि प्रद्युम्नकुमारने उसे छला है, धोखा दिया है। उसने तीव्र क्रोधसे अपने नाखूनोसे अपने स्तनो और छातीको नोच डाला, अपने को घायल कर लिया। अपने पति राजा

कालसम्वरके पास जाकर विलाप करते हुए कनकमालाने कहा, "देखो, यह प्रद्युम्न कुमारकी करतूत है। मैंने तो पहले दिन ही कहा था कि यह पराया पुत्र अपना कैसे होगा ? पर आपने मेरी एक न मानी।"

वह विवेकहीन राजा कालसम्वर अपनी स्त्रीके इस प्रपच पर विश्वास करके प्रद्युम्नकुमारपर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने अपने पॉचसौ पुत्रोको एकान्तमे बुलाकर उन्हे चाहे जैसे हो वैसे प्रद्युम्नकुमारको शीघ्र मार डालने का आदेश दिया।

तब पापी पिता की आज्ञा पाकर वे पाँचसौ राजकुमार वडे प्रसन्न हुए, उनके मनकी इच्छा पूरी हुई। वे प्रद्युम्न कुमारको वडे आदरसे कालाम्वू नामकी वापिका पर ले गये। उन्होने उसे वापिका मे जल क्रीडाके लिए प्रवेश करनेकी वार-बार प्रेरणा की। प्रजप्ति विद्याने उसे उसके षड्यत्र की बात बता दी। उनकी चाल को जानते ही प्रद्युम्नकुमारको बडा क्रोध आया और उसने उसी क्षण मायासे अपना मायामयी रूप बनाया। स्वय तो अदृश्य होकर वापिकाके पास बैठ गया और मायामयी शरीरने वापिका मे प्रवेश किया। तभी वे निर्दयी पाँच सौ राजकुमार वापिकामे उसके ऊपर कूद पड़े। प्रद्युम्नकुमारने उनमे से चारसौ निन्यानवे राजकुमारोको ऊपर पैर और नीचे सिर करके कील दिया और वापिकाको शिलासे ढक दिया और पचचूड राजकुमारको पॉच चोटी वाला वनाकर राजाको समाचार देने भेज दिया।

राजा कालसम्वर अपने पुत्रसे उसके सभी भाइयोके कीले जाने का समाचार सुनकर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ। वह अपनी समस्त सेनाको तैयार करके प्रद्युम्नकुमारको परास्त करने वहाँ वापिका-पर पहुँचा। पर प्रद्युम्नकुमारके पास तो कोई सेना न थी। इस-लिए उसने अपनी विद्याके प्रभावसे मायामयी सेना वनाकर राजाको

परास्त किया। राजाने राज-भवन मे आकर कनकमालासे गौरी श्रौर प्रज्ञप्ति विद्याएँ मागी। पर रानीने राजासे कहा कि उसने तो वे विद्याएँ प्रद्युम्नकुमारको बाल्यावस्थामे ही दे दी थी। राजा कालसम्वर अपनी रानीकी मायापूर्ण दुश्चेष्टाको समझ गया और फिर जाकर प्रद्युम्नकुमारसे युद्ध करने लगा। पर इस वार तो प्रद्युम्नकुमारने उसे बाधकर एक शिला पर रख दिया।

उसी समय नारद महाराज वहाँ आ पहुँचे। प्रद्युम्नकुमारने उसका बड़ा आदर-सम्मान किया। नारदने सब पूर्ववृत्तान्त उसको बताया। तब प्रद्युम्न कुमारने कालसम्वरके बधन काटे, उससे क्षमा मागी और कहा, "कि कनकमालाने जो कुछ किया था, वह पूर्व जन्मके कर्मके फलस्वरूप किया था। अत उसे क्षमा किया जाय।" उसने उन सभी निरुपाय राजकुमारोको भी बधन मुक्त कर दिया और भ्रातृ स्नेहसे उनसे भी क्षमा मागी।

फिर प्रद्युम्नकुमारने अपने असली माता-पिता रुक्मणी और कृष्णसे मिलने की तीव्र इच्छा होनेसे राजा कालसम्वरसे द्वारिका जाने की आज्ञा मागी। प्रद्युम्नकुमार नारदके साथ विमानमे सवार होकर द्वारिकाके लिए चल पडा। वे हस्तिनापुरसे निकलकर जव आगे वढे, तब उसने नीचे एक सेना पश्चिमकी ओर जाते देखी। प्रद्युम्नकुमारने नारदसे उस सेनाके बारेमे पूछा।

नारदने प्रद्युम्नकुमारको इस सेनाके जाने का यह वृत्तान्त बताया, "हस्तिनापुरका दुर्योधन कुरु वशका अलकार है। उसने प्रसन्न होकर कृष्णसे प्रतिज्ञा की थी कि यदि उसके कन्या हुई और कृष्णकी दोनो पत्नियो, सत्यभामा और रुक्मणीके पुत्र हुए तो पहले पैदा होनेवाले लडकेसे वह अपनी पुत्रीको व्याह देगा। रुक्मणीके तुम प्रद्युम्नकुमार और सत्यभामाके भानु साथ-साथ पैदा हुए। परन्तु रुक्मणीके सेवकोने तुम्हारे जन्मका समाचार कृष्णको पहले दिया

इससे तुम अग्रज बडे भाई हुए और चूंकि सत्यभामाके सेवकोने उसके पुत्र जन्मका समाचार बादमे कृष्णको दिया था, इससे वह अनुज छोटा भाई हुआ। परन्तु धूमकेतु नामका विद्याधर तुम्हे जन्मते हीं उठा ले गया और तुम्हारा कुछ पता न चला। तब यशस्वी दुर्योधनने अपनी कन्या उदधिकुमारीको भानुसे व्याहनेका निश्चय किया। यह सेना उसी उदधिकुमारीको भानुसे व्याहनेके लिए द्वारिका ले जा रहा है।

यह सुनकर प्रद्युम्नकुमारने नारदको तो आकाशमें ही विमानमें छोडा और स्वय नीचे आकर महाविकराल भीलके वेषमे सेनाके सामने आ खडा हुआ। उसने कहा, "कृष्ण महाराजने मेरे लिए जो शुल्क-कर नियत किया है, वह मुझे देकर ही आगे बढ सकते हो। इस पर कुछ सैनिक तो नाराज हुए पर कुछने कहा कि इसे कुछ देकर विदा करो।" तव सैनिकोने भीलरूपी प्रद्युम्नसे पूछा, "वता तुझे क्या चाहिए?" इसपरप्रद्युम्नने सेनाकी सार वस्तु—मूल्यवान वस्तु मागी। तव उन्होने कहा कि सबसे सार वस्तु तो राजकुमारी उदधिकुमारी है। पव वे सैनिक राजकुमारीको एक भीलको कैसे देते? उन्होने कहा कि यह तो कृष्णके पुत्रके लिए है। प्रद्युम्न कुमारने कहा कि वह कृष्णका ही पुत्र है।

इस पर एक सैनिकने कहा, "वे सिर-पैरकी वाते करनेवाले इस भीलकी धृष्टता तो देखो। यह पागल है। इसे घेर लो।" तव एक दूसरे सैनिकने धनुपकी नोक दिखा कर उसे डराया और सेना आगे वढने को तैयार हुई। तभी प्रद्युम्नने मायामयी भीलोकी सेना वनाकर दुर्योधनकी सेनाको परास्त कर दिया और राजकुमारी उदधिकुमारीको ऊपर उठा कर विमानमे नारदके पास विठाया। कन्या इस समय वडी भयभीत थी और निस्सहाय-सी लग रही थी। तव प्रद्युम्नकुमारने उसे अपना कामदेवके समान असली रूप दिखाया, जिसे देखकर राजकुमारी उस पर मोहित हो गई और

निर्भय होकर वहाँ बैठ गयी। तब नारदने उसे सब बात बताते हुए कहा कि वह वास्तवमें कृष्णके इस बडे पुत्र प्रद्युम्न कुमारकी ही मगेतर है। तब तो उदधिकुमारी और भी प्रसन्न हुई और आरामसे बैठ गयी।

महाशीघ्रगामी विमानमे नारद, प्रद्युम्नकुमार, उदधिकुमारी द्वारिकापुरी पहुँचे। प्रद्युम्नकुमार द्वारिकापुरीके सौन्दर्य, द्वार और परकोटे आदि को देख कर वडा चकित हुआ। नगरके वाहर भानुकुमार तरह-तरहके घोडोंपर घुडसवारीका अभ्यास कर रहा था। प्रद्युम्नकुमारने घोडोंके बूढे व्यापारीका भेष बनाया और एक महामनोहर मायामय घोड़ा बनाकर भानुकुमारके सामने जा खडा हुआ। उसने भानु कुमारसे कहा, "यह घोडा मैं राजकुमार भानु कुमारके लिए लाया हूँ।" घोडेको देखते ही भानुकुमार उस पर सवार हो गया और लगा उसे दौडाने। पर घोडा तो मायामय था। अन्त मे वह भानुकुमारको तग करके उस वृद्ध व्यापारीके पास जा पहुँचा। जव भानुकुमार घोडेसे नीचे उतर आया, तव उस वृद्ध ने अट्टहास कर उसकी घुडसवारीकी चतुराईका मजाक उडाया। उसने यह भी कहा, "यद्यपि मै वूढा हो गया हूँ फिर भी यदि तुम मुझे घोडे पर सवार कर दो तो मैं भी अपना कुछ कौशल दिखा दूँ।" फिर भानुकुमार और दूसरे लोगोने उस वूढेको घोडेपर सवार करने का वहुत प्रयत्न किया, पर वह अपनी मायासे इतना भारी हो गया, कि वे वहुत तग आ गये, पर उसे घोडे पर सवार न करा सके। अन्तमे वह वूढा छलाग मार कर घोडेपर चढ वैठा और अपने करतव दिखाता हुआ वहाँ से चला गया। इससे भानु कुमार वडा खिसयाना हुआ।

फिर प्रद्युम्नकुमारने मायामय वन्दरो और घोडोसे सत्यभामा के वाग-वगीचे उजाड़ दिये और यहाँ तक कि उसकी वापिका भी सुखा दी। जव प्रद्युम्नकुमारने श्री कृष्णको नगरके द्वारपर आते

देखा तो उसने मायामई डास मच्छरोसे उसके लिए भी आगे वढना कठिन कर दिया। फिर प्रद्युम्नकुमार गधे और मेढेके रथपर सवार होकर नगरमे खूब क्रीडाएँ करता हुआ घूमा और वहाँ के स्त्री पुरुपोको खूब मोहित किया। इतना ही नही, उसने बाबा वसु-देवसे मेढोके युद्धका भी खेल खेला।

इसके पश्चात् प्रद्युम्न कुमार सत्यभामाके महलमे पहुँचा। उस समय वहाँ ब्रह्मभोज हो रहा था और यह झट एक ब्राह्मणका रूप बना कर पक्तिमे सबसे आगे आसनपर जा बैठा। एक अपरिचित ब्राह्मणको अपने से आगे बैठा देखकर वे सभी ब्राह्मण बड़े कुपित हुए। पर उसने उन्हे भी खूब तग किया और बने हुए सारे भोजन को उसने खा लिया। जब और खाना मागने पर उसे भोजन न मिला, तो उसने सत्यभामाको कजूस कहकर वही वमन करके उसके सारे महलको मलिन कर दिया।

वहाँ से प्रद्युम्नकुमार एक क्षुल्लक—त्यागी का भेप बदलकर माता रुक्मणीके महलमे गया और वहाँ रुक्मणीके द्वारा दिये सभी लड्डुओको खा गया। इसी समय सत्यभामाका नाई रुक्मणीके केश मूडने आया, पर प्रद्युम्नकुमारने सब बात जानकर उस नाई-का खूब तिरस्कार किया।

सत्यभामाने नाईकी बात सुन कर बलदेवसे शिकायत की। बलदेव रुक्मणीके महलके द्वार पर पहुँचा, तो प्रद्युम्नकुमार एक ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारपर पांव फैलाकर पड़ गया। उसने कहा कि आज उसने सत्यभामाके यहाँ भोजमे खूब खाना खा लिया है। इस पर बलदेवने उसकी टागे पकड कर हटानी चाही, पर उसकी टागें इतनी लम्बी और भारी बन गयी कि बलदेव उन्हे टस-से-मस न कर सका। तब बलदेवने ख्याल किया कि यह तो कोई दैवी माया है। इस प्रकार प्रद्युम्नकुमारने अपनी अनेक विद्याओ और क्रीडाओसे सभी-को विस्मित और हर्षित किया।

इसी समय रुक्मणीने वे सभी चिह्न देखे, जो नारदने प्रद्युम्न-कुमारके आने पर होने बताये थे। उसके स्तन रूपी कलशोसे दूध झरने लगा। तव अत्यन्त आश्चर्य मे पडकर उसने सोचा कि कही सोलह वर्ष पूरे होने पर उसका बेटा तो नही आ गया है। प्रद्युम्न-कुमारने भी अपने असली रूपमे माताके सामने प्रकट होकर नमस्कार किया। पुत्रको साक्षात् सामने देखते ही रुक्मणीके आनन्द और हर्ष-का पार न रहा, उसके नेत्र हर्षके आसुओसे भर आये और पुत्रा-लिंगनसे उसका चिरसचित दु ख आसुओके द्वारा बह निकला। चिर-प्रतीक्षित पुत्र-दर्शनसे रुक्मणीका सारा शरीर रोमाचित हो गया। परस्पर स्नेह प्रदर्शन और कुशल समाचार पूछने के वाद माता रुक्मणीने कहा, "हे पुत्र! धन्य है वह कनकमाला जिसने तेरी सुखदायक बाल क्रीडाओको देखकर पुत्र जन्मके फलका आनन्द उठाया, मैं तो उनसे वचित रह गई, उन्हे न देख सकी।

रुक्मणीके इतना कहते ही प्रद्युम्नकुमारने मातासे कहा, "हे माता! ले, मैं तुम्हे भी वे बाल क्रीडाएँ अभी दिखाता हूँ।" इतना कहते ही प्रद्युम्न तत्काल जन्मा वालक बनकर एक दिन का हो गया। फिर तरह-तरहके विनोद दिखाये। उसने अपना अँगूठा चूसना शुरू किया। फिर वह पेटके बल चलने लगा और तदनन्तर माकी अँगुली पकड कर आगनमे चलने लगा। फिर मिट्टीमे लेट कर माताके गलेसे लिपट गया। कभी वह तुतला कर बोलता, कभी हसता और कभी बिलख-बिलख कर रोता। उसने मासे कहा, "अब जिस आयुका तुम मुझे देखना चाहो, उसी आयुका बन जाऊँ। फिर वह सोलह वर्षका बन कर माताको नमस्कार करके कहने लगा, "लो अब मैं तुम्हे आकाशकी सैर भी कराता हूँ।"

इतना कह कर प्रद्युम्नकुमार रुक्मणीको अपनी दोनो भुजाओ-मे ऊपर उठा कर आकाशमे खडा हो कर कहने लगा, "सब यादव राजा सुन ले, मैं आपके देखते-देखते कृष्णकी प्रिया रुक्मणीको हर

कर ले जा रहा हूं। यदि आपमे शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर ले।" अव उसने रणका शख वजाया और झटसे रुक्मणीको नारद और उदधिकुमारीके पास विठा दिया। वह स्वय युद्ध के लिए आकाशमे आ खडा हुआ।

रण भेरी स्वरूप शखनाद सुनते ही अस्त्र-शस्त्र विद्याओमे निपुण यादव राजा चतुरग सेना लेकर युद्धके लिए नगरीसे बाहर निकले। प्रद्युम्नकुमारने अपने विद्यावलसे समस्त यादव सेनाको मोहित कर दिया। और फिर कृष्णसे वहुत देर तक युद्ध करता रहा। जव प्रद्युम्नकुमारने कृष्णके सभी वार निष्फल कर दिये, तव दोनो वीर अपनी दृढ और लम्वी भुजाओसे युद्धके लिए तैयार हुए। तभी रुक्मणीके कहनेसे नारदने विमानसे नीचे आकर कृष्ण और प्रद्युम्नकुमारको उनके पिता-पुत्रके सम्वन्ध वताये। तव प्रद्युम्न कुमारने पिताको प्रणाम किया और कृष्णने उसे सस्नेह छातीसे लगाया। कृष्णकी आखोसे आनन्दके आँसू वह निकले। कृष्णने पुत्रको आशीर्वाद दिया।

तव प्रद्युम्नकुमारने अपने विद्यावलसे मूर्छित सेनाको असली दशामे खडा किया। अव सभी यादव वडे खुश हुए और सबने द्वारिका मे आनन्दपूर्वक प्रवेश किया।

रुक्मणी और जामवती रानीने वडा उत्सव मनाया। फिर प्रद्युम्नकुमारका उदधिकुमारीसे विधिवत् विवाह हुआ, जिसे सम्पन्न करने के लिए मेघकूटपुरसे विद्याधर कालसम्वर और रानी कनकमाला को वुलाया गया। प्रद्युम्नकुमारके कहनेसे कृष्ण और रुक्मणीने कालसम्वर और कनकमालासे ही यह कह कर विवाहके समस्त नेग कराये कि वास्तव मे इस प्रद्युम्नके माता-पिता वे ही है। और प्रद्युम्न उनका ही पुत्र है। विवाह सम्पन्न होने पर प्रद्युम्नकुमार उदधिकुमारी आदि रानियोके साथ आनन्दपूर्वक जीवन विताने लगा।

: ३१

यदुकुल के कुमार

श्रीगौतम गणधरने राजा श्रेणिकको श्री कृष्णके दो पुत्रों सबुकुमार और सुभानुकुमारकी उत्पत्ति का यह वृत्तान्त सुनाया। राजा मधुका छोटा भाई कैटभ सोलहवे स्वर्गमे देव था। उसने केवलीसे पूछा, "हे भगवन् मैं कहाँ पैदा हूगा?" तव केवलीने उसे बताया कि वह कृष्णके यहाँ पैदा होगा और उनका वडा भाई भी उन्ही के यहाॅ जन्मा है। इतना सुनकर वह देव कृष्णके पास आया और उन्हे एक महा मनोहर हार देकर कहा कि आप जिस रानीको यह हार देगे मैं उसी के यहाॅ पुत्र जन्मूँगा। राजा कृष्णने वह हार रानी सत्यभामाको देना चाहा।

सयोग से यह बात रुक्मणीको मालूम हो गयी, तो उसने चाहा कि यह पुत्र जाबुवतीके हो। उसने प्रद्युम्नकुमारको अपनी इच्छा बतलाई। तव प्रद्युम्नकुमारने अपनी मायासे जाबुवतीका रूप सत्यभामा जैसा वनाया और वह उसे कृष्णके पाससे देवके हारको लेने मे सफल हो गयी। इस सोलहवे स्वर्गका वह देव जाबुवतीके गर्भमे आया। उसी समय सत्यभामा भी कृष्णके पास आई। तभी कोई दूसरा देव उसके गर्भमे आया। इस प्रकार वे दोनो रानियाॅ गर्भवती हुई।

कुछ समय पश्चात् जाबुवतीके सबुकुमार और सत्यभामाके सुभानुकुमार पुत्र हुए। इनमे सबुकुमार वडा पराक्रमी हुआ और

देवोंके समान क्रीड़ाएं करता था। वह सभी खेलोंमें सुभानु कुमारको जीत लेता था। कृष्णकी दूसरी रानियोंसे भी अनेक पुत्र हुए।

रुक्मणीने प्रद्युम्नकुमारके लिए अपने भाई रुक्मकुमारकी पुत्री चुनी थी। पर रुक्मकुमारने बहनको न चाहनेके कारण अपनी पुत्री न दी। तब माताकी आज्ञासे प्रद्युम्नकुमार और सवुकुमार भीलका भेष बदल कर वहाँ से उस कन्याको हर लाये। रुक्म-कुमारने उनसे अपनी बेटीको छुड़ानेका प्रयत्न किया, पर उन्होंने उसे हरा दिया। प्रद्युम्न कुमारने उस राजकुमारीसे विवाह किया।

सवुकुमारने सुभानु कुमारको द्यूत क्रीड़ामें जीत कर सब धन भिखारियोंमें बाट दिया। फिर उसने सुभानुकुमारको पक्षियों, मेढ़ों, सुगंध परीक्षा, रत्न परीक्षा और अश्व परीक्षा आदि में हराया। उससे कृष्णकी सभामें सवुकुमारकी जीत की बड़ी प्रशंसा होने लगी।

सवुकुमारके बल और पराक्रम आदि से प्रसन्न होकर कृष्णने उसे कोई वर मागने कहा। तब उसने एक महीनेका राज मागा। कृष्णने उसे एक महीने का राज दे दिया। राज पाते ही संबुकुमार अन्याय मार्गपर चलने लगा। तब कृष्णने उसे पकड़ कर नगरसे बाहर निकाल दिया। पुत्र मोह को राज कर्तव्यमे रुकावट न बनने दिया।

प्रद्युम्नकुमारकी मायासे सबुकुमारने कन्याका भेष बना कर वनमे रहने लगा। जब सत्यभामाने उस कन्याको वनमें देखा, वह रूपको देखकर बडी चकित हुई। पूछने पर कन्याने सत्यभामाको बताया कि वह विद्याधरकी पुत्री है। वह उस कन्याको रथमे बिठा कर नगरमे ले आयी और अपने पुत्र सुभानु कुमारसे उसका विवाह कर दिया, पर देखते-देखते ही सबुकुमारने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और सबको विस्मित कर दिया। इधर नगरमे पहले ही से बहुत राजाओंकी अनेक राजकुमारियाँ सुभानुकुमारसे विवाह

करने आयी हुई थी। सबुकुमारने जबरदस्ती उन सैकडो राजकुमारियोको एक ही रातमे विवाह लिया।

एक दिन सबुकुमार अपने पितामह और कृष्णके पिता वसुदेवके पास जाकर प्रणाम करके उनसे विनोद करने लगा। उसने कहा, "हे पूज्य आपने बहुत वर्ष तक पृथ्वीपर भ्रमण करके बहुत क्लेश-कष्ट उठाये, फिर कही विद्याधरोकी रूपवती और मनोहर कन्याएँ प्राप्त की। पर मुझे देखो, मैंने बिना किसी कष्ट-परिश्रमके घर बैठे ही एक रातमे सौ कन्याओसे विवाह कर लिया। इसलिए आपमे और मुझमे बड़ा अन्तर है।

पितामह वसुदेव सबुकुमारकी बात सुन कर मुस्कराते हुए उससे कहने लगे, "हे बच्चे! छोटा मुह बडी बात न कर। मुझमे और तुझमे बडा अन्तर है। तू तो बाणके समान दूसरो (प्रद्युम्नकुमार) से परिचालित होता है। और फिर तेरा तमाम चलना-फिरना घर तक ही तो सीमित है। बस! जहाँ मैं विद्याधरोके विजयार्द्धगिरि रूपी सागरके मगरमच्छके समान हूँ, वहाँ तू केवल द्वारिका नगरी रूपी कुएँका मेढक मात्र है। यह कितनी विचित्र बात है, कि तू फिर भी अपनेको मुझसे वडा समझता है। मैंने विद्याधरोके नगरोमे घूम-घूम कर वडे अनुभव प्राप्त किये है, वहुत कुछ देखा सुना है। ये सब बाते तुम्हे तो क्या दूसरोके लिए भी दुर्लभ हैं। ये अनुभव दूसरो के लिए बडे मनोहर और शिक्षाप्रद है।"

पितामह वसुदेवसे यह सुन कर सबुकुमारने उनसे देखे हुए चरित्र, किये हुए काम और अनुभव सुनने की इच्छा प्रकट की। तव वसुदेवके आदेशसे उसने सभी भाइयो और यादवोको वहाँ एकत्रित किया, जिससे वे सभी उनकी बाते सुनकर लाभ उठा सके। वसुदेवने वहुत ही सक्षेपमे हरिवशकी उत्पत्ति यदुवशका विकास राजा अधकवृष्टिके दस पुत्रोका वर्णन वताया, जिनमे सवसे वडा

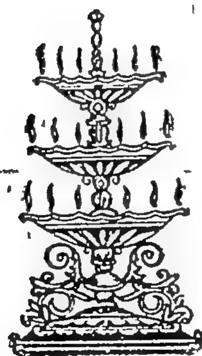
समुद्रविजय और सबसे छोटा स्वय वसुदेव था। सौर्यपुरके लोगोकी शिकायत पर किस प्रकार वह नगरसे निकाल दिया गया और फिर सौवर्ष वाद किस परिस्थितिमे समुद्रविजय आदि भाइयोसे उसका मिलाप हुआ—ये सब बाते वसुदेवने बताई। इसके पश्चात् उसने बलदेव, कृष्ण, नेमिनाथ और सबुकुमारके जन्मकी बाते बताई, जिन्हे सुन कर सभी चकित हुए। वसुदेवकी बाते सुन कर सभी विद्याधरियोको अपने-अपने पूर्व चरित्रोकी याद ताजा हो गयी। वहाँ उपस्थित राजा रानियाँ, यदुवशी और पाण्डव सभी वसुदेवके अनुभव, आप वीती और अपने वशकी बाते सुन कर बडे हर्षित हुए और सबने वसुदेवके शौर्य, चतुराई और विजयो की प्रशसा की।

द्वारिकाके गली-कूचो और घर-घरमे वसुदेवकी अनेक आश्चर्य युक्त पुरानी कहानियाँ बन गयी, हर एक की जबान पर वही थी।

इसके पश्चात् राजा श्रेणिकने नमस्कार करके गौतमगणधरसे यादवोके कुमारोका वर्णन पूछा।

राजा उग्रसेनके पुत्र धर, गुणधर, युक्तिक, दुर्धर, सागर और चन्द्र थे। राजा उग्रसेनके चाचा राजा शन्तनके महासेन, शिवि, स्वस्थ, विपद और अनन्तमित्र पुत्र थे। समुद्रविजयके महासत्य, दृढनेम, अनिष्टनेमि, रथनेमि, सुनेमि, जयसेन, महीजय, सुफल्गु, तेजसेन, मय, मेघ, शिवनन्द, चित्रक और गौतम आदि अनेक पुत्र हुए। समुद्रविजयके दूसरे भाइयोके नाम भी गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको बताये। दसवे भाई वसुदेवके बहुत पुत्र थे, जो सभी महा बलवान् थे। रानी विजयसेनासे अक्रूर और क्रूर, श्यामासे दो पुत्र ज्वलन और दूसरा अनिलवेग, गधर्वसेनासे तीन पुत्र वायुवेग, अमितगति और माहेन्द्रगिरि हुए। रानी पद्मावतीसे वसुदेवके तीन पुत्र दारु, वृद्धारक और दारुक हुए। रानी नीलयशासे उसके दो बेटे सिंह और मतगज हुए। रानी सोमश्रीसे नारद और मरुदेव

दो पुत्र हुए। इसी प्रकार वसुदेवकी रानी मित्रश्री और पद्मावतीके क्रमश तीन और बेटे हुए और रानियोके अनेक पुत्र हुए। राजा वसुदेवकी रानी देवकीके गर्भसे कृष्ण आदि पुत्र हुए। और बलभद्रके भी बहुत से पुत्र हुए। राजा श्री कृष्णकी आठो पटरानियो और दूसरी रानियोसे अनेक पुत्र हुए, जिनमे भानु, सुभानु, प्रद्युम्नकुमार और सबुकुमार आदि बहुत से पुत्र हुए, जो सभी शस्त्र तथा शास्त्र विद्याके अभ्यासी और युद्धमे प्रवीण थे। इनके पुत्र, पौत्र और भानजे आदि सभी बडे पराक्रमी और कामदेवके समान सुन्दर थे। ये सभी राजकुमार धर्म मार्गपर चलने वाले, चरित्रवान् और उदार थे। इन सभी राजकुमारोसे द्वारिकाकी शोभा अवर्णनीय वन गयी थी।



: ३२ :

दुर्गा उत्पत्ति

नन्द और यशोदाकी जो पुत्री कृष्णके बदले लाकर देवकीको दो गयी थी और उसका पालन-पोषण वसुदेव और देवकीने किया था, कसने उसकी नाक दबाकर चपटी कर दी थी। वह अब बडी होकर नवयुवती हो गयी। वह रूप सौन्दर्यमे महाश्रेष्ठ, चन्द्रमा समान निर्मलयशको रखनेवाली, महा प्रचुर यौवन तथा महामनोहर गुणोके आभूषणोसे सम्पन्न थी। उसके चरणकमल कोमल, सुन्दर अँगुलियाँ, वर्तुलाकार रोमहीन जघाएँ, सिरसके पुष्प समान मृदु दोनो भुज लताएँ, मनोज्ञ कधे, कमलकी प्रभा सदृश हाथ, अति रमणीक पाटलके पल्लवोके समान अरूण हथेलियाँ, कण्डीरके पुष्प समान आरक्त नख रूपी आँखे, कमल दल समान अरुण होठ, वक्र भौहे और मनोहर ललाट था। उसकी आँखे कमल दल समान विस्तीर्ण कर्ण पर्यन्त और उज्ज्वलता, श्यामता और लाली को लिए हुई थी। उसके मुखकी उपमा न तो चन्द्रमासे और न कमलसे दी जा सकती थी। बात सक्षेपमे यह थी कि वह रूप सौन्दर्य की प्रतिमा थी।

किसी दिन बलदेवके पुत्रोने अपने अल्हड स्वभाव से उस लडकीको 'चपटी नाकवाली' कहकर चिढा दिया। उस लडकीने अपना मुख कमल देखा। इतने सुन्दर शरीरवाली लडकी अपनी चपटी नाकको देखकर लज्जित हो गयी और ससारमे विरक्त हो गयी।

एक दिन द्वारिकासे सुव्रता आर्यिका पधारी। वह लडकी वसुदेव और देवकी आदि गुरुजनोकी आज्ञा लेकर आर्यिकाके दर्शनके लिए गयी। नमस्कार करके उसने आर्यिकाकी शरण ली। उस आर्यिकाको साथ लेकर वह व्रतधर मुनिके पास गयी। और उसके पश्चात् वह उस अवधिज्ञानी आर्यिकासे अपने पूर्व जन्मोके हाल पूछने लगी। मुनिने उससे कहा, "हे पुत्री! तू पूर्व जन्ममे सोरठ देशमे मूढबुद्धि पुरुष थी। तू अति रूपवान, धनवान और निरकुश थी। न किसी को भय, न किसी का डर। तू बडी मदान्ध थी। तेरे हृदय और आँखोका ज्ञान महा उन्मत्त थे। एक दिन तू एक भरी गाडी लिए वनमे जा रही थी। रास्तेमे एक महा मुनि मृतशय्यापर अत्यन्त कठोर तप कर रहे थे। विना देखे-भाले तूने अपनी गाडी उस मुनिके पाससे ले जाने लगी। परिणाम यह हुआ कि उस मुनिकी नासिका गाडीकी रगडसे मसली गयी। भला यह हुआ कि गाड़ीसे मुनिका प्राणान्त न हुआ। वह मुनि तो महावीर था। अत उसके मनमे कुछ भी खेद न हुआ। विना जाने भी किसी जीवनका घात हो जाये तो जीव पापसे नर्कमे जाता है। फिर मुनिके घातका तो क्या कहना? जो किसीके अवयव भग करता है, उसके अवयव अनेक वार भग हो जाते है। जो जैसा करता है वैसा भोगता है। जो दुष्ट प्रवल होकर निर्वलको पीडा देता है, जीवोको दुख देता है, वह भव-भवमे दुखी होता है। तूने विना जाने प्रमादसे गाडी चलाई। तूने अपने किये पर पश्चात्ताप किया और मुनिसे क्षमा कराई और पापका प्रायश्चित्त किया, इसलिए नर्क न गयी और मनुष्यकी योनि पाई। परन्तु पापके फलस्वरूप स्त्री योनि पाई और तेरी नाक चपटी हो गयी।"

आर्यिका सुव्रताके ये वचन सुनकर उस कन्याने उसे नमस्कार किया और उसीसे व्रत लिये। उसने समस्त कुटुम्वका मोह त्याग कर घरको त्याग दिया। समस्त वस्त्राभूषण तज कर तन ढकनेको केवल एक सफेद साडी रखी। उसने अपने हाथोसे सिरके समस्त

केशोका लोच ऐसे किया, उन्हे ऐसे उखाड़ फेका मानो उसने अपने समस्त पापोको उखाड फेका हो। अब वह कन्या साध्वी बन कर ऐसी शोभायमान हुई, जैसे वह अशुभ की नाशक हो।

जो नवयौवनमे तप धारण करती है, वास्तवमे वह धन्य है। उसको देखकर स्त्री-पुरुप यह कहने लगे, कि यह रति है या धृति है या सरस्वती है। अपने शास्त्राध्ययनके कारण सब साध्वियोमे उसकी प्रशसा होने लगी।

एक बार यह साध्वी दूसरी आर्यिकाओके साथ विन्ध्याचल पर्वतके वनमे गयी। रातके समय तीक्ष्ण शस्त्रधारी और कठोरचित भीलोने इस साध्वीको देखा। यह योगासनसे बनमे बैठी थी। भीलोने ख्याल किया, कि यह तो कोई वन देवी है। इसलिए उन्होने उससे वरदान मागा। उन्होने प्रार्थना की, "हे भगवती! यदि आज की चढाईमे हमे धन मिलेगा, तो हम तेरी सेवा करेगे। सयोगसे उस रात उन्हे लूटमे खूब धन मिला। उन मूर्खोने समझा, कि उन्हे देवीके वरदानसे ही यह धन मिला है। फिर वे भील वहाँ वनमे आये, पर ध्यानमग्न उस साध्वीको न देख सके।

इसके पश्चात् वहाँ वनमे शेर आया और उसने उस साध्वीको खा लिया, पर समाधि मरणके कारण वह साध्वी स्वर्गमे गयी।

शेरने उस साध्वीका समस्त शरीर तो खा लिया था, पर उसकी तीन अँगुलियाँ बच गयी थी। उसके शरीरके रुधिर से धरती लाल हो गयी। पृथ्वी पर खूनके निशान देखकर उन भीलोने सोचा कि यह वरदानी देवी रुधिर प्रिया है। उन्होने विचारा कि उसकी खूनमे रुचि है, खून उसे भाता है, इसलिए उन दुष्ट भीलोने उसकी तीन अगुलियोका त्रिशूल स्थापित किया और इसे विन्ध्यवासनी देवी जाना। जगली भैसोको मार कर वे उस स्थलकी पूजा करने लगे। वे पापी भील महाहिंसक पशुओकी बलि देने लगे और रुधिर तथा मास उनपर चढाने लगे। इससे वह सुन्दर वन इन वस्तुओके कारण अपवित्र

और दुर्गन्धमयी बन गया। वहाँ मक्खियाँ भिनभिनाने लगी और देखनेमे वह स्थान विप समान बन गया।

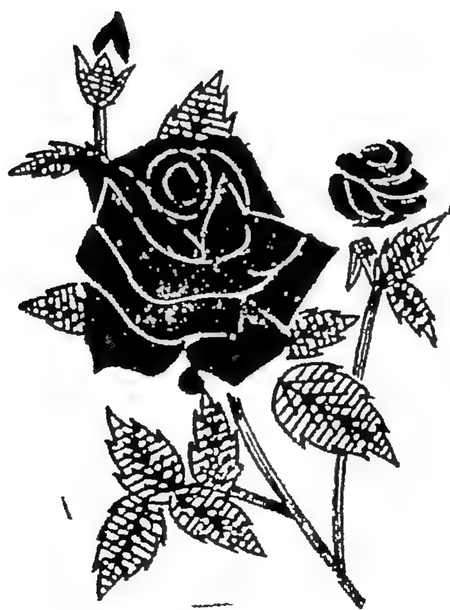
वह साध्वी तो स्वर्ग चली गयी पर उन भीलोने नर्क ले जानेवाले पशुवलिका मार्ग अपनाया। यदि ऐसे आदमी कुगतिको न जायेंगे, तो और कौन जायेगा?

संसारमे गीदड प्रवृत्ति या भेडाधसान अधिक है। यदि एक गीदड़ या भेड कुएमे गिर जाये, तो दूसरे गीदड या भेड उसका पीछा करके कुएमे गिर जाती है। वैसे ही जव कुछ आदमी कुदेवोकी पूजा करते हैं, तो उनकी देखा-देखी अनेक मूढ आदमी कुदेवोकी सेवा-पूजा करने लगते है। इतना ही नही, भीलोसे क्षत्रियोतक मे पशु-वलि पहुँच गयी। क्षत्रियोका कुल तो दीनवन्धु दीनानाथ कहलाता है, पर उनमे से वहुतोके यहाँ यह वलि प्रथा है। मूढ लोगोकी मूढता-की हद देखिये। किसी तरहसे किसीके पूर्वार्जित पुण्यसे कोई काम सिद्ध हो जाय, तो मूढ आदमी ऐसा मानने लगते है, कि इस देवता-की पूजासे यह काम सिद्ध हुआ है। इसलिए वे उसकी आराधना करते है। उनकी देखा-देखी दूसरे आदमी भी पूजा-आराधना करते है। पापी जीवोके हृदयमे करुणा कहाँ होती है? वे अपना रुधिर क्यो नही चढाते? जो पशु सिरकी वलि चढाते है, वे अपने सिरकी बलि क्यो नही चढाते। देवता तो मनसाहारी होते हैं, मासाहारी नही देवताओके मनमे भूख लगती है और मनमे ही वह भूख विलीन हो जाती है। ऐसे देवता मुझे वर देंगे, यह अभिलाषा करना जगतमे वडी भूल है।

हिंसा करना, करवाना और हिंसाकी अनुमोदना करना, ये तीनो काम अशुभ हैं, इनसे पापका आगमन होता है, जिससे दुर्गति-का बन्ध होता है। प्राणी कुगतिमे जाता है। हिंसा सब पापोका मूल है, कुगतिका कारण है। परन्तु वीतराग द्वारा कहा हुआ दया धर्म ही कल्याणकारी है, शुभ कर्मोंके लानेवाला है। जब मन शुद्ध हो,

वचन सत्य हो और काया कुचेष्टासे रहित हो, तभी पुण्य होता है। इसके विपरीत होनेसे अशुभ होता है, पाप वन्ध होता है और कुगति दिलानेवाला होता है।

देव तो परब्रह्म परमात्मा सिद्ध भगवान् ही है अथवा निज आत्मा ही है, अन्य नही। सिद्धोका जो अखण्ड अविनाशी सुख है, उसका जहाँ लाभ या प्राप्ति होती है, वही महा मनोहर परम धाम है और वहाँ सब पदार्थ ज्ञानमे भासते है। उदार चरित्र पुरुषोको वह धाम सुलभ है, दूसरो को नही।



: ३३ :

चक्रव्यूह और गरुड़व्यूह

एक सौदागर अमूल्य रत्न लेकर राजा जरासिंधके दरबारमे आया। राजाने पूछा कि वह ये रत्न कहाँ से लाया है। तब सौदागर ने उत्तर दिया कि वह ये रत्न द्वारिका पुरीसे लाया है, जहाँ अत्यन्त पराक्रमी राजा कृष्ण रहते हैं। यादवोका नाम सुनते ही राजा जरासिंधकी आखे क्रोधसे लाल हो गयी।

राजा श्रेणिकने जब जरासिंध और कृष्णका नाम सुना तो उसने श्री गौतम गणधरसे पूछा कि कृष्णकी प्रसिद्धि सुनकर जरा-सिंधका क्या विचार हुआ। तब गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे जरासिंध और कृष्णके चरित्रके सम्बन्धमे बतलाना शुरू किया।

यादवोकी बात सुन कर जरासिंध उनके साथ की हुई सन्धिसे विमुख हो गया और वह अपने मुख्य मन्त्रियोसे मंत्रणा करने लगा। राजाने उन मंत्रियोसे पूछा, "तुमने यादवोके बढते हुए बल और ऐश्वर्यकी सूचना गुप्तचरो द्वारा पाकर मुझे क्यो न दी! तुमने अपने कर्तव्यके पालनमे क्यो कमी की? यदि मंत्री ही गुप्तचरों द्वारा शत्रुओ की खबर पाकर राजाओको नही बतायेगे, तो और कौन बतायेगा? यदि मै ऐश्वर्यमे मस्त रहकर असावधान रहा, तो क्या कारण था कि तुम्हे यादवोकी वृद्धिका पता न लगा। यदि तुम भी न जान सके, तो तुम मंत्री किस काम के? सेवकका यह धर्म

नही कि स्वामीको शत्रु और मित्रोकी बात न बताये। यदि कोई रोग हो तो उसको दूर करनेका उपाय तत्काल होना चाहिए। रोग बढनेसे दुख बढता है। इन दुष्ट यादवोने पहले तो मेरे जमाई कंस-को मारा और फिर मेरे भाई अपराजितको मारा। अब वे समुद्रकी शरण मे आकर द्वारिका बसा कर रहने लगे। वहाँ भी उन्हे इसी प्रकार मारा जा सकता है, जैसे समुद्रकी मछलियोको मारते है। वहा वे निर्भय क्यो है? मेरी क्रोधाग्नि प्रज्वलित होनेके बाद वे निर्भय कैसे रह सकते हैं? शत्रुका दमन करनेके लिए साम, दान, भेद और दण्ड चार ही उपाय है। यादव साम और दानके योग्य नही है, उन्हे भेद और दण्डसे ही काबूमे लाना चाहिए।"

शान्तिके मार्गमे स्थित मंत्रियोने दण्ड नीतिको ही उपाय मानने-वाले राजा जरासिंधको बडी नम्रतासे शान्त करते हुए कहा, "हे नाथ! हम लोग द्वारिकामे शत्रुओकी वृद्धिको न जाने यह बात सम्भव नही। हम तो समय व्यतीत करते रहे, क्योकि यादवोके वंश मे तीर्थंकर नेमिनाथ, श्री कृष्ण और बलदेव तीनो महानुभाव इतने बलवान् है कि मनुष्योकी तो बात ही क्या, देवोके लिए भी उन्हे जीतना कठिन है। तीर्थंकर नेमिनाथको युद्धमे न आप जीत सकते है न पृथ्वीतलके समस्त राजा इकट्ठे होकर उसे जीत सकते है। शिशुपालके रणमे पराजित तथा वध करनेवाले बलदेव और कृष्णके सामर्थ्यको क्या आपने नही सुना? जिन यादवोके पक्षमे महा कीर्ति-वान और तेजस्वी पाण्डव तथा विवाह सम्बन्धोसे मिले हुए अनेक विद्याधर है, उन्हे आप कैसे जीत सकते है? दैव-बल, समयबल और बुद्धिबल सब उनमे है। यही जानकर हमने सोचा कि सोते शेरोको न जगाया जाय, यथावत् रहने दिया जाय। हम देश और कालका विचार करके चुप रहे। अपने और पराये बलको विचारना और समयको देखना ही ठीक है। सेवक वही है जो स्वामीके हित-की बात कहे। अब आप जैसा उचित समझे, करे।"

परन्तु जरासिधको ये सब बाते जरा भी अच्छी न लगी। उन्हे अनसुना कर दिया। बुरा समय आता है, तब हठग्राही अपना हठ नही छोडता। मन्त्रियोकी बातको न मानकर जरासिधने अपने अजितसेन दूतको यादवोके पास द्वारिका भेजा। इसके अतिरिक्त उसने पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सभी दिशाओके राजाओके पास पत्र और दूत भेजे कि वे शीघ्र ही अपनी-अपनी चतुरग सेनाएँ लेकर उसके पास राजगृहमे आ जाये। जरासिधका सन्देश पहुँचते ही राजा कर्ण और दुर्योधन उसके पास आ गये। राजा जरासिधने राजगृह नगरीसे सेना सहित कूच कर दिया।

दूत अजितसेन इस प्रकार द्वारिका आया जैसे कोई पुण्यवान् आदमी स्वर्गपुरीको जाता है। राजसभामे समस्त यदुवशी और पाण्डव बैठे थे। जब द्वारपालने राजा जरासिधके दूतके आने की सूचना दी, तभी दूतको राजदरबारमे पेश करने का आदेश दिया गया। दूतने राजसभामे आकर सबको यथायोग्य नमस्कार किया। उसको बैठने के लिए उचित आसन दिया गया। तब उसने अपने स्वामीके बलके कारण घमण्डसे कहना शुरू किया, "हे यादवगण! हमारे राजाधिराज जरासिधके सन्देशको ध्यानसे सुनो। मैंने तुम्हारा क्या बुरा किया है जो तुम भय मान कर यहा समुद्र तटपर बस गये हो! अपराध आप से ही हुआ है। आपने ही भय मानकर यहाँ समुद्र तटपर आश्रय लिया है। आप मुझसे कोई भय न माने। आप आकर मुझे नमस्कार करे और मेरी आधीनता स्वीकार करे। यदि आप समुद्रके बलके भरोसे रह कर न आकर नमस्कार न करोगे, तो मै इतना बलवान हूँ कि समुद्रको पीकर अपनी सेनाओके द्वारा तुम्हारी तत्काल दुर्दशा कर दूँगा। जब तक मुझे तुम्हारे यहाँ रहने का पता नही हुआ था, तभी तक आप सुरक्षित थे। अब मुझे पता लग जाने पर तुम सुरक्षित कैसे रह सकते हो?"

दूतके उपर्युक्त वचन सुनकर उपस्थित कृष्ण आदि सभी राजा कुपित हो गये और बलदेव तथा वासुदेव भौहे टेढी करके

बोले, "हे दूत ! तुम्हारे राजाकी मृत्यु निकट आई है, जो समस्त सेना लेकर आक्रमण कर रहा है। हम उसका युद्धसे स्वागत करेगे।" ऐसा कहकर दूतका उचित आतिथ्य करके उसको वहाँ से विदा कर दिया गया। द्वारिकासे जाकर दूतने राजा जरासिधको द्वारिकाकी सब बाते सुनाई और वहाके सब रहस्य भी बताये। उसने कहा कि वे महा मदोन्मत्त है और युद्धके अभिलाषी है।

दूतके चले जाने पर राजा समुद्रविजयके तीनो मत्री विमल, अमल और शार्दूल आपसमे मत्रणा करके राजासे कहने लगे, "हे राजन् ! क्योकि साम नीति अपने और विरोधीके लिए शान्तिका कारण होती है, इसलिए हम लोग राजा जरासिधके साथ उसीका प्रयोग करेंगे। कुमारोका यह जो समूह हमारे पास है उपायबहुल युद्धमे उनकी कुशलतामे सन्देह है। मगधके राजा जरासिधसे पारस्परिक बात करके युद्ध टाला जाय तो अच्छा है। युद्ध सबके नाशका कारण होता है। कुशलतामे सन्देह होता है। अपने यहा बहुतसे राजकुमार योद्धा है। यदि उनमे से एक भी युद्धमे मारा गया, तो उसकी क्षतिको सहारा न जायेगा, न पूरा किया जायेगा। जैसे अपने यहाँ अमोघ बाणको बरसानेवाले बहुत वीर है, वैसे ही जरासिधकी सेनामे भी कर्ण, दुर्योधन और भीष्म आदि बहुत योद्धा है। इसलिए समस्त जीवोके कल्याणके लिए साम नीति ही उचित है। हमे जरासिधके पास दूत भेजना चाहिए। यदि फिर भी वह मृदुतासे शान्त न हो, तो जैसा उचित होगा वैसा करेगे।"

राजाने मत्रियोकी सलाह मान कर कहा कि इसमे कोई दोष नही और महात्तनुर, शूरवीर और नीतिवान लोहजघ दूतको राजा जरासिधके पास भेजा।

राजा जरासिध सेना सहित कूच करता हुआ मालव देशमे देवावनार तीर्थ आ पहुँचा और वहाँ डेरे डाल दिये। यह तीर्थ दो

मासोपवासी ऋद्धिधारी मुनियो तिलकानन्द और नन्दककी इस प्रतिज्ञाके पूरी होनेके कारण प्रसिद्ध हो गया कि उन्हे वनमे आहार मिले। सयोगसे वनमे श्रावकोका एक बडा सघ आ गया और उसके द्वारा मुनियोको आहार दिया गया। उनका उपवास खुलने पर वनमे पाँच आश्चर्य—रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, सुगन्धित जलकी वृष्टि, शीतलमन्द सुगन्धपूर्ण पवनका चलना और 'जय-जय' के शब्द हुए।

इस वनसे राजा जरासिधके कटकमे लोहजघ पहुँचा और उसने एकान्तमे राजासे बातचीत की। दूत तो बडा नीतिवान तथा महा पडित था। यद्यपि जरासिंध सन्धिके पक्षमे न था, पर उसकी बातोसे प्रसन्न होकर राजाने छ महीनेके लिए सन्धि स्वीकार कर ली।

इसके पश्चात् राजा जरासिधमे सम्मान पाकर लोहजघ द्वारिका लौट आया और उसने अपने राजा समुद्रविजयको सन्धिकी समस्त बात बताई। समस्त यादव इस सन्धिसे युद्धकी तैयारी का ध्यान रखकर एक वर्ष शान्तिसे रहे।

एक वर्ष पूरा होने पर राजा जरासिध अपनी तथा अपने मित्र राजाओकी सागर सदृश सेना लेकर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमे आ डटा। उधर कृष्ण आदि यदु राजा भी अपनी महा सेनाको लिये पहले ही वहाँ पहुँच गये थे। कृष्णके पक्षके राजा भी सभी दिशाओसे आकर उससे आ मिले। कृष्णके हितैषी पाण्डव भी वहाँ पहुँच गये। नेमिनाथके पिता समुद्रविजय, राजा उग्रसेन और इक्ष्वाकुवशी राजा मेघ राजा कृष्णके पास आ गये। राष्ट्रवर्धन देशका राजा, सिंघल देशका राजा पदमरथ और सकुनका भाई महा पराक्रमी राजा चारूदत्त भी लडनेके लिए कृष्णकी सेनामे आ मिले। इतना ही नही, बरबर, पवन, आवीर, कावोज और द्रविड देशके राजा भी अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर वहाँ आकर यादवोसे मिल गये। इधर जरासिध-के साथ भी अनेक राजा अपनी सेनाए लाकर मिल गये। जरासिधने

चक्ररत्नके प्रभावसे भरत क्षेत्रके तीन खण्डके राजा अपने आधीन कर रखे थे। दोनो तरफ अक्षोहिणी दलकी सेनाएँ थी।

अक्षोहिणी सेनामे नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोडे और नौ सौ करोड पैदल सैनिक होते है।

यादवोमे कुमार नेमिनाथ, वलदेव और कृष्ण तीनो अतिरथ थे। ये सब अतिरथोमे श्रेष्ठ थे। राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, रुक्म, प्रद्युम्न, सत्यक, धृष्टद्युम्न, अनावृष्टि, शल्य, भूरिश्रवस, राजा हिरण्यनाभ, सहदेव और सारण सभी उस रण-भूमिमे मौजूद थे। ये सभी राजा शस्त्र और शास्त्रार्थमे निपुण, महा शक्तिमान और महा धैर्यशाली वीर योद्धा थे। ये राजा रणसे पीछे भागनेवाले और न लड सकनेवाले कायर राजाओपर दयावान् थे, पर जो योद्धा इनका सामना करते, इनके सामने होते या इनसे अधिक वलवान होते, उससे ये अवश्य लडते। उनमे वहुत महारथी, अनेक समरथी थे। और वहुतसे अर्द्धरथी योद्धा थे। समुद्रविजयसे छोटे और वसुदेवसे वडे आठो भाई भी सेनामे थे। जवुवन्तीका पुत्र सवुकुमार, राजा भोज, विदूरथ, द्रोपदीका पिता द्रुपद, सिंह राजा, राजा शल्य, व्रज, सुयोधन, पौड्र, पद्मरथ, कपिल, भगदत्त और मेघधूर्त इत्यादि अनेक राजा वहाँ थे। इनके अतिरिक्त राजा महानेमिधर, कृष्णका भाई अक्रूर और निषद भी रणभूमिमे थे। इनके अतिरिक्त राजा विराट चारू कृष्ण, दुशासन और सिखण्डी आदि वहाँ थे।

ये दोनो ही समुद्र समान सेनाए कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमे डटी हुई थीं। कुन्तीका पुत्र राजा कर्ण जरासिंधकी सेनामे शामिल था। कर्णका डेरा कृष्णके डेरेके निकट ही था। तव रानी कुन्ती कृष्णसे सलाह करके कर्णके पास गई। वह आकुलतासे भरी और स्नेहभारसे दबी जा रही थी। वह कर्णको गले लगाकर रुदन करती न थकी। तव उसने कर्णको शुरूसे अन्त तकका अपना सम्बन्ध वताया।

माताके ये वचन सुनकर कर्ण कुरुवंशमे अपना जन्म, कुन्ती माता और पाण्डु पिताको निश्चय रूपसे जान गया। उसने अपने अन्त पुरमे अपने वर्गके व्यक्तियोसे इस सम्बन्धको निश्चित रूपसे समझकर कुन्तीकी बड़ी स्तुति और सम्मान किया।

माता कुन्तीने स्थिति अपने अनुकूल देख कर कर्णसे अपने मनकी बात बडे प्रेमसे कहनी शुरू की, "हे पुत्र ! तेरे भाई तेरे दर्शनके अभिलाषी है। उठ, हमारे कटकमे चल। कृष्ण आदि सभी तेरे निजवर्गके व्यक्ति तुझे बहुत ही चाहते हैं। तू तो कुरुवंशका ईश्वर है और बलदेव तथा वसुदेव सभी के लिए प्राणोसे प्यारा है। तू तो कुरुवंशका राजा है। तेरा भाई युधिष्ठर तेरे सिर पर छत्र फिरावेगा, भीम चवर डुलायेगा। अर्जुन तेरा मत्री होगा और नकुल तथा सहदेव दोनो तेरे द्वारपाल होगे। और मै तेरी माता सदा नीति पूर्वक तेरा हित करने को तैयार हूँ।"

माताके वचन सुनकर कर्ण भाइयोके स्नेहसे विवश हो गया। पर जरासिधने उसके प्रति जो उपकार किये थे, उनके कारण स्वामीके कामका विचार करता हुआ वह मातासे बोला, "हे माता ! लोकमे माता-पिता और भाई बान्धव अत्यन्त दुर्लभ है। परन्तु इस अवसरपर स्वामीके कामको छोडकर भाइयोका काम करना अनुचित तथा अप्रशस्त है। इतना ही नही, युद्धके समय ऐसा करना हसीका कारण भी है। इस समय स्वामीका काम करता हुआ मैं इतना ही कर सकता हूँ कि युद्धमे भाइयोको छोडकर दूसरे योद्धाओसे लडूँ। युद्ध समाप्त होने पर यदि भाग्यवश हम लोग जीते रहे, तो हे मा ! मैं भाइयोसे अवश्य मिलूँगा। जाओ, मेरी ये बाते भाइयोसे कह दो।" यह कह कर कर्णने माताकी पूजा की और माताने उसके कहे अनुसार सब काम किया।

कुरुक्षेत्रकी समतल भूमिमे दोनो तरफकी सेनाओकी किलाबन्दी होने लगी। सरासिंधकी सेनाके कुशल राजाओने अपनी सेनामे चक्र

व्यूहकी रचना की। चक्रव्यूहके चक्राकारकी सेनाके एक हजार आरे थे। प्रत्येक आरेके निकट एक एक राजा था। हर एक राजाके पास सौ-सौ हाथी, दो-दो हजार रथ, पाँच-पाँच हजार घोडे और सोलह हजार प्यादे थे। इनके अतिरिक्त छह हजार राजा चक्रकी धारा के समीप इससे चौथाई सेना सहित मौजूद थे। राजा जरासिध बीचमे स्थित था और उसके समीप कर्ण आदि अनेक राजा थे। उनके बीचमे धृतराष्ट्र और गाधारी माताके पुत्र दुर्योधन आदि सब भाई खडे थे। बीचमे और भी अनेक राजा थे।

जब वसुदेवको पता चला कि जरासिधने अपनी सेनाको चक्र-व्यूहके रूपमे खडा किया है, तब उसने भी चक्रव्यूहको तोड़नेके लिए अपने पक्षकी सेनासे गरुडव्यूहकी रचना की। रणमे शूरवीर तथा अनेक प्रकारके अस्त्रो-शस्त्रोसे लैस पचास लाख यादव कुमार उस गरुडके मुख पर खड़े थे। धीर वीर और पर्वतको जीतनेवाले अतिरथ पराक्रमी बलदेव और श्री कृष्ण उसके मस्तकपर खडे हुए। वसुदेव के अनेक पुत्र बलदेव और श्री कृष्णके रथकी रक्षा करने के लिए उनके पृष्ठ रक्षकके रूपमे खडे हुए। राजा भोज बहुतसे रथोके साथ गरुडके पृष्ठभागो पर खड़ा हुआ। राजा भोजकी रक्षा के लिए दूसरे राजा उसके पीछे खडे किये गये। राजा समुद्रविजय अपनी सेना सहित उस गरुडके दाहिने पख पर खडा हुआ। इसके आजू-बाजू की रक्षाके लिए बहुतसे राजा अपनी-अपनी सेनाओ सहित सावधान खड़े थे। बलदेवके पुत्र और युद्ध निपुण पाण्डव गरुडके बाये पक्षके पास खडे थे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक राजा अपने-अपने स्थानपर लडनेको तैयार खडे थे। सबने कौरवोके वधका निश्चय किया हुआ था। सेनाके इस गरुडकी रक्षाके लिए और भी राजा और वीर नियुक्त हुए खडे थे। इस प्राकर वसुदेव निर्मित यह गरुडव्यूह राजा जरासिधके चक्रव्यूहको तोडनेकी तैयारी कर रहा था।

: ३४ :

यादव जरासिंध युद्ध

जब कुरूक्षेत्रकी रणभूमिमे एक तरफ जरासिंध और दूसरी ओर समुद्रविजय आदिकी सेनाएँ अपने-अपने व्यूह बनाकर युद्धके लिए तत्पर खडी थी, तब वसुदेवके हितचितक अनेक विद्याधर भी समुद्रविजयके पास आ पहुँचे। समुद्रविजयने उनका यथायोग्य सम्मान किया और हर्षसे कहा कि अब हम कृतार्थ हो गये।

वसुदेवके शत्रु विद्याधर जरासिंधसे जा मिले।

इन्द्रके भडारी कुबेरने बलभद्रको दिव्यास्त्रोसे पूर्ण सिह विद्या का रथ दिया, जिसपर बलभद्र सवार हुआ और कृष्णको गारू रथ दिया जो अनेक आयुधोसे भरा था। भगवान् नेमिनाथ भी इन्द्रके भेजे रथ पर सवार हुए जिसका सारथी मातलि था और जो सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोसे लैस था। समुद्रविजय आदि समस्त राजाओने वानर ध्वजासे युक्त वसुदेवके शूरवीर पुत्र अनावृष्टिको सेनापति बनाकर उसका अभिषेक किया।

इधर राजा जरासिंधने हर्ष पूर्वक महा शक्तिशाली राजा हिरण्य-नाभको सेनापतिके पद पर नियुक्त किया।

दोनो सेनाओमे जगी मारू बाजे बजते ही दोनो कटकोकी चतु-रग सेनाए युद्धके लिए तैयार हो गयी। सैनिक एक दूसरेको बुलाने

लगे। युद्धके क्रोधमे उनकी भौहे टेढी हो गयी और शरीर क्रूर हो गये।

लडाई आरम्भ होने पर हस्तिसेना हस्तिसेनासे, घुडसेना घुड़सेना से, रथसेना रथसेनासे और प्यादे प्यादोसे लडने लगे। धनुषोकी फिडचोकी झकार, रथोके शब्दो, गजोकी गर्जना, अश्वोके हिन-हिनाने और योद्धाओके सिहनादसे दसो दिशाए-तथा आसमान फटा-सा जा रहा था।

नेमिनाथके सौतेले भाई रथनेमिकी बैलकी ध्वजा थी, कृष्णके भाई अनावृष्टिकी हाथीकी ध्वजा थी और अर्जुनके झण्डेपर बन्दरका निशान था। ज्योही इन योद्धाओने जरासिधकी सेनाको जीतते देखा, उन्होने कृष्णके अभिप्रायको समझकर स्वय युद्ध करनेकी तैयारी की और उन्होने जरासिघके चक्रव्यूहको भेदनेका निश्चय किया। नेमिनाथ ने शत्रुओके हृदयमे भय उत्पन्न करनेके लिए इन्द्रप्रदत्त शाक्र शखको वजाया, अर्जुनने देवदत्त शखको और सेनापति अनावृष्टिने वलाहक नामक शखको वजाया। शखनादके होते ही उनकी सेनामे महान् उत्साह वढ गया और शत्रु सेनामे महाभय छा गया।

अनावृष्टिने जरासिधकी सेनाके चक्रव्यूहके मध्य भागको भेदा और रथनेमिने दाहिनी वाजूको और अर्जुनने पश्चिम और उत्तर दोनो पक्षोको भेदा। फिर यादवोके सेनापति अनावृष्टि और जरासिधके सेनापति हिरण्यनाभमे परस्पर युद्ध होने लगा। रथनेमि रुक्मीसे लडा और अर्जुन दुर्योधनसे लडने लगा। वाण पर वाण चलने लगे, उनकी वर्षा होने लगी। कलहप्रेमी नारद आकाशमे वैठा दूर से ही युद्धको देख कर बहुत हर्षित हो रहा था। अप्सराये आकाशसे योद्धाओपर पुष्पवर्षा कर रही थी।

थोड़ी देरमे रथनेमिने अपने वाणसे रुक्मीको मार गिराया। वसुदेव विजयार्द्धकी तरफ वढे और नौ भाइयोने अपने सामने पडने-

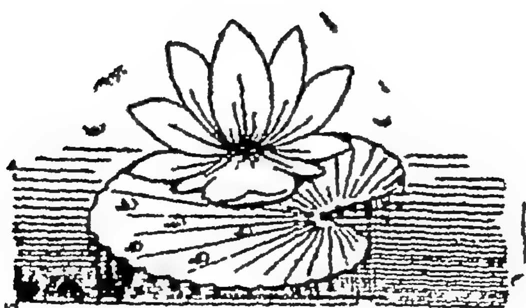
वाले प्रत्येक राजाको मार डाला। बलदेव और वासुदेवके वीर पुत्रोने अपने बाणोसे वर्षा की। धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि सौ पुत्रो और पाण्डवोके पॉच पुत्रोमे जो युद्ध हुआ उसे कहने लिखनेमे कौन समर्थ हो सकता है? युधिष्ठर शल्यके साथ, भीम दुशासनके साथ और वसुदेव शकुनिके साथ और अलूक नकुलसे लड रहे थे। इसके पश्चात् अर्जुन और दुर्योधन युद्ध करनेको तैयार हुए। दोनो ही खड्ग चलाने और बाण विद्याओमे प्रवीण थे। महायुद्ध हुआ। पाण्डवोने धृतराष्ट्रके कुछ पुत्र मारे और कुछको मरे समान कर दिया।

जरासिंधकी सेनामे कर्णने कान तक धनुषकी डोरी खीचकर बाण-पर-बाण मारे और कृष्णके पक्षके जो योद्धा उसके सामने आये सबको घायल कर दिया।

यह तो बराबरके महा योद्धाओमे युद्ध हुआ। फिर दोनो पक्षोके महा सेनापतियो—अनावृष्टि और हिरण्यनाभ—मे महारौद्र युद्ध हुआ। हिरण्यनाभके अनेक बाणोकी मारसे अनावृष्टि घायल हो गया। अनावृष्टि उससे कम तो था नही। उसने भी हिरण्यनाभको बाणोसे खूब घायल कर दिया। सेनापति हिरण्यनाभने अनावृष्टिकी ऊची ध्वजाको छेद गिराया और बदलेमे अनावृष्टिने ने भी हिरण्यनाभकी ध्वजा को नीचे गिरा दिया। फिर दोनो ने एक दूसरे के रथको चकनाचूर कर दिया और वे आमने-सामने खड्गोसे लडने लगे। उनके एक हाथमे तलवार और दूसरेमे ढाल थी। वह इसके वारको मौका देख कर टाल जाय और वह इसके वारसे बच जाय। दोनो ही युद्ध विद्यामे प्रवीण थे। फिर मौका देखकर अनावृष्टिने हिरण्यनाभ पर तलवारका ऐसा वार किया, कि उसकी दोनो भुजाए कट कर पृथ्वीपर गिरपडी, रूधिरका फव्वारा आकाशकी ओर छूटा और परिणाम स्वरूप जरासिंधका वह सेनापति पृथ्वीपर गिर पडा। हिरण्यनाभके योद्धा पीछे हट गये और अनावृष्टि फिरसे अपने

रथपर सवार हो कर अपनी सेना सहित सहर्ष वलदेव और श्री कृष्णके पास आया। सभी सैनिकोने "सेनापतिकी जय जय" के नारे लगाये। अनावृष्टिकी प्रशसा की। वलभद्र और श्री कृष्ण वैल-की ध्वजा वाले, रथनेमि हाथीकी ध्वजा वाले और अनावृष्टि वन्दर-की ध्वजा वाले अर्जुनसे वड़े स्नेहसे मिले।

इस प्रकार अनावृष्टिने जरासिधके सेनापति हिरण्यनाभको मारा और रथनेमि और अर्जुनने चक्रव्यूहको भेद दिया। सेनापति हिरण्यनाभके मारे जाते ही उसकी समस्त सेनामे विषाद छा गया। इधर इसी समय सूर्य भी अस्त हो गया। दोनो पक्षोकी सेनाए अपने-अपने डेरोमे चली गयी, यादवोकी सेना शत्रुको परास्त कर देने के कारण हर्षसे कूदती-नाचती-घूमती, समुद्र समान गरजती वहुत ही शोभायमान हो रही थी।



: ३५ :

जरासिंध वध

सूर्योदय होते ही फिर लडाईकी तैयारी होने लगी। जरासिंध और कृष्ण हथियारोसे लैस अपने योद्धाओको लेकर युद्धके लिए निकले। उन्होने अपनी-अपनी सेनाओको पूर्ववत् चक्रव्यूह और गरुड-व्यूहके रूपमे खडा किया।

राजा जरासिंधने अपने पास बैठे हुए हस नामक मत्रीसे सामने खडे यादवोके नाम और निशान पूछे। उसे तो यादवोसे ही द्वेप था, दूसरे राजाओसे नही। हस मत्रीने एक एक करके कृष्ण, रथनेमि, बलभद्र, युधिष्ठर और अनाबृष्टिकी तरफ सकेत करके बताया। हस मत्रीने जरासिधको बताया कि इस अनावृष्टिने ही कल उसके सेनापति हिरण्यनाभको मारा था। फिर मत्रीने भीम, समुद्रविजय, कृष्णके वडे भाई अक्रूर, राजा सत्य, नम्यकुमार, राजा भोज, कृष्णके वडे भाई जरत्कुमार, राजा मरूराज, पद्मरथ, राजा सारण, राजा अग्निजितका पुत्र राजा मेरूदत्त और अति तेजस्वी विदुरत कुमारकी ओर सकेत करके उनके चिह्न सहित वताया।

मत्रीकी वात सुन कर राजा जरासिधने अपने सारथी को यादवोकी तरफ रथ वढानेका आदेश दिया। आज्ञा पाते ही सारथीने तुरन्त यादवोपर रथ चढा दिया और जरासिध पर वाण-पर-वाण छोडने लगा। जरासिधके पुत्र कोप करके यादवोसे रण क्रीडा करने लगे।

युद्ध आरम्भ होनेपर बराबर वाले योद्धा बराबरवाले योद्धाओसे लडने लगे। जरासिधका पुत्र कालयवन सहदेवसे युद्ध करने लगा। इसी प्रकार दूसरे अनेक राजा अपने बराबरवाले राजाओसे लडे। वसुदेवके पुत्रोका प्रतिहरके पुत्रोसे महायुद्ध हुआ। जब जरासिंधके पुत्र कालयवनने वसुदेवके बहुतसे पुत्रोको मौतके घाट उतार दिया, तव सारण नामक यदुकुमारने क्रोधसे कालयवनपर खड्गसे प्रहार करके उसे मौतके घाट उतारा। कालयवनका मरना तो जरासिधका सर्वस्व नाश था। इसपर जरासिधके दूसरे पुत्रोने आकर कृष्णको घेर लिया और वे खूब लडे, पर श्री कृष्णने अपने अर्द्धचन्द्र बाणसे उनको यमपुर पहुँचा दिया।

जव जरासिंधने अपने पुत्रोको रणभूमिमे मरे पडा देखा तो वह क्रोधसे कृष्णके पास आकर अपने बाणोको धनुषपर चढा कर कृष्ण पर छोडने लगा। दोनोमें महा भयकर युद्ध हुआ। पहले तो उनमे सामान्य शस्त्रो जैसे तीर, तलवार और कटारी आदि से लडाई हुई। फिर वे देवोपुनीत दिव्यअस्त्रोसे लडने लगे। जरासिधने कृष्ण पर नाग बाण चलाया, जिसके परिणामस्वरूप हजारो मायामयी नाग वहाँ आ गये। तव माधव कृष्णने राजा जरासिधपर गारुड बाण छोडा और सब सापोको नष्ट कर दिया। फिर जरासिंधने कृष्णपर मेघबाण छोडा, जिसके प्रभावको नष्ट करनेके लिए कृष्णने पवन बाणसे उसका निराकरण किया। फिर जरासिधने कृष्णपर वायव्य बाण छोडा, जिसके उत्तरमे कृष्णने अन्तरीक्ष अस्त्र चलाया। इसके पश्चात् जरासिध और कृष्णमें दूसरे अनेक प्रकारके दिव्य-बाणोंसे युद्ध हुआ। जब जरासिधके सब बाण और उद्यम व्यर्थ गये, तब उसने अपने धनुषको पृथ्वीपर डाल दिया और अपने चक्रको याद किया। एक सहस्र यक्ष इस चक्रके सेवक थे। चक्रका विचार आते ही वह जरासिधके हाथोंमे आ गया। जरासिधने अपनी भौहे टेढी करके चक्रको कृष्ण पर चलाया। आकाश मे चक्रके तेजसे सूर्य

का तेज दब गया। जरासिंधके चक्र छोडते ही जरासिंधके पक्षके दूसरे अनेक राजाओने भी एक साथ वैसे ही चक्र छोडे। चक्रोको आता देखकर कृष्णने शक्ति और गदा सम्भाली और बलभद्रने हल और मूसल, भीमने गदा, अर्जुनने धनुष आदि अनेक शस्त्र, अनावृष्टि ने परिघ और युधिष्ठरने शक्ति सम्भाली। कृष्णके ये सब साथी इस प्रकार चक्रसे लडने के लिए तैयार हो गये। समुद्रविजय आदि नौ भाई सावधान होकर चक्रकी ओर अनेक शस्त्र चलाने लगे और कृष्ण चक्रके सामने खडे थे। सामन्तोने उस चक्रको अनेक प्रकारसे रोका, परन्तु चक्र पीछे न हटा; वरन् मित्रके समान शीघ्र ही आकर प्रदक्षिणा देकर कृष्णके दाहिने हाथमे आ बैठा। कृष्णके दाहिने हाथमे शख, चक्र और अकुशके चिह्न थे। ज्योही चक्र कृष्णके हाथ आया, तभी आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई और देवोने कहा कि यह कृष्ण नौवा वासुदेव या नारायण प्रकट हुआ है। शीतल मन्द, सुगधित पवन अनुकूल चलने लगी। सभी यादव बडे हर्षित हुए।

जब जरासिधने चक्र को कृष्णके हाथमे देखा तब उसने सोचा; कि हाय ! यह चक्र भी बेकार हो गया। मैंने अपने चक्ररत्न और पौरुपसे समस्त दिशाओको व्यापत कर रखा था और तीन खण्डका शक्तिशाली अधिपति बना हुआ था, पर आज मैं पौरुष हीन हो गया, मेरा पुरुषार्थ खण्डित हो गया। जब तक दैव प्रबल है तभी तक चतुरग सेना, काल, मित्र और पुरुषार्थ काम देते है। दैवके निर्बल होते ही ये सभी निरर्थक हो जाते है। ज्ञानियोकी यह बात सत्य ही है। मैं गर्भसे ईश्वर था और कोई बडा पुरुप भी मेरी आज्ञाका उलघन नही कर सकता था, पर आज यह क्षुद्र गोप दैव-योगसे मुझे जीतनेवाला बन गया। इसके गर्भ और जन्मके समय क्लेश हुआ था, यह सतवासा जन्मा था और ग्वालिनोमे पला था। यदि विधाताको ऐसा साधारण आदमी ही मुझे जीतनेवाला देखना था, तो इसे बचपनमें गोकुलमे अनेक कष्ट क्यो उठाने पडे ? इस-

लिए विधिको धिक्कार है। दैवकी मूर्खताके समान और कौन सी मूर्खता होगी ? विधिकी यह चेष्टा सब लोगोंको अन्धा करनेमे प्रवीण है और धीर-वीर मनुष्योके धैर्यको भी नष्ट करने वाली है। इस राजलक्ष्मी को भी धिक्कार है, जो वेश्याके समान कभी इस घर, कभी उस घर जाती है। ऐसे विचार जरासिंधके मनमे आये। उसने अपनी मृत्यु निश्चय रूपसे निकट समझते हुए भी प्रकृतिसे निर्भीक होनेके कारण क्रोधसे कृष्णसे कहा, "अरे गोप ! तू चक्रको क्यो नही चलाता ? तू क्यो समयकी उपेक्षा कर रहा है ? जो करना है, शीघ्र कर। अरे मूर्ख, समयकी उपेक्षा करनेवाला दीर्घ सूत्री मनुष्य अवश्य ही नष्ट होता है।"

जरासिंधके उपर्युक्त वचन सुन कर स्वभावसे विनयवान तथा स्नेहशील कृष्णने कहा, "मैं चक्रवर्ती पैदा हुआ हूँ, यह चक्र मेरे हाथ मे आया है, इसलिए आप मेरी आज्ञा स्वीकार करे और सुखसे राज करे। यद्यपि आप हमारी बुराईमे प्रवृत्त हो, पर हमारे मनमे कोई द्वेष नही है, प्रीति ही है। हम प्राणी मात्रसे प्रसन्न है, किसी को भी मारने की हमारी इच्छा नही है।"

कृष्णके ये वचन सुनकर जरासिंधने गर्वसे कहा, "अरे, यह चक्र मेरे लिए अलात चक्रके समान है, तुम इसे पाकर क्यो गर्व कर रहे हो ? तूने अभी तक कल्याण देखा ही नही। तू तो जन्मसे दरिद्री है। जो छोटा आदमी है, वह थोडीसी सम्पदा पाकर गर्व करने लगता है। पर जो महा पुरुष है, लक्ष्मी नाथ है उन्हे गर्व या मद कब होता है ? मै तुझे, यादवो और तेरे सभी साथी राजाओ को समुद्रमे डुबो दूंगा।" इस पर चक्रवर्ती कृष्णने कुपित होकर चक्ररत्नको घुमाकर इस प्रकार छोडा कि उसने जरासिंधके वक्षस्थल-को भेद दिया। जरासिंधको मारनेके पश्चात् वह चक्र फिर कृष्णके हाथमे वापिस आ गया। फिर कृष्णने पाँचजन्य शखको बजाया

और तीर्थंकर नेमिनाथ, अर्जुन और सेनापति अनावृष्टिने भी अपने शख बजाये। ये अभयकी घोपणाए थी। स्वसेना और परसेना अपना-अपना पथ छोडकर कृष्णकी आज्ञाकारिणी हो गई।

राजा दुर्योधन, द्रोण और दु शासन आदिने ससारसे विरक्त होकर मुनि विदुरसे जिन दीक्षा ले ली। राजा कर्णने भी सुदर्शन वनमे मोक्ष फलदायक जिन दीक्षा ले ली। जहाँ कर्णने दीक्षाके समय स्वर्णके अक्षरोसे भूषित अपने कर्ण कुण्डल छोडे थे, वह स्थान कर्ण स्वर्ण कहलाने लगा।

इसके पश्चात् सभी अपने-अपने स्थानको चले गये। श्री कृष्ण महाभारतमे जरासिधको मरा पडा देख कर अति व्याकुल हुआ। जरासिध पडा हुआ ऐसा मालूम हो रहा था, मानो समुद्रमे सूर्य पडा हो। उसकी मरण दशा देखकर कृष्णने रुदन किया, उससे उसकी आखे लाल होकर जपापुष्पके समान दीखने लगी और कृष्ण के जो आसू पडे वे जरासिधको दिये जाने वाले जलके समान थे।

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, "हे श्रेणिक ! यह प्राणी शुभ कर्मोंके उदय होने पर सम्पदाको भोगता है, वह सम्पदा प्रचण्ड पुरुषोके प्रतापका उलघन करने वाली होती है और जब शुभ कर्मोका क्षय होता है, तब वे विपत्तिया भोगते हैं। इसलिए भक्त लोगोको जिन मतमे स्थिर होकर मोक्ष प्राप्तिमे सहायक होनेवाले निर्मल तपको करना चाहिए।



: ३६ :

कृष्ण दिग्विजय

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही श्री कृष्णने दोनों सेनाओंके घायल सैनिकोंकी मरहम पट्टी कराई और मृतक राजा जरासिंध आदिके अंतिम सस्कार कराये।

एक दिन समुद्रविजयादि यादव राजा सभा मण्डपमे श्री कृष्णके साथ बैठे हुए वसुदेवके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वसुदेवको अपने पुत्रों और प्रद्युम्न कुमार तथा सवुकुमार नातियोंके साथ विजयार्द्ध पर्वतपर गये वहुत समय हो गया था पर आज तक उनकी कुशलता का कोई समाचार न आने से उसके सभी भाई चिन्तित थे। उस समय उनके हृदय वसुदेवके लिए गाय और बछडेके समान वात्सल्य से भरपूर थे। उसी समय आकाशमे चमकती हुई विजलीके समान अपने प्रकाशमे सभी दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली विद्याधरियाँ वेगवती आदि वहाँ आ पहुँची। उनके साथ नागकुमारी विद्याधरी भी थी। यह नागकुमारी वास्तवमे वेगवती की दादीका जीव थी। वह तपस्विनी तपस्विनी जिन-धर्मका पालन करके देवी हुई थी।

सभाके बीचमे आकर नागकुमारी सबको आशीर्वाद देती हुई राजा समुद्रविजयसे कहने लगी, "हे राजन्! गुरुजनोंने आप सबको

जो आशीर्वाद दिये है, वे सफल हो गये। यहाँ वासुदेव—कृष्णने राजा जरासिंधको नष्ट किया है। उधर उसके पिता वसुदेवने शत्रु विद्याधरोको नष्ट कर दिया है। वसुदेव पुत्र-नातियो सहित सकुशल है और आप सबकी कुशलता चाहता है। उसने वडोको प्रणाम और छोटोको आसीस कही है।"

विद्याधरीसे वसुदेव आदि की कुशलताके समाचार सुनने से अति हर्षित और रोमाचित हो सब राजाओने पूछा कि वसुदेवने विद्याधरो को किस प्रकार नष्ट किया है। तब नागकुमारी देवीने उन्हे बताया, "युद्धमे निपुण वसुदेवने विजयार्द्धगिरि जाकर अपने श्वसुर और सालो आदि विद्याधरोकी सहायतासे जरासिधकी सहायताके लिए यहाँ रणमे आने को उद्यत विद्याधरोको रास्तेमे ही रोककर उनसे घोर युद्ध करना शुरू कर दिया। इस युद्धसे प्रलयकी आशका होने लगी और सबके चित्त भयसे व्याकुल हो गये। स्वय वसुदेव प्रद्युम्न कुमार और सबुकुमारने सामने पडने वाले सभी शत्रुओको वडी चपलतासे मौतके घाट उतारा। इसी अवसरपर सतुष्ट हुए देवोने आकाशमे वसुदेवके पुत्र कृष्णके नौवा नारायणहोने की घोषणा की और बताया कि उसने चक्रधारी हो कर अपने शत्रु राजा जरासिध को उसीके चक्रव्यूहमे मार डाला है। इसी समय आकाशसे चादनीके समान रत्नमयी वृष्टि वसुदेवके रथपर हुई। उक्त वाणी सुनकर सभी शत्रु विद्याधर भयभीत होकर वसुदेवकी शरणमे आने लगे। इतना ही नही, हारे हुए विद्याधरोने अपनी कन्याए वसुदेवके पुत्रो, प्रद्युम्न कुमार तथा सबुकुमार आदि को विवाहमे दी। वसुदेवकी प्रेरणा से ही यह शुभ समाचार सुनाने हम यहाँ आयी है। नारायण की भक्तिसे प्रेरित होकर वहुतसे विद्याधर राजा तरह-तरह के उपहार लेकर वसुदेवके साथ यहाँ आ रहे हैं।"

नागकुमारी देवी आदि विद्याधरियोके यह समाचार सुनाते ही आकाशमे विद्याधरोके विमानोके समूह छा गये। विमानोसे उतर

कर विद्याधरोने बलदेव और वासुदेवको प्रणाम करके तरह-तरहके उपहार भेट किये। पिता वसुदेवको देखते ही बलदेव और श्री कृष्ण ने उठकर प्रणाम किया और वसुदेवने उन्हे छातीसे लगा लिया और आशीर्वाद दिया। फिर वसुदेवने सभी बडे भाइयोको प्रणाम किया। वलभद्र और वासुदेवने आये हुए विद्याधरोका सम्मान किया और उनके दर्शन करके अपने जन्मको सफल माना।

इसके पश्चात् बलदेव और कृष्ण दोनो भाइयोने पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान किया। अब उनके सव मनोरथ सिद्ध होने से वे आनन्दित थे। जिस स्थान पर जरासिधका वध हुआ था। उस स्थान पर यादवोने विजय उल्लाससे बडा आनन्द मनाया और वह स्थान आनन्दपुरके नामसे प्रसिद्ध हो गया। वहॉ हरिने अनेक जिन-मन्दिरोका निर्माण किया। फिर रत्न मण्डित चक्रकी पूजा करके भरत क्षेत्रको जीता। उसने तीनो खण्डोके देवो, दानवो और मानवोपर विजय प्राप्त की। आठ वर्षमे दिग्विजय प्राप्त की। कृष्णने अब सभी जीतने योग्य राजाओको जीता। फिर वह कोटि-शिलाकी ओर आया जो एक करोड मुनियोके मोक्ष जानेके कारण महा तीर्थ है। उसने उस पवित्र शिलाकी प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया। सिद्धोको स्मरण करके कृष्णने उस कोटिशिलाको अपनी भुजाओसे चार अँगुल ऊपर उठाया। कृष्णसे पहले आठ नारायणो (१) त्रिपृष्ठने सिरसे ऊपर तक, (२) द्विपृष्ठने मस्तक तक, (३) स्वयभूने कण्ठ तक, (४) पुरुषोत्तमने वक्षस्थल तक, (५) पुरुषसिंह या नृसिंहने हृदय तक, (६) पुरुष पुण्डरीकने कमर तक, (७) दत्तक ने जाघो तक और (८) लक्ष्मणने घुटनो तक कोटिशिला उठाई थी। इस कमी का कारण यह था कि युग-युगमे कालभेदसे प्रधान पुरुषोकी शक्ति भिन्न-भिन्न होती गयी। कृष्णके द्वारा शिला उठाये जानेसे समस्त सेनाने जान लिया कि श्री कृष्ण महान शारीरिक बलको रखनेवाला है। दिग्विजयके पश्चात् श्री कृष्ण अपने बांधव

जनोके साथ द्वारिका लौटे जहाँ उनके वृद्धजनोने उनका वडा अभिनन्दन किया। इस महान् स्वागत तथा अभिनन्दनके वीच उन्होने द्वारिका मे प्रवेश किया। श्री कृष्ण और बलभद्रके साथ जो भूमिगोचरी और विद्याधर राजा लौटकर आये थे उनको हर एकके योग्य सामग्री तथा ठहरनेके स्थान दिये गये।

इसके पश्चात् समस्त विद्याधर राजाओ आदि ने श्री कृष्णका राज्याभिषेक करके आधे भरत क्षेत्रका स्वामी घोषित किया।

अव चक्ररत्नधारी राजा श्रीकृष्णके सामने जरासिंधके पुत्र तथा अपने साथी राजाओको उनके योग्य राज देनेका महान काम था। सवसे पहले उन्होंने जरासिंधके द्वितीय पुत्र सहदेवको राजगृहका राजा वनाया और उसे निरहकार होकर मगध देशका एक चौथाई भाग प्रदान किया। राजा उग्रसेनके पुत्र द्वारको मथुरापुरी दी और महानेमिको शौर्यपुरका राज दिया। श्री कृष्णने पाण्डवोको वडी प्रीति के साथ उनका प्रिय हस्तिनापुर दिया और राजा रूधिरके पुत्र रुक्मनाभको कोशल देश दिया। यह रुक्मनाभ जरासिंधके सेनापति हिरण्यनाभका छोटा भाई था। इतना ही नही राजा कृष्णने सब साथियो तथा विद्याधरोको स्थान दिये।

इस प्रकार राज बाटकर अपने साथी राजाओ तथा जरासिंधके पुत्रको सतुष्ट करके विदा किया और यादव राजा द्वारिकापुरीमे आनन्द-सुखसे रहने लगे।

श्री कृष्णके सात रत्न थे—(१) शत्रुओको वशमे करनेवाला सुदर्शन चक्र, (२) जिसकी ध्वनि सुन कर शत्रु कम्पायमान हो जाय ऐसा सारग धनुष, (३) सुनन्दा खड्ग, (४) कौमदी गदा, (५) अमोघ मूल शक्ति, (६) पाचजन्य शख और (७) कौस्तुभ मणि।

इन सात रत्नोमे श्री कृष्णको अतुल प्रताप प्राप्त हुआ। ये सातो रत्न दिव्यमूर्ति हरिके लिए अत्यन्त हितकारी सिद्ध हुए।

बलभद्रके पास भी दिव्य आयुध अपराजित हल, शक्ति मूसल, दिव्य गदा और रत्नमाला इत्यादि रत्न थे।

दिव्य आयुधोसे युक्त महा प्रतापी श्री कृष्ण और बलभद्र अपनी अनेक रानियो और अगरक्षक देवोके साथ भक्तिपूर्वक धर्मपालन करते हुए द्वारिकामे सुखसे रहने लगे।



: ३७ :

द्रौपदी हरण

श्री कृष्णकी प्रबलतासे हर्षित पाण्डव हस्तिनापुरमे सुखसे राज कर रहे थे। उनके अखण्ड राज्यसे समस्त प्रजाको बडा सुख हुआ और वह दुर्योधन आदिको भूल गयी।

एक दिन सब जगह से बेरोक-टोक घूमनेवाले, क्रुद्ध हृदयी और स्वभावत कलह प्रेमी नारद वहाँ पाण्डवोके घर आये। पाण्डवोने नारदका बडा आदर सम्मान किया। पर जब वह रनवासमे गया, वहाँ द्रोपदी अपने आभूषण आदि पहननेमे व्यस्त थी और उसने नारदको प्रवेश करते न देखा। वह पाससे गुजर गया। नारद तो द्रोपदीकी उपेक्षाके मारे क्रोधसे ऐसा जल गया, जैसे तेल गिरने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। सच है अनादरसे पीडित व्यक्ति सज्जनके मौके या परिस्थिति को नही समझता। झट से उसने द्रोपदीको इस अनादर का मजा चखानेका निश्चय किया। वह पूर्वार्द्ध भरत क्षेत्रके धातुखण्डमे अगदेशकी अमरकका नगरीमे गया। वह वहाँ अति कामी और स्त्रियोके बहुत लोलुपी राजा पद्मनाभसे मिला।

राजा पद्मनाभ यात्रिक नारदसे यह मालूम करने की इच्छासे कि क्या उसने उसकी रानीसे अधिक सुन्दर स्त्री कही देखी है, उसे अपने महलमे ले गया। सभी रानियोने नारदको प्रणाम किया। इसके पश्चात् राजाने नारदसे पूछा, "महाराज क्या आपने मेरी रानीसे अधिक सुन्दरी किसी और स्थान पर भी देखी है ?"

नारद समझ गया कि राजाको अपनी रानियोके सौन्दर्यपर गर्व है और वह विषयाभिलाषी है। नारदने तुरन्त राजा पद्मनाभसे द्रोपदीके लोकातीत रूप-लावण्यका वर्णन करके उसके हृदयमे द्रोपदीकी अभिलाषाका पिशाच लगा दिया। फिर नारद यहाँ-वहाँ के नगरोका हाल सुनाकर वहाँसे विहार कर गया। पर राजा तो व्याकुल रहने लगा। उसने द्रोपदीकी प्राप्तिके लिए पातालवासी देवता सग्रामककी आराधना की। वह देवता अर्जुनकी स्त्री द्रोपदीको सोती हुई अवस्थामे सेज सहित उठा लाया।

राजा पद्मनाभके सर्वतोभद्र नामक राजमहलकी वाटिकामे द्रोपदीको छोड कर देवने राजाको सूचना दी। राजा तुरन्त वाटिकामे द्रोपदीके पास आया। उसे वह साक्षात् देवांगना सी लगी। उधर द्रोपदीने अपने आपको अपरिचित स्थान मे देखा तो उसने तमाम बात को स्वप्न समझा और फिरसे सो गई।

सुषुप्ता द्रोपदीका अभिप्राय समझकर राजा पद्मनाभने धीरे-धीरे उसके पास जाकर मधुर वचनोसे कहना आरम्भ किया, "हे विशाल नेत्रे! देखो, यह स्वप्न नही है। तुम घातकी खण्ड द्वीपकी अमरकका नगरीमे हो और मैं राजा पद्मनाभ हूँ। नारदने तुम्हारे मनोहर रूप-सौन्दर्यका बखान किया था। और मेरा आराधित देव ही तुम्हे यहाँ लाया है।"

राजाके ये वचन सुनकर महा सती द्रोपदी चकित हो गयी। वह मनमें सोचने लगी कि यह क्या है और वह तो बडे सकट मे आ फसी है। तुरन्त उसने मनमे संकल्प किया कि जब तक वह अपने पतिदेव अर्जुनका दर्शन न करेगी, तब तक उसके अन्न-जल और शारीरिक संस्कार और शृंगार का त्याग रहेगा। ऐसा नियम लेकर उसने अपनी वेणीको खोल दिया ताकि अर्जुन ही उसे बांधे। अब द्रोपदी नीतिके वज्रमय कोटके भीतर स्थित होकर प्रकट रूपमे कामसे

पीडित राजा पद्मनाभको सम्बोधित करके बोली, "बलदेव और कृष्ण नारायण मेरे भाई है, धनुर्धारी अर्जुन मेरा पति है, पतिके बड़े भाई महावीर भीम अतिशय वीर हैं और पतिके छोटे भाई सहदेव और नकुल यमराजके समान हैं। जल और स्थल मार्गसे उन्हे कोई नही रोक सका। मनोरथके समान शीघ्रगामी उनके रथ समस्त पृथ्वीपर विचरण करते हैं। इसलिए हे राजन्! यदि तू अपना भला व कल्याण चाहता है तो सर्पिनीके समान मुझे शीघ्र ही उनके पास वापिस भेज दे।" पर पद्मनाभकी तो सभी सदिच्छाए दूर हो चुकी थी। इसलिए पद्मनाभ पर द्रोपदीकी इन बातो का न कोई प्रभाव होना था, न हुआ। उसने अपनी हठ न छोडी।

तब वह महासती अपनी बुद्धिसे एक उपाय सोच कर दृढतापूर्वक उसे कहने लगी, "हे राजन्! यदि मेरे स्वजन—ससुराल और पीहरके आदमी एक मासमे यहाँ न आये, तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना। यह सुनकर राजा "ऐसा ही होगा" कह कर चुप हो गया, पर वह अपने राजलोककी चतुर स्त्रियो द्वारा द्रोपदीको अपने अनुकूल करने और तरह-तरहके प्रिय पदार्थोंसे उसे फुसलानेमे लगा रहा। पर वह सती अपने निश्चयपर दृढ रही, टस-से-मस न हुई। वह निर्भीक होकर अन्न-जलका त्याग करके अश्रुपात करके अपने पतिके आने की बाट देखने लगी।

इधर प्रभात होते ही हस्तिनापुरमे द्रोपदीको महलमे न देखकर पाँचो पाण्डव व्याकुल हो उठे, किंकर्तव्यविमूढ बन गये। जब वे निरुपाय हो गये, तब उन्होने कृष्णके पास जाकर द्रोपदीके न मिलने, कही चले जाने का समाचार दिया।

कृष्ण तो पराये दुखको अपना दुख समझने वाले थे। झट से उन्होने समस्त भरत क्षेत्रमे द्रोपदीकी तलाश कराई। पर द्रोपदी कही भी न मिली। तब सब यादवोने विचार करके यह निष्कर्ष निकाला कि

कोई क्षुद्र व्यक्ति द्रोपदीको इस क्षेत्रसे किसी दूसरे क्षेत्रमे ले गया है। फिर वे पारस्परिक मंत्रणासे द्रोपदीका पता लगाने की युक्ति सोचने लगे।

उसी समय नारद जी वहाँ आ पहुँचे। समस्त यादवोसे भरी सभामे नारदने श्री कृष्णसे कहा, "हे कृष्ण! मैने धातकीखण्डमे अमरकका नगरी मे राजा पद्मनाभके महलमे अति दुर्बल, अश्रुपात करती और अन्न-जल त्यागे द्रोपदी देखली है।" राजा पद्मनाभकी स्त्री आदर से उसकी सेवा कर रही है। पर द्रोपदीका तो मात्र शील ही आधार है। वह लम्बे-लम्बे निश्वास-पर-निश्वास छोडकर आपकी प्रतीक्षा कर रही है। आप जैसे वीर भाइयोके होते हुए द्रोपदी शत्रुके घरमे रहे?"

द्रोपदीके सम्बन्धमे नारदसे यह समाचार पाकर कृष्ण आदि सभी अति हर्षित हुए और नारदकी प्रशसा करने लगे। श्री कृष्णने कहा, "वह दुष्ट पद्मनाभ द्रोपदीका हरण करके कहाँ जायेगा? मृत्यु के इच्छुक उस दुराचारीको अभी यमलोक भेजता हूँ।" इस प्रकार अपना रोष प्रकट करके श्री कृष्ण द्रोपदीको लाने के लिए तैयार हो गये। वासुदेव दक्षिणके तटके साथ-साथ रथपर चढ कर चल पडे। लवण समुद्रके अधिष्ठाता देवने कृष्णको देवोपुनीत छह रथ दिये, जिनमे बैठकर वह और पाण्डव धातुकी खण्डके भरत क्षेत्रमे पहुँच गये और अमरकका नगरीके उद्यानमे डेरे डाल दिये। उनके साथ कोई सेना न थी।

जब राजा पद्मनाभको कृष्ण तथा पाण्डवोके आने की सूचना मिली, तब वह अपनी चतुरंग सेना लेकर उनमे लडने के लिए नगरसे निकला। पर पाण्डवोने उसे युद्धमे पराजित कर दिया और वह भाग कर अपने नगरमे जा घुसा और नगर द्वार बन्द करा दिये। पाण्डवोके लिए द्वार तोड कर अमरकका नगरीमे प्रवेश करना कठिन

था । तब कृष्णने द्वार तोड दिये और नगरको चूर-चूर कर दिया। नगर निवासी व्याकुल होकर भागने लगे। तब राजा पद्मनाभ, राजदरबारी और नगरके विशिष्ट लोग द्रोपदीकी शरणमे गये। सभी भयसे काप रहे थे। राजाने द्रोपदीसे निवेदन किया, "हे देवी! हे दयावती ! हे सौम्य ! हे पतिव्रते ! हमे क्षमा करो, हमे अभय-दान दो। मै अपराधी तुम्हारी शरण आया हूँ।"

तब शीलवती और कृपालु द्रोपदीने राजासे कहा, "तुम स्त्रीका भेष धारण करके श्री कृष्णकी शरण जाओ। वह नरोत्तम महा दयालु है। जो व्यक्ति अपराध करके भी उनके चरणोमे पडते है, वे उनको अवश्य क्षमा करते हैं। वे सब पर दयावान है। स्त्री और बालक पर वे अति दयावान है। जो शस्त्र और युद्धसे डरते हैं उनको कृष्ण कभी नही मारते।"

द्रोपदीकी वात मान कर राजा पद्मनाभ स्त्रीका भेप वनाकरके अपनी रानियो सहित कृष्णके पास गया और क्षमा मागी। पृथ्वी-पति कृष्णने उन्हे क्षमा प्रदान की, अभयदान दिया।

द्रोपदीने कृष्णके पास आकर प्रणाम किया और कुशल क्षेम पूछी और कृष्णने भी उसकी कुशलता पूछी। तव अर्जुनने द्रोपदी को छातीसे लगा कर उसकी समस्त विरह व्यथा दूर की, उसकी चोटी वाध कर द्रोपदीकी प्रतिज्ञा पूरी की। द्रोपदीने स्नान किया। कृष्ण, पाँचो पाण्डव और द्रोपदीने भोजन किया। अव द्रोपदीका सव दुख दूर हो गया।

कृष्ण द्रोपदीको अपने रथमे चढा कर समुद्र तट पर आया और अपना शख वजाया जिसके शब्द से दशो दिशाए गूज उठी।

रास्तेमे भीमने अपने कौतुकी स्वभावसे कृष्णकी शक्तिकी परख-के लिए नावको छिपा दिया। पर कृष्ण द्रोपदी सहित दूसरे तटपर पहुँच गया। वात खुलने पर कृष्ण पाण्डवोसे वडे विरकचित हुए

और कहने लगे, "प्रथम तो वडो मे हसी करना ठीक नही है और यदि उनको प्रसन्न करने के लिए हसी करनी भी हो, तो मौका तथा समय देखकर उनका भाव (मूड) देखकर ही करनी चाहिए, अन्यथा नही।" पर पाण्डवोने तो हसी करते समय इनमे से किसी बात का भी विचार न किया था। इसलिए कृष्ण उनसे उदास होकर कहने लगे, "हे कुपाण्डवो! मनुष्य से न हो सकने योग्य मेरे अमानुपिक काम तुम जगतमे अनेक बार देख चुके हो। फिर भी तुम्हारा सन्देह न गया। इस गगाको पार करनेमे तुमने मेरी क्या शक्ति देखी?" इस प्रकार उलाहाना देकर वे सब हस्तिनापुर आये।

हस्तिनापुर मे श्री कृष्णने अपनी वहन सुभद्रा और अर्जुनके पौत्र परिक्षतको हस्तिनापुरका राज दिया और पाण्डवोको वहाँ से निकाल दिया।

इसके पश्चात् कृष्ण द्वारिकापुरी लौट गये और पाण्डव श्री-कृष्णके आदेश अनुसार हस्तिनापुर छोडकर दक्षिण मथुरामे जा बसे।



नेमिनाथ दीक्षा कल्याणक

एक दिन युवा नेमिकुमार कुवेरके द्वारा भेजे हुए वस्त्राभूषण आदिसे सुशोभित राजाओ तथा वलदेव और कृष्ण आदि के साथ यादवोसे भरी कुसुमचित्रा सभामे गये। राजाओने अपने-अपने आसन छोडकर उन्हे नमस्कार किया। श्री कृष्णने भी आगे वढकर उनका स्वागत किया। फिर वे दोनो सिहासन पर विराजमान हो गये। और वे दोनो सिंहासन पर वैठे हुए दो इन्द्रो या दो सिंहोके सदृश सुशोभित हो रहे थे।

उस समय सभामे वलवानोके वलकी चर्चा चल पडी। तव किसीने अर्जुनकी प्रशसा की, तो किसीने युधिष्ठर की। नकुल, सहदेव, बलभद्र और श्री कृष्णके वलकी प्रशसा की। तव पद्मनाभ-बलभद्र बोले, "तुम लोग व्यर्थ इन सवकी वडाई करते हो। भगवान नेमिकुमार-सा बल तीन लोकमे किसीमे नही है। वे पृथ्वीको उठा सकते है, समुद्रको दशो दिशाओमे विखेर सकते है। इनसा वल सुर-नर किसी मे नही है।"

श्रीकृष्णने नेमिकुमारकी वडाई सुनकर जरा मुस्कराते हुए उनसे मल्लयुद्धमे वलकी परीक्षा करनेको कहा। इस पर नेमिकुमारने कहा, "हे अग्रज! इसमे मल्लयुद्धकी क्या आवश्यकता है? यदि आपको मेरा वल जानना ही है, तो लो मेरे पांवको इस आसनसे सरका

दो ।" पर श्रीकृष्ण उनके पाँवको टस-से-मस न कर सके और उन्हो-ने उनके बलको न केवल स्वीकार ही किया, वरन् उसकी प्रशसा भी की। और उनके बलको लोकोत्तर बताया। पर उनके मनमे नेमिकुमारके प्रति कुछ शका सी रहने लगी।

श्रीनेमिकुमार और श्रीकृष्ण सुखसे अपना समय व्यतीत कर रहे थे कि तभी वहाँ एक घटना घटी।

विजयार्द्धमे श्रुत शोणित नगरमे प्रसिद्ध और रण सग्राममे शूरवीर राजा बाण राज करता था। उसकी अनेक गुण-कला रूपी आभरणोसे युक्त ऊषा पुत्री थी। वह अपने गुणो तथा रूपके कारण बडी प्रसिद्ध थी। इस लडकीने प्रद्युम्न कुमारके पुत्र अनिरूद्धके गुण सुने, तो बस वही उस राजकुमारीके मनमे बस गया। उस सुन्दरीका चित्त अनिरूद्धकी प्राप्तिके लिए व्याकुल रहने लगा। पर कोई भी उसकी व्याकुलताका कारण न समझ सका।

तब उसकी एक हितैषी सखीके पूछने पर राजकुमारीने अपने मनकी बात कही। उसने कहा यदि वह किसीको व्याहेगी तो अनिरूद्धको ही और किसी को नही। तब उसकी सखी सोते हुए अनिरूद्ध कुमार को रातमे उठा कर विद्याधरियोके लोकमे ले गयी और राजकुमारी की सेज पर सुला दिया। दिन निकलने पर जब कुमारकी आखे खुली, तो पराये महलमे एक सुन्दरीको अपने पास देखकर वह चकित रह गया। वह हैरान था कि यह सुन्दरी शची है या पद्मावती है या कोई मनुष्य वधू है। वह भ्रममे पड गया, कि वह स्वप्न देख रहा है या जागृत है। तब राजकुमारीकी चित्रलेखा सखीने सब हाल अनिरूद्ध कुमारको बताया और एकान्तमे दोनोका गन्धर्व-विवाह करा दिया। वह नवदम्पति ऊषाके महलमे देव-देवागना-के समान सुखसे समय व्यतीत करने लगे। जब कृष्ण आदिने अनिरूद्ध कुमारके अपहरित होने का समाचार सुना, तब श्रीकृष्ण,

बलभद्र और प्रद्युम्नकुमार आदि तत्काल अनिरूद्धको लानेके लिए विमानसे राजा बाणके श्रुत शोणित नगरमे गये। पर राजकुमारी ऊषाके माता-पिताको पुत्रीके गन्धर्वविवाह का कोई ज्ञान न था। इसलिए राजा बाण श्रीकृष्ण आदिसे लडनेको तैयार हो गया। पर श्रीकृष्ण आदि ने राजा बाणको पराजित कर दिया और वे अनिरूद्ध कुमारको उसकी नववधु सहित द्वारिका ले आये। उनके आने पर सबको प्रसन्नता हुई।

इसके पश्चात् बसन्त ऋतु अपने सभी प्राकृतिक सौन्दर्य और छटाको लेकर द्वारिकामे आई। तब नगरके सभी नर-नारी और श्रीकृष्ण अपनी रानियो सहित गिरनार वनमे क्रीडा करने और बसन्त ऋतुका आनन्द लेने गये। वे विनती करके युवा नेमिकुमार को भी साथ ले गये। यद्यपि नेमिकुमारको इस क्रीडाके लिए कोई अनुराग न था, पर वह भी भाई-भौजाइयोके आग्रहके कारण उनके साथ वनको चले गये। समुद्रविजय आदि दसो भाइयोके तरुण आयु वाले सभी कुमार उनके साथ गये। प्रद्युम्नकुमार भी उनके साथ गया।

गिरनार पर्वत पर उन राजकुमारो तथा रानियोकी चहल-पहलसे सुमेरू पर्वतके वनोके देव-देवांगनाओ सदृश सुशोभित लगने लगा। सभी नर-नारियाँ पर्वतके नितम्ब पर स्थित वनोमे अपनी इच्छानुसार घूमने-फिरने लगी। उस समय वनमे वसन्ती फूलोकी सुगन्धसे सुगन्धित दक्षिणकी शीतल वायु सब दिशाओमे चल रही थी। आम वृक्षो का रस पान करनेवाली कोकिलाओकी मधुर कुहकुहू सैलानियोके मनको मुग्ध कर रही थी। मधुपान करनेवाले भौरे, मौलश्री आदिके वृक्षोपर गुजार कर रहे थे। फूलोके भारसे लताए नम्रीभूत हो रही थी। युवतियो द्वारा पुष्प चयनसे वेले कांप रही थी। ऐसे प्राकृतिक वासती सौन्दर्यमे तरुण पुरुषके साथ जहाँ-

तहाँ लता कु जो, सरोवरो और वापिकाओ आदि मे भ्रमण करके वसन्तका आनन्द ले रहे थे।

वहाँ कृष्णने अपनी रानियोके साथ चैत्र मास व्यतीत किया। कृष्णकी रानियोने अपने देवर नेमिकुमारको भ्रमण कराया। केशव की सभी रानियाँ बडी वाचाल थी। वे अपने पतिकी आज्ञासे अपने देवर को नानाविधि वन क्रीडा कराने लगी। कोई भावज नेमि कुमारका हाथ पकड कर विहार कराने लगी। कोई उन्हे वन की शोभा दिखाने लगी और कोई उन्हे साल-तमाल वृक्षोकी टहनियोके पखोसे हवा करने लगी। कई भाभियाँ अशोक वृक्षके नये-नये पल्लवोसे करणाभरण या सेहरा वना कर उन्हे पहनाने लगी। कोई उन्हे पुष्प मालाएँ पहनाने लगी, कोई सिर पर मालाए बाधने लगी और कोई उनके सिरको लक्ष्य वनाकर उस पर पुष्प फेकने लगी। इस प्रकार युवा नेमिनाथ भाभियोके साथ वसन्तका आनन्द ले रहे थे। वे भाभियाँ वडी भक्ति भावसे उनकी सेवामे तल्लीन थी।

वसन्त के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु आई। तव कृष्णकी प्रियाएँ नेमिकुमार से जल-क्रीडा करनेका आग्रह करने लगी। गिरनार गिरिशीतल झरनोसे महामनोहर लग रहा था। उन झरनोसे पवित्र जलसे तीर्थेश्वर भौजाइयोके आग्रहसे जल क्रीडा करने लगे। यद्यपि भगवान् स्वत स्वभाव मे रागरूप रजसे पराङ्मुख है, तथापि उस समय जलमे तैरना, डुवकी लगाना, डुवकी लगा कर दूर निकलना उनके लिए साधारण सी वात थी। वे पानीकी पिचकारियाँ मार रहे थे। भाभियाँ भगवान् नेमिनाथके मुख पर जल फेक रही थी और नेमि कुमार उन पर दोनो हाथो से जल फेक रहे थे। नेमिकुमारने सभी भाभियोको जल क्रीडा मे हरा दिया, वे पीछे हट गयी। ऐसी जल क्रीडा किसीने कभी नही देखी। इस जल क्रीडासे उन तरुणियो का ग्रीष्मदाह मिट गया। वे तृप्त हो गयी। करणाभरण खिसक गये, मस्तकके तिलक मिट गये, अधर धूसर हो गये, कटि मेखलाए

शिथिल हो गयी और केश बिखर गये। उनके शरीर थक कर चकनाचूर हो गये। अब उन सबने स्नान करके वस्त्र बदले, नेमि-कुमारको भी नये वस्त्र पहनाये गये।

स्नान के पश्चात् नेमि कुमारने कृष्णकी अति प्रिया पत्नी और अपनी भाभी जामवन्तीको अपने वस्त्र निचोडनेका आखसे इशारा किया। भाभीने इसका बुरा माना और भौहे टेढी करके कहा कि ऐसी आज्ञा तो उसके महाबलवान, नाग शय्यापर सोने वाले, मेघ की ध्वनि को जीतनेवाले शखको बजानेवाले और शारग धनुपको चढानेवाले कृष्ण भी कभी नही करते। देवरानियो-जेठानियोने भी जामवन्तीको समझाया और नेमि कुमारने अपने बलको शख वजा कर, धनुप चढा कर और नाग शय्या पर सोकर दिखाया। शखकी ध्वनि से दिशाए गूंज उठी, स्त्री पुरुप भयभीत हो गये और स्वय कृष्ण चितत हो गये। जब कृष्णने देखा कि यह सव नेमिकुमारने जामवन्तीके कहने पर किया है, तब वे चितित एव हर्पित हुए। उन्होने नेमिकुमारका प्रेमसे आलिगन किया।

इस बसन्त भ्रमण और ग्रीष्म कालीन जल क्रीडा से कृष्णको यह समझते देर न लगी, कि अब नेमिकुमारका विवाह उनके योग्य युवतीसे किया जाय। उसी समय उन्होने भोज वशियोकी राजमति या राजुल राजकुमारी नेमिकुमारके लिए मागी, अपने वन्धुजनोको उसके पाणिग्रहण सस्कारकी सूचना दी और समस्त राजाओ को स्त्रियो सहित अपने पास बुलाया। सभी परम रूपवान स्त्री-पुरुप अनेक आभूपणो तथा सुन्दर वस्त्रो से सुसज्जित नगरमे भोजनके लिए आये।

ग्रीष्मऋतु बीतने पर वर्पा ऋतु अपनी मेघ मालाओ, गर्जन और शीतल जलकण की वर्पा लेकर आई। मोर और चातक वर्पामे सुख अनुभव कर रहे थे। जहाँ एक तरफ बरसात कुछ आदमियोको

शान्ति देती है, वहाँ विरही आदमियोको दु सह आताप देती है। सावनका महीना आया। मेघोके समूह बरसने लगे। सूर्यकी तपत दग्धवनमे पक्तियोसे बूँदे पडने पर सर्व प्रथम वाष्प और सौंधी-सौंधी सुगध ऐसे निकल रही थी, मानो वनावलीके हर्ष सुखोच्छ्वास निकलने लगी हो। कडकती विजली, इन्द्रधनुष और काले-काले बादल बरसातके प्राकृतिक सौन्दर्यको दुगना कर रहे थे। सभी प्रकार के वृक्ष और लताए पुष्पोसे सुशोभित थी। वन, पहाड और तल-हटी सभीमे हरियाली उनकी शोभा वढा रही थी। ऐसी वर्षा आने पर त्रिकाल योगको धारण कर तपस्या करनेवाले मुनि गिरिके शिखरकी तप्तायमान शिलाओसे उतर कर वृक्षोके नीचे ध्यानस्थ हो गये, जहाँ ठडी पवन चल रही थी और बूँदे टप-टप गिर रही थी।

ऐसे सुहावने समयमे श्री नेमि जिनेश्वर चार घोडोके अति प्रभा-वान रथ पर सवार होकर विवाहके लिए चले। साथमे राजाओके तरुण समवयस्क पुत्र और मित्र थे। नगरकी कुछ वधुए तृषित नेत्रोसे नेमिकुमारके सौन्दर्य रूपी जलका पान करने लगी। कुमारका चित्त दयासे पूर्ण था और उनका दर्शन मनोहर था। पवनके योगसे उस समय समुद्रने जो उछाल लिया, तो ऐसा लगा मानो समुद्र नटके समान नृत्य कर रहा है और समुद्रकी गर्ज वाजोकी मधुर ध्वनिके समान लगने लगी। समुद्रकी तरगे नटके हाथोके समान भिन्न-भिन्न भावोका प्रदर्शन कर रही थी। नेमिकुमार उपवनोसे होकर वनमे जा रहे थे और ऊपरसे वृक्षोके पुष्प उन पर गिरकर कुसुमाजलिके समान चढ रहे थे।

अचानक मार्गमे नेमिकुमारने एक तरफ कुछ पशुओको घिरा हुआ देखा। ये पशु भयसे काप रहे थे, अत्यन्त विह्वल थे और क्रूरपुरुप उन्हे वहा घेरे हुए थे। पशुओका भय मिश्रित क्रन्दन सुनकर नेमि-कुमारने रथको वही रुकवाया और सारथीसे उन पशुओके बारेमे पूछा। तब सारथीने बडी विनम्रतासे हाथ जोड कर बताया, "हे

नाथ ! आपके कुलके राजादि तो अन्न-शाकाहारी है, उन्हे अभक्ष्य-का त्याग है, पर मासाहारी वरातियोके लिए भोजनके लिए ही ये पशु यहाँ एकत्रित किये गये है।"

सारथीके ये वचन सुनकर दयानिधि नेमि कुमारने तुरन्त उन पशुओ को बाडेसे मुक्त करा दिया। फिर नेमि कुमारने सभी राज-पुत्रोको सम्बोधन करके कहना शुरू किया, "हे राजपुत्रो ! इन पशुओका घर-बार नही, तृण और जल इनका आहार है और ये निरपराध है। जो इन निर्बल प्राणियोको मारता है, उसके समान निर्दयी कौन होगा ? रणमे विजयकीर्ति प्राप्त करनेवाले योद्धा सामने योद्धाओपर ही प्रहार करते हैं, निर्वलोपर नही। हाथी, घोडे और रथका सवार अपनेसे लडने को तत्पर आदमीसे लडनेको तैयार होता है, दूसरे पर वार नही करता। सामन्तोकी यह रीति नही कि वनके सिह आदि पशुओसे तो भागे और महा दुर्बल मृग और बकरे आदि को मारे। हिंसादि पापोका आचरण करनेवाले व्यक्तिके करुणा कहाँ ? यह कितने आश्चर्यकी वात है, कि यह आदमी विस्तीर्ण राज्यकी इच्छा तो रखता है, पर जीवोकी हिंसा मे तत्पर रहे। देखो मैंने पूर्व जन्मोमे कहाँ-कहाँ भ्रमण किया है, वहुतसे सुख भोगे हैं, फिर भी मै तृप्त न हुआ। सासारिक सुख सर्वथा असार है।"

यह कह कर नेमिकुमार विरक्त मनसे द्वारिका लौट पडे। वहाँ प्रभुने स्नान किया और सिहासनपर वैठ गये। वहाँ वहुतसे राजा, कृष्ण और वलभद्र वैठे थे। तव नेमिकुमार तपके लिए उठने लगे। यह देखकर कृष्ण, वलभद्र और भोजवशियोने नेमिनाथको विविध प्रकार की अनुनय-विनय करके और आगा-पीछा समझा कर रोकनेका प्रयत्न किया, परन्तु सव व्यर्थ। जिस प्रकार पिंजरा तोड कर निकलनेको उद्यत प्रवल सिहको कोई नही रोक सकता, उसी प्रकार तपके लिए जानेको तैयार दृढ सकल्पी नेमिकुमारको रोकनेमे

कोई समर्थ न हो सका। फिर नेमि कुमारने अपने माता-पिता आदि परिवारके लोगोको अपना निर्णय और ससारकी स्थिति अच्छी तरह समझाई।

इसके पश्चात् नेमिनाथ जी ध्वजाओ, सफेद छत्रो और रत्न आदि से सुसज्जित उत्तरकुरु नामक पालकीमे सवार होकर चल पडे। पालकी पर सवार नेमिनाथ उदयाचलकी भित्तिपर आरूढ चन्द्रमाके समान लग रहे थे। वे गिरनार पर्वतपर पहुँचे। गिरनार पर्वतकी प्राकृतिक शोभा और लताओ तथा पुष्पोके सौन्दर्यका वर्णन करना कठिन है। वहाँ नेमिनाथने अपने हाथो से अपने सिरके कुटिलकेशों को इस प्रकार उखाड दिया, मानो वे चिरकालसे लगी हुई कुटिल शल्योकी परम्पराको उखाड रहे हो। उनका तप कल्याणक शुरू हो गया। उनके साथ अनेक राजाओने भी मुनि दीक्षा ली। एक दिन श्रीनेमिनाथ द्वारिकामे आहारके लिए आये और वहाँ उत्तम तेजधारी प्रवरदत्तने आहार देकर महिमा और प्रतिष्ठा प्राप्त की।

इधर दु खसे पीडित भोजवशके लोग नेमिकुमारके इस प्रकार चले जाने और अपनी बेटी राजुलके भविष्यसे चिंतित करुण क्रंदन मुखसे रुदन कर रहे थे। अपार वियोग से दु खी राजपुत्री राजमती अपनी लज्जापूर्ण चेष्टाओसे युक्त मनमे अत्यन्त सतप्त थी। वह अत्यन्त प्रबल शोकसे ग्रस्त निरतर विलाप करती रहती थी। उसके आभूषण और केशोके जूडे शिथिल हो गये थे और वह करुण शब्दो से अति अधिक रोती रहती थी। उसके आसुओसे उसका हार और छाती गीली हो रही थी। कभी वह अपने दुर्दैव को उलाहना देती और कभी वह अपने अत्यन्त मनोहर वरको दोष देती। उसके सगे सम्बन्धियो और माता-पिताने उसे बहुत समझाया कि वह नेमि-कुमारका विचार छोड दे, उसका किसी दूसरे सुन्दर राजकुमारसे विवाह कर दिया जायेगा। पर वह न मानी। उसने कहा, "क्षत्री

कन्याए जीवनमे एकवार पति चुनती है, वार-वार नही। वह ब्याहेगी तो नेमिकुमारको, वरना वह भी उनके पथ पर चलेगी और साध्वी बन जायेगी।" राजुल और उसकी सखियोने नेमिनाथसे बडी विनम्रतासे घर लौटने की प्रार्थना की, पर वे टस-से-मस न हुए। अन्तमे राजुलने भी अपने सब अलकारो को त्याग कर तप धारण करने का विचार किया। वह भी तपस्विनी वन गयी। यह नेमिनाथका महानिष्क्रमण और तप कल्याणक है।



: ३९ :

केवल ज्ञान प्राप्ति और समवसरण

श्री नेमिनाथ सम्यग्दर्श, ज्ञान और चरित्र और तपसे सुशोभित हो गये । सभी प्रकार की बाईस परीषहो—कष्टोको वे सहने लगे । अप्रशस्त और महानिन्द्य आर्त्त और रौद्र कुध्यान को त्याग कर वे सदा धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यानमे रत रहने लगे । चित्तके एकाग्र निरोध को ही ध्यान कहते है । ध्यानके लिए मनका स्थिर होना बडा आवश्यक है । वे अनिष्ट सयोग और इष्ट वियोगमे सदा मनको सम रखते थे ।

दुष्ट और क्रूरचित्त प्राणीके जो भाव होते है, उनको रौद्र ध्यान कहते है ।

जो मोक्षाभिलाषी जीव है, वे सदा धर्म ध्यान और शुक्लध्यान मे अपनी बुद्धि लगाते है । धर्मध्यानकी सिद्धिके वास्ते योग्य द्रव्य, योग्य क्षेत्र, योग्यकाल और योग्यभावकी आवश्यकता है अर्थात् उत्तम शरीर, आर्य क्षेत्रका एकान्त और निर्जन्तु स्थान, समशीतोष्ण-काल और भावोंमे निर्मलता चाहिए । जो तपस्वी समस्त परीषहो को जीतनेमे समर्थ हो, वह धर्म ध्यानको ध्याता है । ऐसा व्यक्ति महागम्भीर तथा स्तम्भ समान निश्चल होता है और पद्मासन

लगाता है। उसके नेत्र निश्चल और समस्त इन्द्रियोके काम निवृत्ति रूप होते है। ऐसा धर्मध्यानी ही शुल्क ध्यान लगा सकता है। ऐसा ध्यानी अपने मनको नाभिके ऊपर हृदयमे, मस्तकमे या ललाटमे रोककर ध्यान करता है और उसकी दृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर रहती है। वह व्रतशील और तपादि का आचरण करता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुपार्थो मे मोक्ष पुरुपार्थ-सर्वोत्कृष्ट है। जीवका वास्तविकहित इसी मे है। यह कर्मके क्षय या मिटने से होता है। और कर्मोका क्षय शुल्क ध्यान से होता है। समस्त कर्म प्रकृतियोका अभाव होना मोक्ष है। यह मोक्ष अनन्त सुख रूप है। यह मोक्ष मत्र साध्य और सहज साध्य है। तीर्थंकरो और उसी जन्मसे मोक्ष जानेवाले मनुष्योके लिए यह सहज साध्य है। पर जन्मान्तरमे मोक्ष जानेवाले के लिए यह मत्र साध्य है।

सिद्ध पद प्राप्तिका कारण धर्मध्यान और शुल्कध्यान है। इस-लिए भगवाननेमिनाथने छप्पन दिन तो धर्मध्यान किया। और आसोज सुदी प्रथमाके दिन प्रभात समयमे शुल्कध्यान रूपी अग्निसे चारो घातिया कर्मोको भस्म करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यको प्राप्त किया। अव उन्हे केवल ज्ञान अर्थात् पूर्णज्ञान हो गया। यह भगवान नेमिनाथका केवलज्ञान कल्याणक हुआ।

समस्त जगतमे और देवलोकमे 'जय, जय' का शब्द गूँज उठा। सभी प्रकार के देव भगवानके केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिए तैयार हो गये और उन्होने गिरनार पर्वतकी प्रदक्षिणा करके समसवरण अर्थात् प्रवचन सभामे प्रवेश किया। सवने उनको नमस्कार किया। पहले वे तपकल्याणकके समय गिरनार पर्वत पर आये थे। अव दूसरी वार वहाँ आये। इसी पर्वतसे वे मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस

कारण यह पर्वत अतिपवित्र हो गया, महातीर्थ बन गया। यहाँ ही नेमिनाथ जिनेन्द्र विराज रहे थे। इसकी चप्पा-चप्पा भूमि और रजका प्रत्येक कण अतिपवित्र हो गये।

फिर प्रभु का समवसरण वनाया गया। यह समवसरण तीन जगनके प्राणियोको शरण देता है।

द्वारिकाके स्त्री-पुरुष सभी यदुवशी और भोजवशी आदि गिरनार पर्वतपर वलभद्र नारायणके साथ चढे। बाहर-भीतरसे समवसरणको देखकर उन्हे वडा आश्चर्य हुआ। समवसरणकी शोभा स्वर्गकी शोभाको मात करती थी। इसकी भूमि इन्द्रनीलमणिमयी काचके समान निर्मल थी। इसमे अनेक राजमार्ग होते थे। इसमे देव मनुष्य और पशु-पक्षी सभी समान रूपसे धर्मप्रवचन सुनते थे। इसमे मान स्तम्भ होते थे। सरोवर भी थे। इसके द्वारो पर तोरण, छत्र, चमर, कलश, झारी और दर्पण आदि आठ मगलद्रव्य रखे होते है। उसमे नाट्यशालाओमे देवागनाए नृत्य करती थी। जगह-जगह ध्वाजाए लगी हुई थी। कलशोमे शुद्ध जल होता था और वे कमलोसे ढके हुए थे। समवसरण मे स्थान-स्थानपर स्तूप बने हुए थे।

सुर-नर सभीने वहाँ जाकर भगवान् नेमिनाथको नमस्कार करके उनकी इस प्रकार स्तुति की, "हे महादेव! तुम विजयरूप हो। हे महेश्वर! तुम महामोहको जीननेवाले हो। हे महावाहु! आपके समान जीत का स्वरूप और कोई नही है। हे विशाल नेत्र! आप सब कुछ देखनेवाले और सर्वज्ञ हो तथा आप अद्वितीय हो।"

इसी समय राजा वरदत्तने मुनिके व्रतग्रहण किये और वह भगवान नेमिनाथका मुख्य गणधर बन गया। वहाँ पर बहुतसे मुनि अपने-अपने स्थान पर बैठे प्रत्यक्ष धर्मके स्वरूपके समान थे।

एक सभामे राजमती आर्यकाओके गरणकी प्रधानाके रूपमे विराजमान थी। छह हजार रानियोने उसके साथ दीक्षा ली थी। बहुतसी श्राविकाए भी वहाँ थी। राजमती लज्जा, क्षमा, और शान्ति आदि गुणोसे सुशोभित थी, मानो धर्मकी प्ररूपणा ही थी। धर्मका स्वरूप धारण किये विराज रही थी।। भगवान् समस्त पाप-कर्मोके नाशक हैं। उनकी भक्तिसे पाप दूर हो जाते है।

वारहवी सभामे सिह, गज, मृग, वृषभादि थलचर और हस तथा गरुडादि नभचर अनेक जातिके तिर्यंच बैठे थे। भगवानके अतिशयसे सबकी अविद्या मिट गयी और उनके पारस्परिक वैर-भाव विलीन हो गये।

वहुतसे पुरुष मुनि हो गये, बहुत से पुरुषोने श्रावकके व्रत ग्रहण किये। इसी प्रकार बहुत-सी स्त्रियोने आर्यिकाकी दीक्षा ली और बहुतोने श्राविका के व्रत ग्रहण किये।

इस प्रकार वारह सभाओसे मण्डित समवसरणमे तीर्थकर नेमिनाथ सिहासन पर विराजमान थे। उनकी दिव्यध्वनि समस्त जीवोको अभय देनेवाली थी।

देव दूसरे देवोको बुला रहे थे और कह रहे थे कि ये भगवान् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, समस्त गुणोका पुज और जीवोका कल्याण करनेवाले हैं। जो अपना कल्याण करना चाहते हो, उन्हे यहाँ आकर नेमिनाथको पूजना चाहिये। सभी आकर भक्तिपूर्वक समव-सरणमे बैठने लगे। इतना ही नही, जो कुकर्मी, पापी, नीच, विक-लागी तथा विकलइन्द्रिय प्राणी थे, वे भी वाहर से ही भगवानकी वन्दना करने लगे। नमस्कार, 'जय जय' और स्तुतिसे समस्त समवसरण गूंज रहा था। कुछ ईश्वर ध्यानमे निमग्न थे। इस प्रकार सतोका समूह वहाँ विराजमान था।

भगवान नेमिनाथके प्रभावसे वहाँ उपस्थित सुर-नरों आदिका भय, द्वेप, विपयाभिलाषा और रति आदि विकार दूर हो गये। न वहाँ छीक, खासी, जम्हाई और डकार आदि विकार थे, न निद्रा, तन्द्रा, क्लेश, भूख और प्यास आदि किसीको संताते थे। समवसरणमे सब जीवोंका कल्याण-ही-कल्याण था, किसीका अकल्याण नही था। समवसरणकी भूमि अद्‌भुत थी। यह भगवानकी बाह्य विभूतिकी बात है, उनकी अंतरंगकी विभूतिका वर्णन कौन कर सकता है।



: ४० :

नेमि प्रवचन

समवसरण नित्य उत्सवो और अनन्त कल्याणोंका स्थान होता है। धर्म सुननेके इच्छुक श्रोता वहाँ हाथ जोडे बैठे थे। वरदत्त गणधरने तीर्थंकर नेमिनाथको नमस्कार करके पूछा, "भगवन्! जीवोके हितकी क्या बात है? उनकी भलाई किस बातमे है?"

गणधरके निवेदन पर उनकी जो दिव्य ध्वनि हुई, वह चारों दिशाओमे सुनाई देती थी, सभी उसे समझते थे, चार वर्णों और सघोको मार्ग दिखानेवाली तथा आश्रय देनेवाली थी। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थों रूप चार फलोको देनेवाली थी। शास्त्रो अथवा समस्त विद्याओ के चार भाग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और प्रथमानुयोग कहे गये है। द्रव्यानुयोग मे जीव तथा अजीव आदि का वर्णन होता है. करणानुयोग मे तीन लोक भूगोल आदि का वर्णन होता है, चरणानुयोग मे मुनियो तथा गृहस्थोके आचरण आदि का वर्णन होता है और प्रथमानुयोग मे पुराण, चरित्र तथा कथा साहित्य होता है। भगवानकी दिव्यध्वनि इन चारो अनुयोगोकी जननी मानी जाती है। यह वाणी प्राणियो-की चतुर्गतिके चक्करको समाप्त करके मोक्ष पद दिलानेवाली होती है। इसके अनेक रूप होते है। इसमे निश्चय नय, और व्यवहार नय, रत्नत्रय, चार अनुयोगो, चार कषायोके नाशके उपायो, पच-परमेष्ठीकी भक्ति, छह द्रव्यो, सात व्यसनो और सप्त अगोका वर्णन,

आठ कर्मोंके नाश, आठ गुणोका वर्णन, नव नयो और दस लक्षण धर्म आदि का वर्णन होता है। इस जिन वाणीकी महिमा जिनेश्वर देव ही जानते है, दूसरा नही। यह जिनवाणी जगतका उद्धार करने के लिए जिनेश्वरके मुखसे प्रकट हुई।

यह जिनवाणी जीवोके हितको बतानेवाली और अहितको दूर करनेवाली होती है। यह जीवोको उनके यथायोग्य धर्ममे प्रवृत्त करती है और अशुभसे हटाकर शुभमे प्रवृत्त करती है। यह जीवो के सचित कर्मोंको शिथिल करनेवाली या पूर्ण रूपसे नष्ट करके मोक्षपद दिलानेवाली है।

इस वाणीके अक्षर मधुर, स्निग्ध, गम्भीर, दिव्य, उदात्त और स्पष्ट होते है, अनन्य रूप है, एक है और अतिशय निर्मल होती है। केवल ज्ञानियो द्वारा इसका व्याख्यान होता है, वही इसके वक्ता है और सब श्रोता हैं।

भगवान् नेमिनाथने अपने प्रवचन मे कहा —

"यह जीव स्वय सब कर्म करता है और वही उसका फल भोगता है। जीव स्वय ससारमे भ्रमण करता है और स्वय उससे मुक्त होता है। अविद्या तथा रागसे सक्लिष्ट होता हुआ ससार सागरमें बार-बार घूमता है और विद्या तथा वैराग्यसे शुद्ध होकर पूर्ण स्वभावमें स्थित होकर सिद्ध हो जाता है। अध्यात्म-ज्ञान दीपक के समान मोक्षमार्गको दिखानेवाला है। ससारके जीव दो प्रकार के होते हैं, भव्य और अभव्य। भव्य जीव मोक्ष प्राप्त करते है और अभव्य जीव मोक्ष प्राप्त नही कर सकते।

"मोक्षका उपाय आत्मध्यान और सूत्रका अध्ययन है। सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इसका मार्ग है। इनको रत्नत्रय कहते हैं। जीवादि सात तत्त्वोका विश्वास सम्यग्दर्शन, इनका ज्ञान सम्यक् ज्ञान और अशुभकी निवृत्ति सम्यक् चारित्र कहलाता है।

जीव जन्म-मरणसे रहित है। आत्मा ज्ञान आदि अनन्त गुणमात्र है। यह जीव आप ज्ञाता है, द्रष्टा है, कर्ता और भोक्ता है और कर्मो-का त्याग करनेवाला है। इसके प्रदेश फैल कर लोकके समान बडे हो सकते हैं और सकुचित होकर शरीरके बराबर बन जाते हैं। इसमे न कोई वर्ण है, न रस है, न गध है, और न स्पर्श है। ये गुण तो पुद्गलमे होते हैं, आत्मामे नही। आत्मा अमूर्ति स्वरूप है। यह शरीरसे भिन्न है।

"अजीवके पाँच भेद पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं। द्रव्य या पुद्गलके अनेक रूप होते है। इसके नित्य स्वरूपके वर्णनको द्रव्यार्थिक नय कहते है और अनित्य स्वरूपके वर्णनको पर्यायार्थिक नय कहते है। जैसे स्वर्णका वर्णन और उससे बने कडे आदि का वर्णन। वस्तुकी एकता द्रव्य है और अनेकता पर्याय है। पुद्गलके छोटे-छोटे भागको अणु कहते है और उसके फिर भाग नही हो सकते। अणुओके समूहको स्कध कहते है। धर्म-का लक्षण गति है, यह चलनेमे सहायक होता है। अधर्मका लक्षण स्थिति है, यह ठहरानेमे सहायता करता है। आकाश स्थान देता है और काल वर्तता है। कालके दो भेद निश्चय काल और व्यवहार काल है। कालाणु द्रव्यको निश्चय काल कहते हैं और समय आदि जैसे घडी, घटा, दिन और मास आदि को व्यवहार काल कहते है।

"जीव, अजीव, आश्रव, बाध, सवर, निर्जरा और मोक्ष सात तत्त्व हैं। मन, वचन और कायाकी प्रवृत्तियोके द्वारा कर्मके आने को आश्रव कहते। इसके दो भेद पुण्याश्रव और पापाश्रव है, अर्थात् अच्छे या शुभ कर्मोका आना और बुरे कर्मोका आना। क्रोध, मान, माया और लोभ चार कषायोकी तीव्रता, मध्यता या मदताके अनु-सार कर्मोका आश्रव भी तीव्र, मध्य या मन्द होता है। जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है। कषाय कर्मोके आने का कारण है और कर्मोका आश्रव या आना कार्य है। आश्रवके अनेक भेद हैं। किसी

को दु ख पीडा मत दो, सब पर दया करो । किसी की निन्दा या स्व-प्रशसा न करो । अपने को छोटा समझना और गर्व न करना और दूसरोके गुणोकी प्रशसा करना अच्छा है । जो अशुभ काम है वे अशुभ कर्मोको लाते है और जो शुभ काम है उनसे शुभ काम आते है ।

"हिसा, झूठ, चोरी, कुशील या अब्रह्मचर्य और परिग्रह ये पाँच पाप है । इनको छोडना अर्थात् उनसे निवृत्ति होना व्रत कहलाता है । इन पापोका सर्वथा त्याग करना महाव्रत कहलाता है और इसे साधु ही पालते है । इनका कुछ त्याग अणुव्रत कहलाता है और वह गृहस्थोके पालन के लिए है । व्रतीके मनमे कोई आकुलता शल्य न होनी चाहिये ।

"हमे सब जीवो के प्रति मैत्री भाव, गुणवानोके प्रति प्रमोद या हर्षका भाव, दु खी प्राणियोके प्रति दयाभाव और दुष्ट प्राणियो-के प्रति मध्यस्थताका भाव रखना चाहिए । यह चार भावनाएँ धर्मध्यानका मूल मानी गयी है ।

कषायसे कलुषित प्राणी हर क्षण कर्मके योग्य पुद्गलोको ग्रहण करता रहता है, अपनी ओर खीचता रहता है । यही कर्म बन्ध कहलाता है । यह बन्ध अनेक प्रकार का होता है । भविष्यमे कर्मों-का आना रुक जाना सवर कहलाता है । इसके लिए अनेक प्रयत्न करने पडते है, अनेक शुभ भावनाए करनी होती है और कष्टो या परिषहोको सहना होता है । इसमे आगे आनेवाले कर्म आने बन्द हो जाते है । पर सचित कर्मोको तप आदिसे काटना निर्जरा कह-लाता है । कर्मोकी निर्जरा स्वय भी होती रहती है और प्रयत्नपूर्वक भी की जाती है । यह ऐसे ही है, जैसे आम आदि फलोका अपने आप पकना और गिर जाना या कृत्रिम साधनो से उन्हे शीघ्र पकाना । साधु लोग अपने तप-संयम आदि से सचित कर्मोको शीघ्र नष्ट कर देते है । सब कर्मोसे छुटकारा पाना, आवागमन का अन्त कर देना,

मोक्ष है । मोक्ष प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है । यही प्राणियोका ध्येय होना चाहिये ।

"गृहस्थीको सदा श्रद्धापूर्वक अपनी शक्तिको बिना छिपाये दान करना चाहिये । मुनियो, आर्यिकाओ, श्रावको और श्राविकाओं और अव्रती सम्यक्त्व दृष्टियोको भक्ति तथा विनयपूर्वक दान देना चाहिये । और दूसरे सव जीवोको दयाभावसे दान देना चाहिये । दानके चार भेद आहार दान, शास्त्र दान, औपधि दान और अभयदान है । सभी दान समान रूपसे आवश्यक हैं । किसी व्यक्तिको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसे वैसा ही दान देना चाहिये । दाताका मन उज्ज्वल, निर्लोभ, नि स्वार्थ और कोमल होना चाहिए । दान परिग्रह कम करनेका बडा साधन है । गृहस्थके छह दैनिक कर्तव्योमे दानका वडा महत्त्व है ।"

भगवान् नेमिनाथके धर्मोपदेशको सुनकर श्रोताओने हाथ जोड कर उन्हे नमस्कार किया । श्रोताओमे से कुछने मुनि दीक्षा ली और बहुतोने श्रावकके व्रत ग्रहण किये । मुनि दीक्षा लेनेवाले व्यक्तियोमे बहुतसे राजा थे । वहुत सी रानियोने आर्यिकाके व्रत ग्रहण किये । वलभद्रकी माता रोहिणी आदि अनेक रानियोने भी आर्यिका व्रत ग्रहण किये ।

प्रवचनके पश्चात् सभी श्रोता जिनेश्वरको प्रणाम करके अपने-अपने स्थान लौट गये ।



: ४१ :

भगवद् विहार

महापुरुष सदा स्वपरहित के काम करते है। केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् गिरनार पर्वतपर धर्म प्रवचन करके तीर्थंकर नेमिनाथने जगतके जीवो को ससार समुद्रसे पार करनेके लिए, उनका उद्धार करने के लिए, गिरनारसे नीचे उतरकर विहार किया। मार्गमे स्थान-स्थान हर मगलाचार हो रहे थे। सभीके हृदयोमे आनन्द, सुख और हर्षके भाव उमड रहे थे। तीन लोकके जीव हर्षित हो रहे थे, क्योकि अब भगवान नेमिनाथ बाईसवे तीर्थंकर विश्वके कल्याणके लिए विहारके लिए जा रहे थे। आगे-आगे धर्म चक्र चल रहा था। सब प्रकारके वाजोके शब्दों, मगल शब्दों और गायनोसे धरती आकाश शब्दायमान हो रहे थे, गूंज रहे थे। स्त्री-पुरुष बडी श्रद्धा-भक्तिसे 'भगवान् नेमिनाथकी जय' के नारे लगा रहे थे।

मार्गमे कही भगवत कथा हो रही थी, तो कही आनन्द रूप हास्य हो रहा था और कही नाच-गाने हो रहे थे। कही-कही भक्त लोग मगल स्तोत्रोसे भगवान्की स्तुति कर रहे थे, तो कही 'जय जय' शब्द कर रहे थे। कही भक्त लोग कर अजुली जोडकर नमस्कार कर रहे थे। सभी भगवान्की सेवामे रत थे। ऐसा लगता था, मानो पृथ्वी भगवान्की पूजा कर रही हो। उस समय प्रसन्नता से भरा समुद्र, रत्नरूप वस्तियोमे सुशोभित ऊपर उठे हुए तरगरूपी हाथोसे अजुली बाधकर वेला रूपी मस्तकसे भगवान्को नमस्कार कर रहा था।

मार्गमे देश-देशके राजा प्रभुको नमस्कार कर रहे थे । स्थान-स्थान पर करबद्ध स्त्री-पुरुष यह प्रार्थना कर रहे थे, "हे देव ! कृपा करो, जगतको जन्म-मरणके चक्रसे निकालो । हे नाथ ! आपकी जय हो । हे ज्येष्ठ ! आपकी जय हो । हे देव ! आपकी जय हो । हे समीचीन धर्मके धारक ! हे सबके शरणभूत लक्ष्मीके धारक ! आपकी जय हो। इस प्रकार 'जय जयकार' की ध्वनिके बीच जिनवर जीवो पर दया करके अद्भुत विभूतिसे विहार कर रहे थे । लोकके कल्याणके लिए विश्वेश्वर विहार कर रहे थे और उनके आगे-आगे देश-देशके राजा चल रहे थे । जैसे पतिव्रता स्त्री पतिकी अनुगामिनी होकर प्रशसनीया होती है, उसी प्रकार महाविभूति रूपी स्त्री सर्वज्ञकी अनुगामिनी बनकर शोभा प्राप्त कर रही थी । भगवान्के समवसरणकी विभूति अति सुन्दर और प्रशसनीय थी । वायुके मन्द-मन्द झोकोसे भगवान्का मार्ग साफ हो रहा था । कौंदती हुई बिजलीकी चमकसे समस्त दिशाओके अग्रभाग प्रकाशित हो रहे थे और मेघ सुगन्धित जलसे मार्ग पर छिडकाव कर रहे थे । उनके आगे-आगे सुगन्धिदायक धूपके घडे लिये अग्नि कुमार देव चल रहे थे । धूपकी सुगन्ध लोकके अन्त तक फैल रही थी। तोरणो से समस्त मार्ग सुशोभित हो रहा था । तोरणोकी मध्य भूमिमे जो ऊचे-ऊचे केलेके वृक्ष तथा ध्वजाए लगी हुई थी, उनसे आच्छादित मार्ग इतनी सघन छायासे युक्त था कि वह सूर्यकी छविको भी रोकने लगा था । वनके निवासियोने वनकी मजरियोके समूहसे पीला पुष्प मण्डप तैयार किया था, जो उनके अपने पुण्यके समूहके समान दीख रहा था । ऐसे मार्गमे दयाकी मूर्ति, अहितका दमन करनेवाले स्वय ईश एव देदीप्यमान श्री नेमिनाथ पुष्प मण्डपमे समस्त जीवोके हितके लिए विहार कर रहे थे । प्रभुके पीछे भामडल सुशोभित हो रहा था और अति निर्मल तीन छत्र उनके ऊपर ढल रहे थे । प्रभुके शरीरकी ज्योति और तेजका प्रतिविम्ब मण्डल रूप हो गया था । जिस धर्म चक्रने सूर्यको जीत लिया है और जिसमे एक

हजार धाराए है, उसकी कातिसे आकाशमे प्रकाश हो रहा था । ऐसा धर्म चक्र उनके आगे चल रहा था । तीन लोकके प्रभु पृथ्वीपर विहार कर रहे थे और सभी उन्हे नमस्कार कर रहे थे ।

प्रभुके अहिसामयी महान् व्यक्तित्वके प्रभावसे विहारमे जो भी उनके सम्पर्कमे आये, उनमे परस्परमे कोई वैर-भाव न रहा, कोई प्राणी किसी दूसरे प्राणीकी हिसा नही करता था । सभी सुखसे समय व्यतीत कर रहे थे । सर्प तथा नेवले और सिह तथा मृगादि सभी जाति विरोधी जीव निर्वैर हो गये थे । भगवन्तके प्रभावसे जीवो की दुर्बुद्धि दूर हो गयी । जहाँ-जहाँ भगवान् जाते थे, वहाँ सभी दिशाओके राजा पूजाकी सामग्री लेकर पूजनेके लिए आते थे । सभी नरेश्वर उनके साथ थे । सभी जातियोके देव भी विहारमे साथ थे । जिस-जिस स्थानपर भगवान् विहार करते थे, वहाँ की पृथ्वीका कण-कण पवित्र हो जाता था । सब जगह शुभ-ही-शुभ था ।

प्रभु नेमिनाथ समस्त जीवोको धर्मका प्रकाश देने और लोगोके कल्याणके लिए विहार कर रहे थे । उनकी कांति ने देवोकी काति-को भी मात कर दिया । कई वर्ष उन्होने विहार किया । उन्होने अनेक देशो—जैसे सोरठ, पाञ्चाल, मगध, अग और वग आदि मे विहार किया और आर्य खण्डके जीवोको प्रबोधित किया । उनके उपदेशसे बहुतसे मन्द बुद्धि जीव प्रवीण हो गये । हिसक जीवोने हिसा छोडी । जीवोके चिन्ता तथा खेद आदि समाप्त हो गये । भगवान्‌ने राजा और जनता सबको सम्बोधित किया, धर्मोपदेश दिया । उनके उप-देश के प्रभावसे बहुतसे स्त्री-पुरुष जिन धर्मावलम्बी बन गये, बहुत से राजा मुनि बन गये और बहुतोने श्रावक धर्म अपनाया । बहुतसी स्त्रियाँ आर्यिकाएँ बन गयी और बहुतसी स्त्रियोने श्राविका-धर्म अपनाया । इतना ही नही, उनके उपदेशसे बहुतसे शूद्र भी श्रावक-श्राविकाए बन गये । इस प्रकार प्रभुने समस्त जीवोको

सम्बोधित किया। उनके उपदेशो का प्रभाव पशु-पक्षियोपर भी पडा। उन्होने भी अपनी हिंसक वृत्ति त्याग दी।

विहार करते-करते नेमीश्वर मलय नामके देशमे आये और उसके भद्दुलपुर नगरके सहस्राभवनमे विराजमान हो गये। वहाँ भी पहले के समान समवसरणकी रचना की गयी और उसमे भगवान् नेमिनाथ अपने गणधरो सहित विराजमान हो गये। उस नगरका राजा पौण्ड्र नगरवासियोके साथ समवसरणमे आया और भगवान्को नमस्कार करके सभामे बैठ गया। देवकीके जो छह पुत्र सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानीके यहाँ पले थे और उनके घरमे रहते थे, वे भी समवसरणमे आये। उनके साथ उनकी पत्निया भी थी, जो रूप लावण्य आदि गुणोमे इन्द्राणियोसे भी बढ-चढ कर थी। वे छहो भाई अपने-अपने रथोसे उतर कर समवसरणमे गये। वे भगवान्को नमस्कार करके और उनकी स्तुति करके राजाके साथ सभामे बैठ गये।

उस समय तीर्थंकर नेमिनाथने सभामे सम्यग्दर्शन से सुशोभित श्रावक धर्म और कर्म नाशक मुनि धर्मका उपदेश दिया। इन छह भाइयोने भगवान्से धर्मामृतका पान कर तत्त्वके वास्तविक रूपको समझ लिया। वे ससारसे विरक्त हो गये और उन्होने अपने कुटुम्बी जनोको अपने इरादेकी सूचना देकर जिनेन्द्र भगवान्के चरणोके समीप निर्ग्रन्थ होकर मोक्ष लक्ष्मीको प्रदान करनेवाली मुनि दीक्षा एक साथ ली। उन राजकुमारोने द्वादशाग श्रुतज्ञान अभ्यास करके घोर तप किया। ये छहो मुनि दो-दो दिनके उपवास, पारणाए, प्रात. दुपहर और सायकालके योग, शयन और आसन आदि क्रियाए साथ-साथ करते थे। उत्कृष्ट तपको तपनेवाले उन मुनियोके शरीर-की काति पहले से भी अधिक बढ गई। तीर्थंकर भगवान्के चरणो-की सेवामे रत ये छहो मुनि अपने बाह्यन्तर तपमे एक-दूसरेकी उपमा थे।

इसके पश्चात् महाविभूतिके साथ विहार करके श्री नेमिनाथ मुनियो सहित गिरनार पर्वतपर वापिस आये और अपने समवसरण-से उसे सुशोभित करने लगे। श्री कृष्ण आदि यादव और द्वारिकाके नागरिक उनकी सेवामे रत थे। श्रुतज्ञान सागरकी तहको देखने-वाले वरदत्त आदि ग्यारह गणधर भी समवसरणमे यथास्थान विराजमान थे। वहा बहुतसे पूर्वधारी, शिक्षक अवधि-ज्ञानी, केवल ज्ञानी, विपुलमति मन पर्य ज्ञानी, अनेक वादी और बहुतसे विक्रिया ऋद्धिके धारक मुनि थे। आर्यिकाओकी प्रधाना राजमती भी अनेक आर्यिकाओ और श्राविकाओके साथ समवसरणमे विराजमान थी। वहाँ नेमिनाथ तीर्थकर धर्मरूपी अमृतकी वर्षा करके प्यासे भव्य जीव रूपी चातकोको तृप्त कर रहे थे।

अपरिमित अभ्युदलवाले नेमिनाथ जिनेन्द्र रूपी सूर्यसे गिरनार पर्वतपर विद्वद् जनरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये।



: ४२ :

पटरानियों के भव वर्णन

धर्म कथाकी समाप्तिपर विनयवन्ती देवकीने हाथ जोडकर भगवान्को नमस्कार करके पूछा, "हे भगवन् ! आज महा मनोहर दिगम्बर मुनियोका युगल मेरे भवनमे तीन बार आया और उन्होने तीन बार आहार लिया । हे प्रभो ! जब मुनि एक वार ही आहार लेते है, तब उन्होने एक ही घरमे तीन बार क्यो प्रवेश किया और आहार लिया ? यह भी हो सकता कि वह तीन मुनियोका युगल हो और अत्यन्त सदृश आकृति व रूप होने से मैने उन्हे भ्रातिवश एक ही युगल समझ लिया हो । फिर उन्हे देखकर मेरे मनमे उनके प्रति ऐसा मोह क्यो उपजा, मानो वे मेरे पुत्र हो । यह क्या वात थी ?"

श्री भगवान् नेमिताथने देवकीको उत्तर दिया, "ये छहो मुनि तेरे पुत्र है और कृष्णसे पहले तूने इन्हे युगल रूपमे जन्म दिया था । कसके कोपसे उनकी रक्षा करनेके लिए वसुदेव उन्हे भद्रलपुरके सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानीके यहाँ पालन-पोषणके लिए छोड आये । उन्होने उनको पुत्रवत् पाला । मेरे धर्मोपदेशको सुनकर उन्होने मुझसे मुनि दीक्षा ले ली। ये कर्मोको नष्ट करके इसी जन्मसे मोक्ष जायेगे । ये धर्मात्मा होनेके साथ-साथ तेरे पुत्र भी है, इसलिए इनको देखते ही तेरे मनमे स्नेह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था ।"

नेमिनाथके उत्तरसे सन्तुष्ट होकर देवकीने उन छहो पुत्र रूप मुनियों-को नमस्कार किया। कृष्ण आदि दूसरे यादवोने भी उन्हे नमस्कार किया।

फिर कृष्ण की पटरानी सत्यभामाने प्रभुको प्रणाम करके अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा। केवलज्ञानी तीर्थंकर नेमिनाथ यादवोके सामने उनके पूर्व भव वतलाने लगे :—

"मुण्डगलायन नामका एक ब्राह्मण भद्रलपुर नगरमे रहता था। उसके पिताका नाम मरीचि और माताका कपिला था। वह काव्य-रचनामे निपुण था और अपने विद्या-मदमे गर्वित था। पुष्पदन्त तीर्थंकरके तीर्थमे धर्मका व्युच्छेद हो जाने से उसने गाय, कन्या और स्वर्ण दानकी प्रवृत्ति चलाई। मुण्डगलायन पडितकी पहुँच राजपुरुषो तक हो गयी और राजा प्रजा सभी उसके चक्करमे फस गये। पापाचारमे प्रवृत्त होने के कारण वह मरकर सातवे नर्कमे गया। इधर-उधर जन्मोके पश्चात् उसने मनुष्य-जन्म पाया और भील जाति मे जन्म लिया। उसका नाम पर्वतक था और उसकी भार्याका नाम वल्लरी था। उसी पर्वतपर चारण ऋद्धि धारी दो मुनि श्रीधर और धर्म आये। उनके दर्शनसे उस भीलके परिणामो-भावों-मे कुछ शान्ति आई और उसने मुनियोके कहने से उपवास किये। धर्म-पालनका यह फल हुआ कि वह मरकर विजयार्द्ध पर्वतकी अलका नगरीमे महाबल विद्याधरकी पत्नी ज्योतिमालासे पुत्र जन्मा। उसका नाम हरिवाहन रखा गया। उसका एक बडा भाई शतवली था। राजा महाबलने दोनो भाइयोको राज सौप कर मुनि श्रीवरसे दीक्षा ले ली और मोक्ष गया। किसी कारण से दोनों भाइयोमे झगडा हो गया और बडे भाईने हरिवाहनको देशमे निकाल दिया। हरिवाहन भगली देशके अम्बुदावर्त पर्वतपर ठहर गया। तभी वहां चारण ऋद्धिधारी दो मुनि श्री धर्म और अनन्तवीर्य आये। हरिवाहनने उनसे मुनि-दीक्षा ले ली और मरकर स्वर्ग गया। स्वर्गके सुखोंका

भोगोपभोग करते समय उसके परिणाम सक्लेशमय हो गये । स्वर्गसे उसने राजा सुकेतुकी रानी स्वयप्रभाके गर्भसे लडकीका जन्म लिया और वह लडकी तू सत्यभामा ही थी । तू श्री कृष्णकी धर्म पत्नी बनी । अब तू तप करके स्वर्ग जायेगी और वहाँसे भूलोकमे जन्म लेकर मोक्ष जायगी ।"

सत्यभामा निकट भविष्यमे मोक्ष जानेकी बात सुनकर बडी हर्षित हुई । उसने भगवान्को नमस्कार किया । इसके पश्चात् रुक्मणीने भगवान् नेमिनाथसे अपने पूर्व भव पूछे ।

श्री नेमिनाथने उसे बताया —

"मगध देशमे एक लक्ष्मीग्राम नगर था । वहा मोमदेव ब्राह्मण रहता था । तू उस ब्राह्मणकी पत्नी लक्ष्मीमती थी । तुझे अपने रूपका अभिमान था और तू महा मूढ बन कर पूज्य पुरुषोका अपमान करती थी । एक दिन तू शृगार करके तरह-तरहके वस्त्राभूषण पहन कर चन्द्रमा समान मणियोके दर्पणमे अपना चेहरा देख रही थी । सयोगवश उसी समय वहाँ तेरे घर तपसे महा क्षीण शरीरवाले समाधिगुप्त मुनि आहार के लिए आये । लक्ष्मीमतीने ग्लानिसे उस मुनिकी निन्दा की । मुनिकी निन्दा के पापके फलस्वरूप सात दिनमे उसे कोढ हो गया और वह आगमे प्रवेश करके जल कर मर गयी । दु ख और चिन्ताके विचारोके कारण वह मर कर गधी हुई और उस पर नमक लादा जाने लगा । मरकर वह राजगृहमे सूरी जन्मी। उस बेचारी को भी लोगोने मार दिया । मर कर वह गायोके बाडेमे कुतियाकी योनिमे जन्मी । एक दिन बाडेमे आग लग गयी और वह कुतिया उस आगमे जल कर मर गयी और उस कुतियाका जीव मडूक ग्राममे त्रिपद धीवरकी मण्डूकी भार्याके शतिगंधिका पुत्री हुआ । उसके पापके उदयसे मा मर गयी और उसकी दादीने उसका पालन-पोषण किया । उसके शरीरसे इतनी बुरी दुर्गन्ध आती थी कि कोई उसे अपने यहाँ रखनेको तैयार न था । इसलिए वह

लड़की एक नदीके किनारे रहने लगी। एक दिन नदीके किनारे उपवनमे समाधिगुप्त मुनि आकर विराजे। रातके समय बहुत ठण्ड पड रही थी, तब लडकीने दया करके मुनिको जालसे ढक दिया। मुनि महा दयावान् थे। उन्होने उस लडकीको धर्मोपदेश दिया तथा उसने उसके पूर्वजन्मोकी वात सुनायी। लडकीने श्राविकाका धर्म धारण कर लिया। तव यही लडकी उपारक नगरमे गयी और वहाँ उसे आर्यिकाओकी सगति मिली। उनके साथ-साथ वह भी राजगृही नगरी गयी। वहाँ उस लडकीने आचाम्ल वर्द्धन नामका तप किया। राजगृही तो मुनियोका निर्वाण क्षेत्र है। वहाँ उसने सिद्ध शिलाकी वन्दना करके नील गुफामे सन्यास धारण किया। वह महासती मर कर देवी हुई। वहाँ से फिर कुण्डनपुरमे राजा भीष्मकी रानी श्री-मतीके तू रुक्मणी पुत्री हुई और वासुदेवकी पटरानी हुई। अब तू साध्वी होकर देव योनिमे जन्म लेगी। फिर मनुष्य योनिमे जन्म लेकर मुनि दीक्षा लेगी और मोक्ष जायगी।" रुक्मणीके पश्चात् वासुदेवकी तीसरी पटरानी जाम्ववतीने श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रसे अपने पूर्व भव पूछे। ससारसे भयभीत सव प्राणियोके सामने नेमिनाथ-जीने उसके पूर्व जन्मोका हाल इस प्रकार वताया :—

"जम्बूद्वीपके पुष्कलावती देशमे वीतशोका नगरी थी। उसमे देवल नामका एक वडा गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम देवमती और पुत्रीका नाम यशस्वनी था। इस लडकीका विवाह सुमति से हुआ। पतिके निधन पर वह वडी दुखी हुई। तव एक गृहस्थी जिनदासने उसे वहुत समझाया, सान्त्वना दी, पर अज्ञानके कारण उसे विशेष ज्ञान तो हुआ नही पर उसने दान और उपवास किये। फल यह हुआ कि वह मर कर नन्दन वनमे अन्तर नामके देवकी मेरुनन्दन देवी हुई। देवयोनिके सुख भोग कर उसने ससारमे वहुत जन्म लिये। फिर वह जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमे विजयपुर नगरमे राजा वन्धुसेनकी पत्नी बुद्धिमती के उदरसे वन्धुयशा पुत्री

जन्मी । कुमारी अवस्थामे ही उसने श्रीमती आर्यिकाके सत्सगसे जिन-धर्मकी आराधना की और व्रत पालना करके मर कर कुवेरकी स्वय-प्रभा स्त्री हुई । फिर जम्बूद्वीपकी पुण्डरीकरणी नगरीमे वज्रमुष्टिकी सुभद्रा पत्नीसे सुमति नामकी पुत्री हुई । तव उसने सुन्दरी नामकी आर्यिकासे धर्म सुनकर रत्नावली नामका तप किया और समाधि-मरण करके स्वर्गमे गयी । वहाँ से चय कर भरतक्षेत्रके विजयार्द्धकी दक्षिरण श्रेणीमे जाम्बव नगरके विद्याधर राजा जाम्बवकी जाम्बवती रानीसे तू जाम्बवती पुत्री हुई । तेरा विवाह राजा कृष्णसे हुआ । इस जन्मसे तू तपस्विनी होकर देव बनेगी । फिर तू राजपुत्र होगी और उसके बाद मोक्ष जायगी ।"

भगवान् नेमिनाथसे अपने पूर्व जन्मकी और भविष्यमे मोक्ष जानेकी वात सुन कर रानीके सव सशय दूर हो गये । वह बहुत हर्षित हुई । उसने जिनेन्द्रदेवको प्रणाम किया और मनमे सोचा, "मैं ससारसे पार हो गयी ।"

इसके पश्चात् श्री कृष्णकी चौथी रानी सुसीमाने अपने पूर्व भवोका वृत्तान्त पूछा और श्री नेमिनाथने अपनी दिव्यध्वनिसे उसे वताया —

"धातुकी खण्ड द्वीपमे मगलावती देशमे रत्नसचय नगर था । वहाँ का राजा विश्वसेन और उसकी रानी अनुन्धरी थी । राजाके मत्रीका नाम सुमति था, जो परम श्रावक था । अयोध्याके राजा पद्मसेनने युद्धमे राजा विश्वसेनको मार दिया । इससे रानी अनुन्धरी वहुत दुःखी हुई । सुमति मत्रीने उसे धर्मका उपदेश दिया, पर वह सम्यक्त्व न प्राप्त कर सकी । केवल वाह्य सुभक्ति कर सकी । फल? वह मर कर विजयद्वारके अधिष्ठाता विजय देवकी ज्वलनवेगा नामकी देवी हुई । फिर चिरकाल ससारमे जन्म-मरणमे भ्रमण करके जम्बू-द्वीपमे सीता नदीके दक्षिण तटपर शालिग्राम रमणीक गाव मे महा

धनवान यक्षल गृहस्थकी देवसेना स्त्रीके उदरसे यक्ष देवी पुत्री हुई। उसका यह नाम इसलिए रखा गया, क्योकि वह यक्षोकी आराधना करती थी। वह यक्षोकी पूजाके लिए वनमे गयी थी। वहाँ उसने धर्मसेन गुरुसे धर्मोपदेश सुना। उस लडकीने बडी भक्तिसे उस मुनिको भोजन कराया और पुण्यबन्ध किया। एक दिन वह यक्षदेवी अपनी सखियोके साथ क्रीडा करने विमल नामक पर्वतपर गयी थी। असमय अति वर्षाके कारण वह एक गुफामे घुस गयी। वहाँ पहले ही से शेर बैठा था। देखते ही शेरने यक्षदेवीको खा लिया। मर कर उस यक्षदेवीका जीव दो जन्मोके पश्चात् जम्बूद्वीपके विदेहमे पुष्कलावती देशमे वीतशोक नगरमे अशोक राजाकी श्रीमती रानीसे श्रीकान्ता पुत्री हुई। श्रीकान्ताने कुमारी अवस्थामे ही जिनदत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर रत्नावली नामका तप किया और मर कर स्वर्गमे देवी हुई। वहा से चय कर सुराष्ट्र देशके गिरि नगरमे राजा राष्ट्रवर्धनकी सुज्येष्ठा रानीके सुसीमा राजकुमारी हुई और श्री कृष्णसे व्याही गयी। अब तू तप करके देव योनिमे जन्म लेगी और फिर मनुष्य पर्यायसे मोक्ष प्राप्त करेगी। सुसीमा यह सुन कर वहुत प्रसन्न हुई और उसने तीर्थकर नेमिनाथको प्रणाम करके अपना स्थान ग्रहण किया।

फिर श्री कृष्णकी पाँचवी पटरानी लक्ष्मणाने तीर्थेश्वरको नमस्कार करके अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा। तब भगवान्ने उसे बताया —

"जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमे कच्छकावती देशमे सीता नदीके उत्तरीय तटपर अरिष्टपुर नगरमे इन्द्र समान विभूतिवाला राजा वासव अपनी रानी सुमित्रा सहित रहता था। एक दिन राजा और रानी सहस्राम्र वनमे सागरसेन मुनिके दर्शनके लिए गये। गुरुसे धर्म सुनकर राजाको संसारसे विरक्ति हो गयी और उसने अपने राजकुमार वसुसेनको राज देकर मुनि दीक्षा ले ली। पर रानी सुमित्रा

पुत्र मोहवश आर्यिका न हुई, घरमे ही रही। फिर पुत्रका भी वियोग हो गया और रानी महा दुःख और अतिशोकसे मर गयी। मर कर वह भीलनी हुई। एक दिन उस भीलनी ने अवधिज्ञानी चारण ऋद्धिधारी मुनि नन्दिभद्रके दर्शन किये और उनसे अपने पूर्व भव सुने। उसने तीन दिनका उपवास किया और मर कर नारददेवकी मेघमालिनी स्त्री हुई। फिर वह भरत क्षेत्रके दक्षिण तटपर चन्दनपुर नगरमें राजा महेन्द्रकी अनुन्धरी रानीसे कनकमाला पुत्री हुई। कनकमालाने स्वयवरमे महेन्द्र नगरके राजा हरिवाहन विद्याधरको चुना। एक दिन कनकमाला जिन-प्रतिमाओके दर्शन करने सिद्धकूट गयी, जहाँ चारण ऋद्धिके धारक एक मुनिसे अपने पूर्व जन्मोका हाल सुन कर साध्वी हो गयी। तप करके मरने पर वह स्वर्गमे इन्द्रकी प्रिया इन्द्रानी हुई। वहाँ से वह राजा श्लक्षण रोमकी सुरमती रानीसे लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई। अब तू कृष्णकी पटरानी है। अबसे तीसरे जन्ममे तेरी मुक्ति होगी।"

रानी लक्ष्मणाने भगवान्को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और अपना स्थान ग्रहण किया।

इसके बाद छठी पटरानी गाधारीने जिनेन्द्र भगवान्से अपने पूर्व भव पूछे और भगवान्ने उसे दिव्यध्वनिसे उसे बताया —

"किसी समय कौशल देशमे अयोध्यामे रूपदत्त राजा रहता था। उसकी रानीका नाम विनयश्री था। रानीने अपने पतिके साथ सिद्धार्थ वनमे श्रीधर मुनिको आहार दिया। दो जन्मके पश्चात् विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमे गगनवल्लभ नगरमे विद्युद्वेगकी रानी विद्युन्मतीसे महा कातिवती विनयश्री पुत्री हुई। उसका विवाह नित्यालोकपुरके राजा महेन्द्र विक्रमसे हुआ। कुछ समय पश्चात् राजाने चारण मुनियोसे धर्मोपदेश सुन कर अपने पुत्र हरिवाहनको राज्य देकर मुनि दीक्षा ले ली। रानी विनयश्रीने आर्यिकाकी दीक्षा

ली, तप किया और समाधिमरण करके सौधर्म इन्द्रकी देवी हुई। वहाँ से चय कर तू गाधार देशमे पुष्कलावती नगरमे राजा इन्द्रगिर-की रानी मेरूमतीसे गाधारी राजकुमारी हुई और तेरा विवाह श्री कृष्णसे हुआ। अब तू साध्वी बनेगी, फिर देव बनेगी और फिर मनुष्य-जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगी।"

यह सुन कर गाधारी बड़ी प्रसन्न हुई और उसने भगवान्को नमस्कार किया।

फिर श्री कृष्णकी सातवी पटरानी गौरीने भगवान्से अपने पूर्व भवोका हाल पूछा और भगवान्ने उसे बताया :—

"इस भरत क्षेत्रके इभ्यपुर नगरमे कभी धनदेव सेठ रहता था। उसकी भार्याका नाम यशस्विनी था। एक दिन वह अपने महलकी छत पर खडी थी, कि उसने आकाशमे जाते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनि देखे। उन्हे देखते ही उसे अपने पूर्व-जन्मोका स्मरण हो गया। उसे मालूम हुआ कि वह धातकी खण्ड द्वीपके पूर्व मेरूकी पश्चिम दिशामे विदेह क्षेत्रके नन्दशोक नगरमे आनन्द सेठकी पत्नी थी। वहाँ उसने अपने पतिके साथ मितसागर मुनिराजको आहार दिया था। उन्हे पचाश्चर्य प्राप्त हुए, पर कभी उन्होने वर्षाके पडते हुए पानीको पी लिया। वह पानी विष मिश्रित था। इसलिए पीते ही वे दोनो मर गये। मर कर वह देवकुरूमे आर्या हुई। उसके बाद इन्द्रानी हुई और फिर यहाँ यशस्विनी हुई। यशस्विनीने मुनिसे प्रोषधव्रत ग्रहण किया। कुछ जन्मोके पश्चात् तू राजा मेरू चन्द्रकी रानी चन्द्रमतीसे गौरी पुत्री हुई और अब श्री कृष्णकी रानी है। तू साध्वी बनेगी और दो जन्मके पश्चात् मोक्ष जायेगी।"

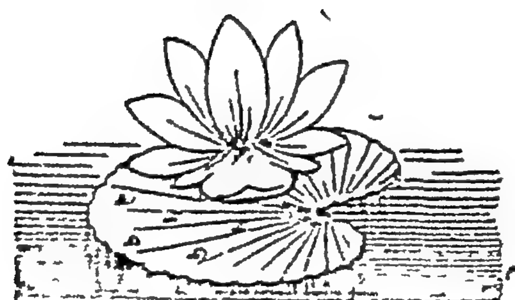
यह सुन कर गौरी बड़ी हर्षित हुई और उसने भगवान्को नमस्कार किया।

फिर आठवी पटरानी पद्मावतीकी प्रार्थना पर भगवान् नेमिनाथने उसके पूर्व जन्मोका हाल बताना आरम्भ किया —

"उज्जयिनी नगरीमे अपराजित राजा रहता था। उसकी रानीका नाम विजया था। और उन दोनोकी पुत्रीका नाम विनयश्री था। उसका विवाह हस्तिनापुरके राजा हरिसेनसे हुआ। पति-पत्नी ने वरदत्त मुनिको आहार दिया। सोते हुए कालागुरू धूपके धुएँसे रानीका प्राणात हो गया। मर कर पहले वह एक पल्यकी आयुवाली आर्या हुई और फिर चन्द्रदेवकी चन्द्रप्रभा देवी हुई। फिर मगध देशके शाल्मली ग्राममे देविला और जयदेव दम्पतिके पद्मावती पुत्री हुई। एक बार उसने वर धर्म आचार्यसे यह व्रत लिया, कि वह जीवन पर्यन्त अज्ञात फल नही खायेगी। एक दिन असमयमे चण्डवाण नामक शक्तिशाली भीलने उस ग्राम पर आक्रमण कर दिया और वह वहाँ की समस्त प्रजा और पद्मदेवीको हर ले गया। उसने पद्मदेवीको कैदमे डाल दिया। वह भील उसे अपनी स्त्री बनाना चाहता था, पर उस शीलवती पद्मदेवीने किसी नीतिसे उसका निराकरण कर दिया और विपत्तिको टाल दिया। उसी समय राजगृहमे राजा सिंहरथने उस भीलको मार डाला, जिससे शाल्मली ग्रामकी वह प्रजा बन्धन मुक्त हो गयी और शरण रहित होने से इधर-उधर भटकने लगी। जनता भूखसे मारी-मारी किंपाक फल खाकर दु खसे मर गयी। परन्तु पद्मदेवी अपने अज्ञातफल न खानेके व्रतमे दृढ रही, उसने कोई अज्ञात फल नही खाया। वह सन्यास मरण करके एक पल्य आयुवाली आर्या हुई। फिर वह स्वयप्रभ देवकी स्वयप्रभा देवी हुई। इससे आगे तीन जन्मोके पश्चात् तू अरिष्ठपुरके राजा स्वर्णनाभकी रानी श्रीमतीसे पद्मावती राजकुमारी हुई और तेरा श्री कृष्णसे विवाह हुआ। तप करके तू स्वर्गमे देव होगी और फिर मनुष्य योनिसे मोक्ष जायेगी।"

अपने भव-भवकी कथा सुन कर पद्मावतीने भगवान्‌को नमस्कार किया।

कृष्णकी आठ पटरानियोंके पश्चात् रोहणी, देवकी आदि देवियों और अन्य यादवोंने भी अपने-अपने भव पूछे जिन्हें सुनकर वे संसारसे भयभीत हुए। फिर सभी जिनेन्द्रकी स्तुति करके तथा उन्हें नमस्कार करके अपने-अपने स्थानोंको गये।



तरेसठ शलाका पुरुष

कृष्णके पश्चात् वसुदेवके यहां देवकीसे एक और पुत्र गजकुमार पैदा हुआ। यह राजकुमार अपने पिताके समान कांतिवान था और बडे भाई श्रीकृष्णका वडा प्यारा था। जब यह राजकुमार वडा हुआ, तो कृष्णने कई अत्यन्त सुन्दर युवतियो से उसका विवाह कर दिया। इनमे से एक युवती सोमा थी जो सोमशर्माकी क्षत्रिय पत्नी से पैदा हुई थी।

उसी समय तीर्थकर नेमिनाथ द्वारिकापुरी के समीप गिरनार पर्वत पर पधारे। सभी यादव महामगल द्रव्य लेकर उनके दर्शन और धर्म प्रवचन सुनने के लिए समवसरणमे गये। श्रीकृष्ण के साथ गजकुमार भी समवसरणमे गया। और जिनश्रीको नमस्कार करके अपने बडे भाई श्रीकृष्णके पास ही बैठ गया। उस समय श्रीनेमिनाथ ससार सागरसे पार तरने के उपाय रत्नत्रय रूप धर्मका प्रवचन कर रहे थे।

प्रवचनके पश्चात् श्रीकृष्णने बड़ी विनयसे अपने और दूसरे श्रोताओके कल्याणके लिए उनसे पूछा, "हे नाथ! इस भरत क्षेत्र के वर्तमान कालके तरेसठ शलाका पुरुषोका हाल बतानेकी कृपा करे।"

शलाका पुरुष का आशय महा शक्तिशाली पुरुष है। इनकी संख्या तरेसठ है। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ अर्द्ध चक्रवर्ती,

नौ नारायण या बलभद्र और नौ प्रतिनारायण का समूह तरेसठ शलाका पुरुष कहलाता है।

तीर्थंकर नेमिनाथने श्रीकृष्णके प्रश्नके उत्तरमे तरेसठ शलाका पुरुषो का वर्णन सक्षेपमे किया।

वर्तमान कालमे चौवीस तीर्थंकर हुए। सबसे पहले तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ हुए जिन्हे आदिनाथ जी भी कहते है। उनके पश्चात् (२) अजितनाथ जी (३) सम्भवनाथ जी (४) अभिनन्दननाथ जी (५) सुमतिनाथ जी (६) पद्मप्रभु नाथ जी (७) सुपार्श्वनाथ जी (८) चदाप्रभु जी (९) पुष्पदन्त जी (१०) शीतलनाथ जी (११) श्रेयांसनाथ जी (१२) वास पूज्य जी (१३) विमलनाथ जी (१४) अनतनाथ जी (१५) धर्मनाथ जी (१६) शान्तिनाथ जी (१७) कुन्थुनाथ जी (१८) अमरनाथ जी (१९) मल्लिनाथ जी (२०) मुव्रतनाथ जी (२१) नमिनाथ जी और वाईसवे तीर्थंकर स्वय नेमिनाथ जी थे। उनके पश्चात् तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी और चौवीसवे तीर्थंकर महावीर जी होंगे।[1]

श्री शान्ति नाथ जी, कुन्थु नाथ जी और अरहनाथ जी ये तीनो तीर्थंकर चक्रवर्ती भी हुए थे। शेष सब तीर्थंकर सामान्य राजा हुए।

श्री वासपूज्य जी, मल्लि नाथ जी, नेमनाथजी, पार्श्वनाथजी और वर्धमान जी यानी महावीर स्वामी इन पाच तीर्थंकरो ने कुमारावस्था मे ही दीक्षा धारण की थी और बाकी उन्नीस तीर्थंकरो ने राजा होने के साथ दीक्षा ग्रहण की थी। और वे विवाहित थे।

---

१ इन तीर्थंकरों का सविस्तार वर्णन जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर द्वारा प्रकाशित तिलोय पण्णत्ति भाग २ के पृष्ठ १०१४ से १०२२ तक दे दिया है। लेखक

श्री आदिनाथ जी पहले तीर्थंकर हुए। इनके पिता चौदहवें मनुं या कुलकर नाभिराजा और माता मरुदेवी थी। नाभिराजा इक्ष्वाकुवशके तिलक और अयोध्याके राजा थे। आदिनाथ का जन्म चैत्र कृष्णा नवमी को हुआ था। देवेन्द्रो ने इनका जन्म कल्याणक मनाया। जन्मते ही इन्द्रने देवोके साथ इन्हे मेरुगिरि के शिखर पर पाडुक वनमे पाडुक शिला पर सिहासन मे विराजमान करके स्नान किया। मति, श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञानो से पूर्ण आदिनाथ कुमारावस्था को प्राप्त हुए। उनका विवाह यशस्वती और सुनन्दा नामकी दो अति सुन्दर यौवन सम्पन्न और गुणवती नवयुवतियो से हुआ। कल्पवृक्षो के नष्ट हो जाने पर जव प्रजाने नाभिराजासे अपने कष्टोका निवेदन किया, तव उन्होने प्रजा के मुखियाओको राजकुमार आदिनाथके पास भेज दिया। इस पर राजकुमार ने उन्हे असि, मषी, कृषि, विद्या, वाणिज्य और पशु पालन छह कर्मों के द्वारा आजीविका कमाने का उपदेश दिया।

उत्तम मुहूर्त मे नाभिराजाने आदिनाथ को उत्कृष्ट राज्यपद प्रदान किया। आदिनाथके भरतादि एक सौ एक पुत्र थे। राजकुमार भरत पहले चक्रवर्ती थे। कुमार बाहुबलि दूसरे पुत्र थे। इनके दो पुत्रियाँ थी। एक का नाम नन्दा और दूसरी का नाम सुनन्दा था।

एक दिन राजदरबार से सद्गुणयुक्त गायन तथा नृत्य कला मे निपुण चचल देवागना नीलाजसा उन के सामने नृत्य करते-करते आयु का नाश होने पर बिजली के समान तत्काल अदृश्य हो गयी। इस घटना को देखकर राजा आदिनाथ को ससार से विरक्ति हो गयी। उन्होने सोचा कि इस ससार मे जीव मेघ के समान नश्वर है। फिर उन्होने युवराज भरत को राज्य दिया और बाहुवलि को पोदनपुर का राज्य दिया। आदिनाथ ने चैत्र कृष्ण नवमी के दिन केश लोच पूर्वक दीक्षा धारण की। पाप का नाश करने वाले

योगी आदि जिन छह मास तक ध्यान मे निमग्न हो गये और छह महीने का उपवास किया। जव वे आहार के लिए निकले तव लोगो को सावुओ को आहार देने की विधि नही आती थी। आदिनाथ विहार करते-करते हस्तिनापुर आए। वहां राजा श्रेयांस ने उन्हे नमस्कार कर के इक्षु-रस का आहार दिया। एक वर्ष के महातप के पश्चात् उन्हे कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। इनके मुख्य गणधर का नाम वृषभ सेन था। वहुत समय तक धर्मोपदेश देने के पश्चात् कैलाश पर्वत से माघ वदि चतुर्दशी को इन को मोक्ष प्राप्त हुआ। भगवान आदिनाथ को वृषभनाथ या ऋषभ नाथ भी कहते हैं।

वारह चक्रवर्तियो के नाम (१) भरत (२) सगर (३) मघवा (४) सन्तकुमार (५) शान्तिनाथ (६) कुंथु (७) अर (८) सुभौम (९) पद्म (१०) हरिषेण (११) जयसेन (१२) ब्रह्मदर्त थे।

नौ नारायणो के नाम (१) त्रिपृष्ठ (२) द्विपृष्ठ (३) स्वयभू (४) पुरुषोत्तम (५) पुरुष सिह (६) पुंडरीक (७) दत्त (८) नारायण और (९) कृष्ण थे। नारायणो को अर्धचक्रवर्ती भी कहते हैं।

नौ प्रतिनारायणो के नाम (१) अश्वग्रीव (२) तारक (३) मेरक (४) मधुकैटभ (५) निशुम्भ (६) वलि (७) प्रहरण (८) रावण (९) जरासंध थे। इन को प्रति शत्रु भी कहते हैं।

नौ वल देवो के नाम (१) विजय (२) अचल (३) सुधर्म (४) सुप्रभ (५) सुदर्शन (६) नान्दी (७) नन्दि मित्र (८) राम और (९) पद्म थे। इन को वलभद्र भी कहते है।

उपर्युक्त त्रेसठ शलाका-पुरुषो का वर्णन हमारे पुराणो और चरित्रो मे मिलता है।

: ४४ :

द्वारिका दहन

श्री गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको गजकुमारका वृत्तान्त सुनाया। तीर्थंकर आदिका चरित्र सुनकर गजकुमार ससार से भयभीत हो गया और पिता-पुत्र आदि समस्त कुटुम्बीजनोको छोड़कर बड़ी विनयसे जिनेन्द्र भगवान नेमिनाथके पास जाकर दीक्षा लेकर तप करने लगा। गजकुमारके विवाहके लिए प्रभावती आदि जो कन्याए निश्चित की गई थी, उन सबने उनके ससार त्यागते ही ससार से विरक्त होकर दीक्षा ले ली।

इसके पश्चात् किसी दिन गजकुमार मुनि रात्रिके समय एकान्त मे प्रतिभा योगसे विराजमान हो सब प्रकारके कष्ट सहते हुए तपमे तल्लीन थे। सोमशर्मा अपनी पुत्री सोमाके त्यागसे क्रोधित हो मुनि गजकुमारके पास आया। वह मुनिराजके सिर पर तीव्र अग्नि प्रज्वलित करने लगा। अग्निसे मुनिका शरीर जलने लगा। उसी अवस्थामे शुक्लध्यानसे कर्मोको नष्ट करके मुनि केवली होकर मोक्ष चले गये।

मुनि गजकुमारके मरण का समाचार सुनकर यादव केवल बहुत दु खी ही नही हुए, वरन् वसुदेवको छोड कर समुद्रविजयादि नौ भाई मुनि बन गये। देवकी और रोहिणीके सिवाये दूसरी सभी रानियोने भी दीक्षा ले ली।

इधर तीर्थंकर नेमिनाथने जनताको प्रबोधित करते हुए सभी दिशाओमे विहार करके अनेक राजाओको धर्ममे स्थिर किया। फिर वे लौट कर अपने समवसरणको सुशोभित करते हुए गिरनार पर्वत पर विराजमान हो गये। यदुवशी राजा वसुदेव, कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्नकुमार, वहुत-सी रानिया और द्वारिका निवासी बडी विभूति-के साथ उनके दर्शनार्थ आये और धर्म प्रवचन सुनने लगे।

धर्म कथा के वाद वलदेवने वडी विनयसे नमस्कार करके श्री नेमिनाथसे नीचे लिखे तीन प्रश्न पूछे —

(१) "कुवेर द्वारा निर्मित इस द्वारिका पुरीका अन्त कितने समयके वाद होगा ? यह नगरी समय वीतनेपर स्वय ही विलय होगी या किसीके निमित्तसे नष्ट होगी ?"

(२) "कृष्णका परलोक गमन किस कारण से होगा ?"

(३) "मुझे सयमकी प्राप्ति कव होगी ?"

श्री नेमिनाथने वलदेवसे कहा, "हे महाभव्य ! यह नगरी द्वारिकापुरी वारहवे वर्ष द्वैपायन मुनि द्वारा भस्म होगी, क्योकि उन्मत्तताने यादवकुमार ही उसे क्रुद्ध करेगे।

कृष्णका मरण सोते हुए कोसाम्बी नगरमे जरतकुमारके वाणसे होगा। आप कृष्णकी मृत्युके निमित्तको पाकर तप करेगे और ब्रह्मस्वर्गमे उत्पन्न होगे।

द्वैपायन कुमार रोहिणीका भाई और बलदेवका मामा था। भगवानके ये वचन सुन कर वह ससारसे विरक्त हो गया और मुनि बन कर तप करने लगा। बारह वर्षकी अवधि पूरी करने के लिए पूर्व देशमें जा कर ध्यान लगाया और शरीरको सुखानेवाला महा तप करने लगा। जरत्कुमार भी यह जानकर बडा दुखी हुआ कि उसीके द्वारा कृष्णकी मृत्यु होगी। वह भाई-बहनोंको छोड कर किसी

ऐसे स्थान पर चला गया, जहा उसे कृष्ण दिखाई भी न दे। पर वह कृष्णके अति स्नेह से बडा व्याकुल हुआ। दूर वनमे जा कर वनके जीवोकी तरह वनमे विचरने लगा। सभी यादव भावी दुःख-की चिन्तासे सतप्त भगवान्को नमस्कार करके द्वारिकापुरी लौट आये। बलदेव और कृष्णने नगरमे यह घोषणा करा दी कि मद्य बनानेके साधन और मद्य शीघ्र ही नगरसे अलग कर दिये जाये। जो उसे रखेगा, वह दण्ड का भागी होगा। जनताने उनके आदेशो का पालन करके मदिरा बनाने की समस्त सामग्रीको पहाडोके बीच बने हुए गिरीकी गुफामे फेंक दिया। जो मदिरा कुण्डोमे छोडी गई थी, वह उनमे भरी रही। जनता हितैषी कृष्णने दूसरी घोषणा यह कराई कि मेरे माता-पिता, भाई, स्त्री और पुत्री जो वैराग्य धारण करना चाहे, वे शीघ्रता करे। वह किसीको मना न करेगा। कृष्णकी आज्ञानुसार उनके पुत्र प्रद्युम्न कुमार आदि परिग्रह त्याग कर मुनि बन गये। कृष्णकी आठो पटरानियो ने भी दीक्षा ले ली। द्वारिका-के बहुत-से स्त्री-पुरुष भी साधु-साध्वी बन गये।

श्री कृष्णने सबसे यही कहा कि यह ससार समुद्र बहुत गहरा है, वीतराग धर्म समान उसे पार करने का दूसरा जहाज नही है और भगवान् नेमिनाथके समान दूसरा पार करने वाला नही है। इस लिए उनकी शरणमे जाओ। उन्होने कहा कि अभी उनके वैराग्यका समय नही आया है और बलदेव भी उसके मोहके कारण मुनि नही बन सकते। उसके मरने के पश्चात् बलदेव भी मुनि बनेगा।

सिद्धार्थ नामके सारथीने बलदेवसे वैराग्यकी आज्ञा मागी, तो बलदेवने उसे अनुमति देते हुए यह प्रार्थना की कि जब उसे कृष्णके वियोगका सताप हो, तब वह देव लोक से आकर उसे सम्बोधित करे।

महासघ सहित भगवान् नेमिनाथने पल्लव देशकी तरफ विहार किया और मार्गमे जिन धर्मका उपदेश दिया। द्वारिका निवासी नगरीको छोड़कर वनमे जा बसे और पूजा, दान, व्रत और उपवास मे लीन रहने लगे।

सयोगकी वात है कि वे नगर निवासी वर्षोंकी गिनती भूल गये और बारह वर्ष पूरे होने से पहले ही नगरमे लौट आये। इसी प्रकार रोहिणीका भाई द्वैपायन मुनि भी देश-विदेश विहार करता हुआ, वर्षोंकी गिनती भूलगया और अवधि पूरी होने से पहले द्वारिका आ गया। द्वैपायन मुनि शरीरमे तो मुनि था, पर उसका विश्वास मिथ्या था। उसने मनमे सोचा कि भगवान नेमिनाथकी भविष्यवाणी टल गई। वह द्वारिकाके बाहर गिरिके पास कायोत्सर्ग खड़ा तप करने लगा।

इधर कृष्णके पुत्र नवकुमार आदि यदुकुमार वन क्रीडा करते-करते थक गये और उन्हे जोरकी प्यास लगी। वनके कुण्डो मे शराव पड़ी थी, वह सूख गई थी। पर जल बरसने से और तट पर खड़े महुवेके वृक्षोंके फल गिरने और सूर्यकी तपनमे जल गरम हो गया। वह समस्त जल मदिरा समान मादक बन गया। प्याससे पीडित उन यदुकुमारोंने उस जलको छान कर पी लिया। पीते ही उन्हे नशा हो गया। वे विकारी बन गये। उन्मत्त हो गये, उनकी आंखें लाल हो गई और वे बेहोशीमें नाचने-गाने लगे, कुछ-कुछ बकने लगे और उनके पांव डगमगाने लगे। उनके सिरके केश बिखर गये और गलेकी पुष्पमालाएं बिखर गई। ऐसी हालतमे वे शहरको लौट रहे थे। मार्गमे उन्होंने द्वैपायन मुनिको देखकर आपसमें कहा, कि [illegible] द्वारिकाका नाश होने वाला है, [illegible] यह हमसे बच कर [illegible] जाता है? ऐसा सोचते ही वे द्वैपायन मुनिको पत्थर मारने लगे। उन्होंने [illegible] मारा कि वह तपस्वी धरती पर गिर पड़ा। [illegible] मूर्छित। [illegible] क्रोध पैदा हुआ, उसकी भौंहे चढ़ गई और वह

होठ चबाने लगा। बस अब क्या था ? वह यादवोका विनाश करने के लिए तैयार हो गया। यदुकुमार भागकर द्वारिकामे आये।

बलदेव और वासुदेवने किसीसे इस समस्त घटनाको सुन लिया। वे बडे चिंतित हुए। उन्हे भगवान्‌की भविष्यवाणी सच्ची होती लगी। तव वे दोनो भाई मुनिसे क्षमा मागने उसके पास छत्र, चवर, सिंहासन और समस्त सेना पीछे छोडकर गये। मुनि तो क्रोधकी अग्निसे प्रज्वलित था ही, उसकी बुद्धि क्लेश रूप बन गई थी, भ्रकुटी टेडी हो गई थी, मुख विषम वन गया था। उसकी आखे इतनी लाल हो गईं थी, कि उनकी तरफ देखना भी कठिन था। मारे क्रोधके उसके प्राण कण्ठ तक आ गये थे। इस प्रकार उसके मुखकी महाभयकर आकृति वन गई थी। मुनि को देख कर बलदेव और कृष्णने हाथ जोड कर बडे आदरसे उसे नमस्कार किया और यह जानते हुए भी कि हमारी प्रार्थना वेकार होगी, उन्होने मोहवश प्रार्थना की, "हे साधो! आपने चिरकालसे अपने क्षमामूलक तप की रक्षा की है, आज वह तप क्रोध रूपी अग्निसे जल रहा है, उसकी रक्षा कीजिये। यह क्रोध मोक्षके साधनभूत तपको थोडी-सी देरमे नष्ट कर देता है, चारो पुरुषार्थो—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का शत्रु है और निज और परको नष्ट कर देता है। हे मुनिराज! इसलिए आप इन मूढ राजकुमारोकी मूर्खतापूर्ण चेष्टा को क्षमा कर दे, हम पर प्रसन्न हो जाये।" इस सव अनुनय-विनय का मुनि द्वैपायन पर जरा भी प्रभाव न हुआ, वह अपने दुर्निश्चयसे जरा भी टस-से-मस न हुआ। मुनिकी वुद्धि तो अत्यत पापपूर्ण हो गई थी और वे प्राणियो सहित द्वारिकाको जलाने के निश्चयपर दृढ थे। मुनिने दो अगुलियोके इशारे से उन्हे वताया कि केवल तुम वलभद्र और कृष्ण वचोगे और कोई नही।

मुनिके अभिप्रायको जान कर वे दोनो भाई अति दुःखी मनसे किंकर्तव्यविमूढ हो द्वारिकापुरी आये और सोचने लगे कि अव

क्या करें। उसी समय सम्बुकुमार आदि अनेक यादव नगरीसे निकले और दीक्षित हो गये। वे पर्वतकी गुफा आदिमे विराजमान हो गये। द्वैपायन मुनि अपने क्रोधसे अपने तपको नष्ट करके, मर कर अग्नि कुमार मिथ्यादृष्टि देव हुआ और उसने द्वारिका पुरीको भस्म कर दिया। सभी वृद्ध, स्त्री, बालक, पशु और पक्षी अग्निमे भस्म हो गये। उस समय जो हाहाकार हुआ, वैसा हाहाकार कभी नही हुआ।

प्रश्न हो सकता है कि जिस द्वारिकाका देवोने निर्माण किया और जिसके रक्षक भी देव थे, वह क्यो भस्म हो गई। पर भवितव्यता तो दुर्निवार है, वह टलती नही। बलभद्र आदिने समुद्रका जो जल अग्नि शान्त करने के लिए डाला था, वह भी तेल बन कर अग्निको बढाने मे सहायक हुआ। कृष्ण और बलदेवने अग्निको असाध्य समझ कर अपने माता-पिता और दूसरे कुटुम्बियोंको रथ पर बिठा कर नगरीसे बचाने का प्रयत्न किया, पर रथ था कि उसके पहिये ही पृथ्वीमे गड गये, और वह आगे न सरका। फिर उन्होने स्वय रथको खीचना शुरू किया, पर फल कुछ न हुआ। रथ तो वही कील सा गया।

उसी समय द्वारिकाके किवाड बन्द हो गये। दोनो भाइयोने उन्हे खोलने का बडा प्रयत्न किया। किवाड तो खुल गये, पर उसी समय देव वाणी हुई, 'तुम दोनो ही इस अग्नि काण्डसे बचोगे और कोई नही।''

माता-पिताने भी अपना विनाश निश्चित समझकर बलदेव और कृष्णको बच कर जाने को कहा क्योंकि यदि वे जीवित रहे तो यदुवंशका निशान बाकी रहेगा। तब वे दोनों भाई माता-पिताके पास गये, उन्हे नमस्कार किया और उनकी आज्ञा पाकर रोने-[illegible]। वे दक्षिण दिशाको चले गये।

उस अग्नि काण्डके समय वसुदेव आदि यादवो, उनकी स्त्रियो और बहुतसे नगर निवासियोने बडे धैर्यका परिचय दिया। उन्होने सयम धारण कर लिया, सन्यास ले लिया और धर्म-ध्यानसे समस्त उपसर्ग व विपत्तिको सहन किया। वे जानते थे, कि ससार का नियम ही यह है, कि जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है। इसलिए उन्होने समाधिमरण पूर्वक धर्मध्यानसे शरीर त्याग दिया और अपनेको धन्य किया। उन्होने मरते समय भी उपसर्ग आने पर भी मनमे बुरा विचार न आने दिया। सच्चे धीर-वीर शान्तमना व्यक्ति मरण आने पर कायर नही बनते, दृढमना रहते है। ऐसे जीव स्वर्ग और फिर मोक्ष जाते है।

धन्य हैं वे पुरुष जो अग्नि-शिखाके समूहमे भस्म होते हुए भी समाधिको नही छोडते और शरीर त्याग करते है। यही सतोकी रीति है।

और द्वैपायन मुनिने अपना तप बिगाडा, अपना नाश किया, अनेक जीवोको नष्ट किया और अपना भविष्य विगाड़ा। जो आदमी क्रोध, मान, माया और लोभके वशीभूत हो जाता है, वह अपना घात तो अवश्य करता है, दूसरोका घात कर सके या न कर सके क्योकि दूसरोका घात तो उनके अपने भाग्याधीन है। दूसरोको मारने का प्रयत्न करना, जलते लोहेके गोलेको उठानेके समान है। उसको उठानेवाला तो स्वय अवश्य जलता है, वह दूसरोको जला सके या नही, यह कोई नही कह सकता। जहाँ दूसरे आदमियोके लिए तप निर्वाणका कारण वनता है, वहाँ द्वैपायनके लिए वह दीर्घ आवागमनका कारण बन गया। द्वैपायनने भवितव्यताके वश होकर द्वारिका पुरीको भस्म किया। वह नगरी छह महीने लगातार जलती रही। उसके ऊँचे-ऊँचे भवन, महल और अटारिया जलकर मिट्टीमे मिल गईं। यह था द्वारिका का नाश, महानाश।

श्री कृष्ण परलोक गमन

बलदेव और श्री कृष्णकी महानताको मनुष्य वर्णन नही कर सकता। उन दोनोने पुण्यके योगसे परम उच्चता प्राप्त की और सुदर्शन चक्र आदि अनेक महारत्न इनके पास थे। वे भरत क्षेत्रके भूपति थे। पर जब उनके पुण्य का क्षय हो गया, उनके रत्न गये, बन्धु वर्ग आदि गये। केवल उनके प्राण मात्र ही उनका परिवार था। ये दोनो वीर महाधीर शोकसे अति पीडित जीने मात्रकी आशा लेकर दक्षिणकी ओर चल पड़े। क्योकि वहाँ पाण्डव दक्षिण मथुरामे निवास कर रहे थे। इस विपत्तिमे दोनोने वही जानेका निर्णय किया।

मार्गमे हस्तप्रभ नगर पडता था। कृष्ण तो नगरके बाहर वनमें ठहर गये और बलदेव भोजनके लिए सामग्री लेने नगरमे गये। [illegible] अपना समस्त शरीर वस्त्रमे लपेट रखा था। वहाँ का राजा [illegible] बड़ा प्रसिद्ध और महाधनुर्धारी था और धृतराष्ट्रके वंशका था। वह यादवोके दोष ही ढूंढता रहता था। वह उनका महा शत्रु था।

ज्योंही बलभद्रने नगरमे प्रवेश किया, उनके अपना रूप छिपानेके बड़े प्रयत्न करने पर भी लोगोंने उन्हे पहचान लिया और उनके इर्द-गिर्द एकत्रित हो गये। बलभद्रने एक वणिकको अपने कड़े और

कुण्डल देकर उससे खाने-पीने की सामग्री ली और नगरसे निकला। राजाके पहरेदारोने भी बलभद्रको पहचान लिया और उन्होने राजा-को तुरन्त सूचना दे दी। फिर क्या था ? राजाने उसको पकडने-मारनेके लिए तुरन्त अपनी सेना भेज दी।

बलभद्रने अन्नादि सामग्री परे रख दी और हाथी बाधनेका थम्ब उखाड़ कर लडनेको तैयार हो गया और मुख्य द्वारकी आगल निकाल कर सेनाके सामने डट गया। उन दोनोने राजा और सेना-को मार कर भगा दिया।

फिर ये दोनो भाई खाद्य सामग्री लेकर विजय वनमे एक रमणीक सरोवरके पास आ गये। वहाँ उन्होने जल छानकर स्नानादि करके भगवान् नेमिनाथका स्मरण करके भोजन किया और कुछ समय विश्राम किया।

फिर वे दक्षिणकी ओर चल पडे और चलते-चलते महादुर्गम् और महाभयानक कौशम्बी वनमे पहुँचे। पशुओ, शृगालो और पक्षियोके शब्दसे वह वन शब्दायमान हो रहा था। प्यासके मारे हिरणोके झुण्ड-के-झुण्ड वहाँ मारे-मारे इधर-उधर फिर रहे थे। वहाँ की गर्म-गर्म पवन असह्य थी और दावानलसे वहाँ की लताओ-के समूह, झाडियाँ और वृक्ष झुलस गये थे। पानीका वहाँ कही नामोनिशान तक न था। मारे गर्मीके जगली जानवरोंके जो श्वास-पर-श्वास निकल रहे थे, उनके शोरसे वन गूंज रहा था। ऐसे वनमे पहुँच कर प्याससे पीडित कृष्णने अपने बडे भाई बलभद्रसे कहा, "हे आर्य ! मै प्याससे बहुत व्याकुल हूँ। मेरे होठ और तालु सूख गये हैं। अब मै एक कदम भी आगे चलने मे असमर्थ हूँ। इसलिए अनादि और सारहीन ससारमे सम्यग्दर्शनके समान तृष्णाको दूर करनेवाला शीतल जल मुझे पिलाओ।"

वलभद्र कृष्णको जिनवाणी रूप अमृतका पान करनेको कहकर जल लेने वहाँ से दूर चले गये। कृष्ण पीताम्बर ओढ कर सघन वृक्षकी छायामें विश्राम करने लगे।

देवयोग से उसी समय जरत्कुमार वहाँ आ निकला। वह शिकारके लिए वनमे अकेला घूम रहा था। पहले वताया जा चुका है, कि वह तो कृष्णके प्राणकी रक्षाके विचारसे स्नेहवश द्वारिकासे वनमे चला गया था। वह वनचरोके समान वनमे रह रहा था। पर भवितव्यके योगसे जरत्कुमार वही आ पहुँचा। उसके हाथमे धनुष था। उसने दूरसे कृष्णके हिलते पीले वस्त्रोको देख कर भ्रातिवश समझा, कि कोई हिरन है। उसने झटसे वाणका निशाना वाधा और खीच कर तेज तीर मारा, जिसने कृष्णके पावको वीध दिया। तभी कृष्णने उठ कर चारो ओर देखा, पर जरत्कुमार वृक्षकी ओटमे होने से दिखाई न दिया। तव कृष्णने पुकार कर पूछा, "इस वनमे हमारा कौन शत्रु है? किसने हमारा पाव अकारण वीधा है? जरा अपना नाम और कुल तो वताओ? मैंने कभी अज्ञात कुल और अज्ञात नाम वाले व्यक्तिका वध नही किया। इस वनमे ऐसा मेरा कौन घातक है, जिसकी शत्रुता तक का मुझे पता नही?"

इस पर जरत्कुमारने उत्तर दिया, "मैं वलदेव और श्री कृष्णके पिता वसुदेवका पुत्र जरत्कुमार हूँ। कायरोसे अगम्य इस वनमे मैं अकेला घूम रहा हूँ। जव मैने श्री नेमिनाथकी भविष्यवाणी सुनी कि मेरे हाथो छोटे भाई कृष्णका वध होगा, तभीसे मैं इस दुष्कृत्य को टालने के लिए इस वनमे वारह वर्षसे फिर रहा हूँ इस लम्वी अवधिमे मैंने आज तक किसी आर्यका वचन नही सुना, फिर यहाँ कौन है?"

जरत्कुमारका उत्तर सुन कर कृष्ण समझ गया कि वह उसका वड़ा भाई है। कृष्णने उसे अपने पास वुलाया। जरत्कुमारने यह समझ कर कि उसने कृष्णको वाण लगा है, वह 'हाय-हाय'

चिल्लाने लगा। वह कृष्णके पास गया। उसने धनुष बाण धरती पर फेक दिया और उसके चरणो पर गिर पडा। वह अत्यन्त शोकमग्न था। तव कृष्णने उसे उठाकर छातीसे लगा लिया। कृष्णने जरत्कुमारसे कहा, "हे ज्येष्ठ भ्राता ! शोक मत करो। होनहार अटल होती है। आपने मेरी प्राण रक्षाके लिए सुख-सम्पदा छोडी, वहुत वर्षो तक वनमे निवास किया, होनहारको टालनेका प्रयत्न किया। अपयश और पापसे डरनेवाला सज्जन पुरुष बुद्धि पूर्वक प्रयत्न करता है, परन्तु जिसका दैव कुटिल हो, पराङ्मुख हो, तब कोई क्या यत्न कर सकता है ?"

इसके पश्चात् जरत्कुमारने कृष्णसे वनमे आने का कारण पूछा, तो कृष्णने आरम्भसे द्वारिका दहन तक का सब हाल सुनाया। वंशका नाश सुन कर जरत्कुमार विलाप करने लगा। वह कहने लगा, "हे भाई ! चिरकालके बाद तो आप मिले और मैने आपका यह आतिथ्य-सत्कार किया। मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? चित्तकी शान्ति कहाँ प्राप्त करूँ ? हा कृष्ण ! आपको मार कर मैने दुनिया मे दु ख और अपयश ही पाया।"

उत्तम हृदयी जरत्कुमारको सान्त्वना देते हुए श्री कृष्णने कहा, "हे राजेन्द्र ! इस विलापको छोडो। सव जीव किये हुए कर्मोका फल भोगते हैं। ससारमे कौन किसको सुख-दु ख देता है ? कौन किसका मित्र है ? कौन किसका शत्रु है ? वास्तवमे अपना किया हुआ कार्य ही सुख या दु ख देता है। बलदेव मेरे लिए जल लेने गया है। आप शीघ्र ही उनके आनेसे पहले यहाँ से चले जाओ। कही ऐसा न हो कि वह आप पर क्रुद्ध होकर आपको मार दे और फिर अपना वश ही न रहे। आप श्रावकके व्रत धारण करो और जाकर पाण्डवोसे सब बात कह दो। वे अपने हितैषी हैं। हमारे कुलकी रक्षाके लिए वे अवश्य आपको राज देंगे। इतना कहकर श्री कृष्णने जरत्कुमारको कौस्तुभमणि निशानीके रूपमें दी, जिसे देखकर पाण्डव

उसका आदर करे। श्री कृष्णने उस मणिको छिपाकर ले जानेको कहा। जरत्कुमारने मणि लेकर कृष्णसे क्षमा मांगी। श्री कृष्णके पावका बाण निकाला और विदा ली।

श्री कृष्णके पावमे घावकी बडी पीडा थी। तब उन्होने उत्तर दिशाकी ओर मुख करके पल्लव देश स्थित तीर्थंकर नेमिनाथको नमस्कार किया और णमोकार मत्रका स्मरण किया। वे पृथ्वी रूपी शैया पर लेट गये। उन्होने अपना शरीर वस्त्रसे ढक लिया। उस समय उनकी बुद्धि समस्त परिग्रहसे निवृत्त हो गयी, वे बुद्धि या मनमे पूर्ण रूपसे अपरिग्रही बन गये। सब के प्रति उन्होने मित्रता का भाव प्रकट किया। इस प्रकार उनके विचार हर प्रकार से शुभ थे। कृष्णके जिन पुत्रो, पौत्रो, स्त्रियो, भाइयो, गुरुओ और कुटुम्बी बान्धवोने भविष्यका विचार छोड करके अग्निके पहले तपस्या करना आरम्भ कर दिया था, वास्तवमे वे धन्य थे। पर हजारो स्त्री-पुरुष और द्वारिकावासी और मित्रगण तपका कष्ट न उठा कर अग्निमे भस्म हो गये। कर्मके प्रबल भारसे कृष्णने भी तप नही किया, श्रावकके व्रत भी नही पाले, पर जिनदेव, वीतराग गुरुओ और निग्रन्थ साधुओ और दया-धर्ममे सच्ची तथा दृढ श्रद्धा थी। शुभ चिन्तन करते हुए कौसावी वनसे वे भावी तीर्थंकर परलोक सिधारे।



बलदेव का तप

वलदेव स्वामी श्री कृष्णके लिए जल लेने जगल मे दूर निकल गये पर उन्हे जल नही मिला। उसके मन मे कृष्ण ही वसा था। रास्ते मे उसे वहुत से अपशकुन हुए पर वह लौटा नही। वन मे जल दुर्लभ था और जगह-जगह मृगतृष्णा थी। वह समझने लगा कि यह जल भरा है। वह वनमे मृगोके समान दौड रहा था। तव उसने एक सरोवरी देखी जिसके किनारे चकवे, सारस और कलहंस सुन्दर शब्द कर रहे थे। सरोवरी तरगे मार रही थी। सरोवरी को देखकर वलदेवने सुखकी लम्बी साँस ली।

वलदेवने जल छानकर स्वय पिया और पत्तो के पात्रमे पानी भरा और चल पडा। वह तेज चला ताकि वह शीघ्र जाकर भाई को पानी पिलाये।

वलदेवके मनमे चिंता थी कि निर्जन भयानक वनमे वह भोले भाई कृष्ण को अकेला छोड कर क्यो चला आया। वलदेव ने दूर से कृष्णको पीताम्बर ओढे लेटा देखा, तो सोचा कि जहाँ मैं उसे छोड गया था, वही सुख निद्रासे सो रहा है। वह स्वय जागेगा तभी उसे पानी पिलाऊगा। जव वहुत देर हो गई और श्रीकृष्ण न जागे, तव उसने श्रीकृष्णको जगाने के लिए कहा कि वहुत सो चुके, अव उठो और जल पियो। यदि कृष्ण सोते होते, तो इन

बातों से उठ जाते पर वे तो दीर्घ निद्रामें सो रहे थे, मर चुके थे, तब कैसे उठते ?

बलदेव चुप होकर बैठ गया। पर जब उसने चींटियोंको वस्त्र में घाव पर जाते देखा तब उसने कपड़ा हटाया और देखा कि उसकी तो हालत ही कुछ और थी। बलदेवने सोचा कि कृष्ण तो मारे प्यास के मर गया और उसका सर्वस्व जाता रहा। फिर बलदेव वासुदेवकी छातीसे लग गया और मूर्च्छित हो गया। बलभद्र के लिए मूर्च्छित होना भी अच्छा ही था, वरना वह भाईके शोकसे तभी मर जाता। बलदेव तो हरिके स्नेह पाशमें दृढ रूपसे बंधा था। उन जैसा स्नेह जगतमें और किसको था ? जब बलदेव सचेत हुआ तब उसने वासुदेवके अंग अपने हाथ से छुए, पावके घावको देखा, तो लाल पाव रक्तसे अधिक लाल हो गया था। रक्तकी दुर्गंध भी उसे मालूम हुई। तब उसने समझा कि श्रीकृष्णको किसीने बाण से मार दिया। तब उसने सोचा कि यहां उसको मारनेवाला कौन हो सकता है ? तभी बलदेवने सिंहनाद किया, जिससे सारा वन गूंज उठा, हाथियों का मद उतर गया और शेर मारे डर के गुफाओंमें घुस गये। उसने पुकार कर कहा, "जिसने अकारण मेरे भाईको मारा है, जरा वह शीघ्र मेरे सामने आये। जो क्षत्री शूरवीर होते हैं, वे सोते हुए, शस्त्रहीन, असावधान, नम्रीभूत, त्यक्तमान और भागते हुए को नहीं मारते। वे स्त्री, बालक, वृद्ध और रोगीको भी नहीं मारते। ऐसे क्षत्री यशस्वी होते हैं, यश के धनी होते हैं।"

जब इधर-उधर दौडनेपर भी बलदेवको कोई न मिला, तब उसने कृष्ण को छाती से लगा लिया और विलाप करके रोने लगा। बलदेव रो-रो कर कहने लगा, "हाय जगतके प्रिय ! जगतके स्वामी हाय जनार्दन ! तू मुझे छोड़कर कहां चला गया ? तू जल्दी आ !" वह पागल मूर्ख निर्जीव को बार-बार पानी पिलाता था, पर उनके गले में जल जरा भी प्रवेश नहीं करता था। बलदेव कभी उनका मुख

धोता, हर्ष पूर्वक उसे देखता, कभी चूमता तो कभी उनको सू घता, वह कभी उनका वचन सुनने की इच्छा करता। ऐसा मूढबुद्धि बन गया था बलदेव। आचार्योंने ऐसी आत्म-मूढता को धिक्कारा है। कभी बलदेव कहता, "क्या स्वर्ग समान विशाल वैभवशाली द्वारिका के भस्म हो जाने से जीने की आवश्यकता न समझकर तू तप्त हो रहा है? ना भाई, ऐसा मत कर। भारत भूमि नाना प्रकारकी अविनाशी खानो से भरी पडी है। क्या समस्त यादवो और भोजवशियो के क्षय हो जानेसे अपने को वन्धु रहित समझकर तू मोह को प्राप्त हो गया है? ऐसा करना उचित नही है। मै और आप जीवित रहे, तो समझो कि हमारे सव भाइयो का समूह जीवित है। तुम सदा मुझे देखते रहते थे, फिर भी तुम्हे तृप्ति न होती थी। पर आज तुम मेरी ओर देखते भी नही। मैंने मूर्खता से पानी लेने जाने के कारण अपने रत्नसदृश भाई को खो दिया। मेरे रहते तुझे हरनेवाला, मारनेवाला कौन था? तू कसके क्रोध और जरासध के यशको चकनाचूर करनेवाला था, पर खेद है कि आज तू स्वय नही रहा। आज सूरज भी तुझे निद्रामे डूबा देखकर तेरे प्रति शोक प्रकट करता हुआ अपनी किरणो को सिकोडकर अस्ताचल की ओट मे चला गया है। सभी प्रकृति तेरे शोक मे निमग्न है, रुदन कर रही है। हे देव! अव बहुत मत सोओ। सूर्य अस्त हुआ, सन्ध्या भी गई, अव रात हो गई है। हे भाई! यह वन तुम्हारे रहने लायक नही है। यहा अनेक पापी जीव फिरते है, यहा कुशब्द हो रहे हैं। इसलिए यहा से चलकर किसी और दूसरे सुन्दर स्थान मे जाकर रात व्यतीत करे। यहां वन के दुष्ट मासभक्षी जीव गिद्ध, कव्वे और गीदड इत्यादि विचर रहे है। तुम सुन्दर महलो मे रहते थे, राजा लोग तुम्हारे दर्शनो की प्रतीक्षा करते थे, प्रात गीत तथा सगीत होने पर तुम उठते थे। पर आज तुम्हे क्या हो गया है?" इस प्रकार बलदेव विलाप कर रहा था।

गौतम गणधरने राजा श्रेणिक से कहा, "हे श्रेणिक ! बलदेवने वासुदेवसे अधिक मोह किया । दोनो भाई प्राणवल्लभ थे । पर बलदेव की सब बाते व्यर्थ गई । वह कृष्ण को छातीसे लगाये वन मे फिर रहा था । उसे विलाप करते बहुत से दिन-रात बीत गये । न खाना, न पीना और न सोना । वह कृष्ण के मृत शरीर को लिए फिरते रहे, पर कही शान्ति न मिली ।"

ग्रीष्म ऋतु गयी, वर्षा ऋतु आई । बादल गरजने और बरसने लगे । काली घटाओसे बिजली चमकने लगी । उसी समय वासुदेव की आज्ञानुसार जरत्कुमार भीलके भेषमे पाण्डवोके पास दक्षिण मथुरा गया और युधिष्ठरसे राजसभामे मिला । तब जरत्कुमारने युधिष्ठर आदि को द्वारिका दहन और प्रमादवश अपने द्वारा कृष्णके परलोक गमनके समाचारको रोकर सुनाया । उसने प्रमाण स्वरूप कृष्णकी दी हुई कौस्तुभमणि राजाको दिखाई । मणिको देखकर और कृष्णके वियोगका समाचार सुनकर युधिष्ठर आदि पाचो भाई विलाप करने लगे, क्योंकि कृष्णसे उनका बडा स्नेह था । उसी समय रनवासमे कुन्ती माता और पाचो भाइयोकी रानिया दहाड मार-मार कर रोने लगी । पाण्डवोंके घरके नर-नारी सभी विलाप करके कहने लगे, "हा प्रधान पुरुष ! महावीर ! हा ससारके कष्टोको दूर करनेवाले ! आप जैसे महा पुरुषोकी यह क्या दशा हुई ?" इस प्रकार उन्होने बहुत देर तक बार-बार रुदन किया ।

पाण्डव तो सनातन रीति-रिवाजोको जानते थे । रोना-चीखना बन्द होने पर उन्होने श्रीकृष्णको जला दिया । उन्होने जरत्कुमारको भीलका भेष छोड़कर राजकुमारोके वस्त्र पहननेको कहा । उन्होने उसे भी रोना धर्म छोड़कर श्रावकके व्रत धारण करनेको कहा । फिर वे सभी हलधर बलदेवको देखने चले । उनके साथ माता कुन्ती, द्रौपदी और उनके पुत्र भी थे । सेना भी उनके साथ थी । वनमे पहुँचकर उन्होने देखा, कि बलदेव तो कृष्णके मृतक शरीरको

उबटना मलकर स्नामे करा रहा है और आभूषण पहना रहा है। वे बलदेवको छातीसे लगाकर बहुत रुदन करने लगे। कुछ समय बीतनेपर माता कुन्ती और उनके पुत्रोंने बलदेवको दाह-सस्कार करनेको कहा। पर बलदेवने कृष्णके मृत शरीर को न दिया, उल्टा कुपित होकर कुछ-कुछ कहने लगा। उसने उन्हे कृष्ण-को स्नान कराने और उसके लिए भोजन तैयार करनेको कहा। सब कुछ जानते हुए और बलदेवके कामोको व्यर्थ समझते हुए भी पाण्डवोने बलदेवकी आज्ञाका पालन किया और समस्त वर्षाकाल वही वनमे उसके पास रहे।

बरसात बीत गई। शीत ऋतु आ गई। वे सब वही वनमे बलदेव के पास रहे। श्रीकृष्णके जिस शरीरसे जीवित अवस्थामे सुगध आती थी, अब उससे महा दुर्गन्ध आने लगी।

अब बलदेवके प्रतिबुद्ध होनेका समय आ गया। तभी वहा सिद्धार्थ नामका सारथी भाई जो देव हो गया था और जिसने बल-देव को वचन दिया था, वहां आ गया। उसने बलदेवको प्रबुद्धकरने के लिए निम्नलिखित अनेक दृष्टान्त दिये।

पहले उसने एक ऐसा रथ दिखाया जो पर्वतके विषम मार्गपर आसानीसे चल सका पर चौरस मैदान मे आकर रुक गया और टूट गया। वह देव उस रथकी सन्धिको ठीक करने लगा, जोडने लगा। पर वे जुडती ही न थी। तब बलदेवने पूछा, "हे भाई! यह बडे आश्चर्यकी बात है, तेरा रथ पर्वतके विषम मार्गपर तो चल सका पर यहां मैदानमे आकर रुककर टूट गया और तेरे ठीक करनेपर भी ठीक नही होता। इसका खडा होना कैसे सम्भव है?" देवने उत्तर दिया, "हे बलदेव! जिस कृष्णका महाभारतमे बाल बाका नही हुआ, वह जरत्कुमारके बाण मात्र से नीचे गिर गया। अब इस जन्ममे इसका उठना कैसे सम्भव हो सकता है?" फिर देव

एक निर्जल शिला तलपर कमलिनी लगाने लगा। बलदेवने पूछा, "निर्जल शिला तलपर कमलिनी कैसे उग सकती है?" इसपर देवने कहा, "भला निर्जीव शरीरमे कृष्णकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?" फिर देव एक सूखे वृक्षको सींचने लगा। तब बलभद्र ने कहा, "कही सूखा वृक्ष भी पानी देनेसे हरा हुआ है?" देव ने उससे पूछा, "हे बलदेव! मृत कृष्णको स्नान कराने से क्या लाभ है?" फिर देव एक मृतक बैल को घास-पानी देने लगा। उसे देखकर बलदेवने पहले की तरह पूछा, "अरे मूर्ख! इस मृतक बैल को घास-पानी देने मे क्या लाभ होगा?" उत्तर मे देवने कहा, "मृतक कृष्णको आहार-पानी देने से जो लाभ हो सकता है, वही लाभ इस मरे बैलको घास-पानी देने मे हो सकता है। कितने आश्चर्य की बात है कि बडे आदमी अपनी भूल नही समझते, दूसरो की भूले तुरन्त देख लेते है।"

उस देवकी इन बातोंसे बलदेवकी आंखें खुल गईं। वह अपनी भूलको समझ गया। उसका झूठा मोहपाश टूट गया और वह समझ गया, कि कृष्ण तो परलोक गये। बलदेव कहने लगा, "मै व्यर्थ छह महीने कृष्णके मृत शरीरको लिए फिरता रहा। मै भूलसे समझता रहा कि मैं न था, तभी उनको बाण लगा। इस प्राणीका न कोई रक्षक है, न नाशक है। आयु कर्म सबका रक्षक है, आयु कर्मके क्षीण होते ही शरीरका नाश होता है। यह राज्य सम्पदा हाथीके कानके समान चंचल है। जहा संयोग है, वहा वियोग है, जीवन मरणके दुखसे भरा है। एक मोक्ष ही अविनाशी है। वही प्राप्त करने योग्य है।" इस प्रकार बलदेवने अपने वर्गके उस देवसे धर्मज्ञान और सच्चा विज्ञान प्राप्त किये।

इसके पश्चात् बलदेव, जरत्कुमार और पाण्डवोंने तुङ्गीगिरिके शिखरपर श्रीकृष्णका दाह संस्कार करके जरत्कुमारको राज्य दिया। बलदेवने संसारको क्षणभंगुर समझ कर इन्द्रिय सुखके त्यागका निश्चय करके

साथियोके साथ उसी पर्वत शिखरपर आश्रय लिया। अब उन्हे वैराग्य हो गया। वहा उस समय कोई मुनि नही था, जिससे वे दीक्षा लेते। उस समय पल्लव देश मे तीर्थकर नेमिनाथ विराजमान थे। अत बलदेवने पल्लव देशकी तरफ मुख करके नेमिनाथका स्मरण किया, उन्होने नमस्कार किया और उनकी शिष्यता स्वीकार की। फिर उन्होने अपने हाथोसे अपने सिरके केश उखाडे।

अब बलदेव महाव्रती बन गये। बलदेव शरीरसे अत्यन्त सुन्दर नही थे। जब वे आहारके लिए नगरमे गये, तो स्त्रियोकी विपरीत चेष्टाए देखकर उन्होने नगरमे आना ही छोड दिया और वनमे ही आहार लेनेकी प्रतिज्ञा की। वनके बाहर आहार लेने का भी त्याग कर दिया।

बलदेवके वैराग्य लेने पर पाण्डवोने जरत्कुमारके साथ अनेक राज कन्याओका विवाह कर दिया। फिर वे पाण्डव, माता कुन्ती और द्रौपदी आदि तीर्थकर नेमिनाथके दर्शनार्थ और सयम धारने के लिए पल्लव देश गये।

बलदेवने मुनि होकर घोर महातप करना शुरू कर दिया। ससारमे सिवाय आत्माके सब कुछ अनित्य या क्षणभगुर है। तन, धन, कुटुम्ब, ससारके सुख, राज्य, सम्पदा तथा सम्बन्ध आदि सब अनित्य हैं। इस जीवकी शरण या रक्षा करनेवाला कोई नही, धर्म ही उसकी शरण है। यह ससार रूपी चक्र अनादि कालसे भ्रमण करता है। कभी स्वामीसे सेवक बनता है और कभी स्वामी पिता पुत्र बन जाता है और पुत्र पिता। यह प्राणी अकेला मरता है। मैं (आत्मा) चेतन हू और शरीर अचेतन है। जब शरीर भी मुझसे भिन्न है, तब दूसरी वस्तुओसे भिन्नता क्यो न होगी ? अपना या पराया शरीर रक्त, वीर्य आदि मलीन पदार्थोसे बना है। इसलिए कौन पवित्र आत्मा इस अपवित्र शरीरसे वियोगके समय शोक करेगा

और सयोगके समय राग या प्रेम करेगा ? काया, वचन और मनके योगसे पुण्य और पाप कर्मका आगमन होता है। कर्मोके आगमनके बाद यह जीव उनमे बधकर ससारसे जन्मता-मरता है। कर्मोके आगमनको रोकना सवर कहलाता है। सद्गतिका मार्ग सवर ही है। फिर आये हुए कर्मोको क्षय करना आवश्यक है। कर्म अपना फल देकर समाप्त हो जाते है। पर सचित कर्मोको तपके द्वारा नष्ट करना कल्याणकारी है। यह लोक अनादि निधन है, इसका कोई कर्ता धर्ता नही है। इस ससारमे रत्नत्रय अर्थात् सच्चा विश्वास, सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र प्राप्त करना दुर्लभ है। कर्मकी प्राप्ति दुर्लभ है। समाधिमरण दुर्लभ है। धर्म ही मोक्षदाता है। इसके दस लक्षण उत्तम क्षमा, सत्य और अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, निगर्वता, निष्कपटता, पवित्रता, तप और सयम है। धर्मके त्यागसे जीव अनत दुःखोको पाता है। मुनि बलदेव हर समय इस प्रकारके विचारोका चिंतवन करने लगे। भाई श्रीकृष्णका जो मोह था, वह इन सद्विचारोमे दूर हो गया।

तप करने और मुनिव्रत निबाहने मे अनेक कष्टोका सामना करना पडता है, उन्हे शान्तिके साथ सहना पडता है। इन कष्टोको जीतना, उनमे जरा भी विचलित न होना, महान तपस्वीके लिए आवश्यक है। भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी, डास, मच्छर, नग्नता, अरुचिकर प्रसग, काम वासना, अप्रिय वचन, ताडन-तर्जन, याचक वृत्ति, अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति, रोग सहन और सत्कार मिलना या न मिलना आदि अनेक कष्ट है। इन सब कष्टोका मुनि बलदेव समभावसे सहन करने लगे। ऐसे अनेक कष्ट उनपर आये, पर उन्होने उनपर विजय पाई। इन परीषहो—कष्टो—की कल्पना मात्रसे ही आदमी काप उठता है। पर मुनि तो उन्हे बिना दुःख माने समभावसे सहते है। कहा महलोका राजसी सुख और कहा यह अनेक कष्टोसे भरी

मुनिचर्या ? तपके फल तककी इच्छा भी मुनिजन नही करते, किसी वस्तुकी कामना नही। बाह्य शारीरिक तपके साथ-साथ वे सभी प्रकारका आतरिक तप—प्रायश्चित्त, विनय, सेवा, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान—करने लगे। इस प्रकार विषय-कपायो आदि दोपोको जीत कर बलदेव दुर्द्धर कठोर तप करने लगे। वे तपस्वियोमे शिरोमणि बन गये।

ससारसे भयभीत महा पराक्रमी युधिष्ठर आदि पाचो पाण्डव, कुन्ती और द्रौपदी आदि श्री तीर्थंकर नेमिनाथके पास पल्लव देशमे गये। उस समय भगवान अपने समवसरण मे विराजमान थे। उन्होने समवसरणकी प्रदक्षिणा करके वडी विनयसे भगवान को नमस्कार किया। उन्होने भगवानके ज्ञानामृतका पान किया। फिर उन्होने श्री नेमिनाथसे अपने पूर्वजन्मो का वृत्तान्त पूछा। तब भगवानने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा उनके पूर्वजन्मो का वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् कहा कि युधिष्ठर, भीम और अर्जुन तीनो भाई इसी जन्ममे मोक्ष जायेगे और नकुल तथा सहदेव एक जन्मके वाद सिद्ध होगे अर्थात् मोक्ष जायेगे। और द्रौपदी सम्यग्दर्शनसे शुद्ध होकर तपके प्रभावसे स्वर्गमे देवी होगी, फिर वहांसे चयकर नरभव पाकर तप करके निरजन पद पायगी, मोक्ष जायगी। अपने पूर्व-जन्मोका हाल सुनकर पाण्डव ससारसे विरक्त हो गये और तभी तीर्थंकर नेमिनाथके पास सयम ग्रहण किया। माता कुन्ती, द्रौपदी, और सुभद्रा आदि अनेक रानियोने गुरुआणी राजमतीसे आर्यिका दीक्षा ली। वे साध्वियाँ बन गई। वे पाचो पाण्डव रत्नत्रयको अपना कर पाचो महाव्रत पालते हुए आत्म-स्वरूपका ध्यान करने लगे। वे महातप करने लगे और पदयात्रा करके विहार करने लगे। वडा उग्रतप था उनका। उन सब पाण्डवोने जो तप किया, वह उनसे ही होनेवाला अद्वितीय तप था और किसीके द्वारा इतना घोर कठोर

तप अशक्य था। युधिष्ठर आदि मुनियोने दो-दो तीन-तीन दिनके उपवास किये। मुनि भी तो बहुत ही शक्तिशाली थे। उन्होने मनमे सोचा कि यदि उन्हे भालेके अग्रभागपर आहार मिलेगा, तभी उसे ग्रहण करेगे। ऐसे आहारका सयोग छह महीनेतक नही बना। क्षुधाने उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। इस तपसे उनका हृदयका भ्रम दूर हो गया। ऐसे अपूर्व और महातपस्वी परिव्राजक थे वे पाण्डव!



श्री नेमिनाथ निर्वाण

सब देवोंके देव तीर्थंकर नेमिनाथजी उपदेश करते हुए उत्तरसे सुराष्ट्र देशकी ओर आये। उनका तेज पूर्ववत् सर्वत्र व्याप्त था। समवसरणकी विभूतिवाले नेमि जनेन्द्र जब दक्षिणमे विहार कर रहे थे, तव वहाँके देश स्वर्गके समान सुशोभित हो रहे थे। जब उनका अंतिम समय आया, तब निर्वाण कल्याणकी विभूतिको प्राप्त करनेवाले नेमिनाथ स्वय गिरनार पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ समवसरणको रचना हो गयी। वहाँ उन्होने स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके साधन सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य-रूप जिनधर्मका उपदेश दिया। यह उपदेश कोई एक महीने तक चलता रहा। धर्मोपदेश उनका स्वाभाविक गुण था। किसी की प्रेरणासे वे धर्मोपदेश नही देते थे। उन्होने सैकडों मुनियोके साथ निर्वाण प्राप्त किया, वे सिद्धलोक को सिधारे। सभी प्रकार के देव और इन्द्रोने इस निर्वाण कल्याणककी पूजा की। दिव्य-गन्ध और पुष्प आदि से पूजित तीर्थंकर आदिके शरीर मोक्ष जाते समय क्षण भरमें बिजलीके समान चमकते हुए आकाशमे विलीन हो जाते है। उनके शरीरके परमाणु अंतिम समय बिजलीके समान क्षण भरमे समाप्त हो जाते हैं। जव वहाँ उनका भौतिक शरीर नही रहा, तब इन्द्रादिने उनका मायामय शरीर वना कर उसका दाह-कर्म कर दिया।

समुद्रविजय आदि अन्य मुनि भी गिरनार पर्वतसे मोक्ष गये। इसलिए उस समयसे गिरनार पर्वत निर्वाण स्थानके रूपमे प्रसिद्ध हो गया, वह तीर्थराज बन गया।

जब पाचो पाडव मुनियोने श्री नेमिनाथके निर्वाणका समाचार सुना, तब वे शत्रुञ्जय पर्वत पर प्रतिमायोगसे विराजमान हो गये। उस समय वहाँ दुर्योधनके वंशका क्षुयवरोधन नामका कोई पुरुष रहता था। पर्वत पर पाण्डवोके आनेकी बात सुनकर पूर्व बैरके कारण उसने पाण्डवोको बडे कष्ट दिये। ऐसे कष्टोको उपसर्ग कहते है। उसने लोहेके मुकट, कडे और कटिसूत्र गर्म करके उन पाण्डव मुनियोको पहनाये। पाण्डव मुनि बडे धीर, वीर थे—वे बडे-से-बडा कष्ट सहन करने मे समर्थ थे। उन्होने समझा कि यह सब उनके कर्मोका फल है, और वे उनका क्षय करने मे समर्थ थे। उन्होने उन तपते हुए लोहेके मुकुट आदि को हिमके समान शीतल समझा। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तो उन कष्टोंको सहते हुए तपकर मोक्ष गये। परन्तु नकुल और सहदेव बडे भाइयोके कष्टो-को देखकर कुछ-कुछ आकुल चित्त हुए थे। इसलिए वे सर्वार्थ-सिद्धि गये। बहुतसे मुनि और नारद भी दीक्षा लेकर तप करके मोक्ष गये।

तुगीगिरिके शिखरपर बलदेवने भी ससार चक्रको तोडनेके लिए बडा घोर तप किया। कभी वे एक दिनका उपवास करते, कभी दो दिन का। कभी-कभी तीन दिनका, तो कभी पन्द्रह दिनका उपवास करते। यहा तक कि वह छह-छह महीनेका उपवास भी कर लेते थे। इस प्रकार उन्होने न केवल अपने शरीरको सुखाया, वरन् अपने क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोको भी जलाया और धैर्य को पुष्ट किया। पहले बताया जा चुका है, कि बलदेव मुनि आहार आदि के लिए नगर और ग्राम नहीं जाते थे। उन्हे वनमे ही आहार लेने की प्रतिज्ञा थी। पर वनमे आहार कहाँ ? उनकी उस प्रतिज्ञा की बात नगर-नगर और गाव-गाँवमे फैल गयी। समीपवर्ती राजा उस बातको सुनकर क्षुभित हुए और शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर बल-देवको मारने के लिए तैयार हो गये। उन राजाओंने मुनिके चरणोंके समीप सिंहोंके समूह को देखा। वे सिंह देव-रचित थे।

राजाओने अपने विचारको त्याग दिया और बलदेव मुनिको नमस्कार किया। तबसे बलदेव नरसिहके नामसे प्रसिद्ध हो गये। वास्तवमे उनका वक्षस्थल सिहके वक्षस्थलके समान चौडा था और वे सिहो द्वारा सेवित थे। उन्होने एक सौ वर्ष कठोर तप किया और चार तरह की आराधनाएँ की। वे स्वर्गमे ब्रह्मेन्द्र हुए। उन्हे अवधिज्ञान था। उन्होने भूत-भविष्यका सब हाल जान लिया। अपने अवधिज्ञानसे उन्होने कृष्णसे भेट की। दोनो आपसमे मिलकर बडे प्रसन्न हुए। श्रीकृष्णने बलदेवसे कहा कि हम दोनो तपके द्वारा कर्मोको नष्ट करके मोक्ष जायेगे। श्रीकृष्णने बलदेवसे कहा, "द्वारिका-दहन और यदुवशके क्षयसे जो लोकापवाद हुआ है, उसे दूर करनेके लिए तुम ऐसा काम करना कि भरत क्षेत्रमे शख, चक्र, गदा और पद्मादि से युक्त मेरी मूर्तियाँ स्थापित करो।" बलदेवने वैसा ही किया और फिर स्वर्ग चला गया। यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनायी।

महा प्रतापी राजा जरत्कुमारके राज्यमे प्रजा बहुत सुखी थी। उसने राजा कलिगकी पुत्रीसे विवाह किया, जिससे वसुध्वज नामका पुत्र हुआ, जो चन्द्रमाके समान प्रजाको प्यारा था। इसी वशमे भीमवर्मा राजा हुआ। उसके वशमे अनेक और राजा हुए। फिर उसी वशमे हरिवशका आभूषण राजा कपिष्ट हुआ। जिसके अजातशत्रु पुत्र हुआ। उसका पुत्र शत्रुसेन, पौत्र जितारसेन और प्रपौत्र जितशत्रु हुआ। गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे पूछा कि क्या वह राजा जितशत्रुको नही जानता? उस जितशत्रुसे तीर्थंकर महावीरके पिता सिद्धार्थकी छोटी बहनका विवाह हुआ था, जो महावीरकी बुआ थी।

जब महावीरका जन्म हुआ, तब जितशत्रु कुण्डलपुर गया और राजा सिद्धार्थने उसका बडा आदरमान किया। राजा जितशत्रुकी रानी यशोदमासे उत्पन्न यशोदा राजकुमारी थी। राजाकी उत्कट

इच्छा थी कि अपनी पुत्री यशोदाका विवाह महावीरसे हो जाय, परन्तु महावीरने विवाह करना अस्वीकार कर दिया, वे तपके लिए वनमे चले गये। केवलज्ञान प्राप्त करके महावीर विहार करने लगे। तब राजा जितशत्रु भी तप करने लगा। मुनि जितशत्रुने अपने तपसे केवलज्ञान प्राप्त किया और उससे उनका मनुष्य जन्म सफल हुआ।

इस प्रकार गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको यह लोक-प्रसिद्ध तथा त्रेसठ शलाका पुरुषोके पुराणपद्धतिसे सम्बन्ध रखनेवाली हरिवंशकी कथा संक्षेपमे कही।

राजा श्रेणिक इस पवित्र कथाको सुनकर बडा प्रसन्न हुआ और वह गौतम गणधरको नमस्कार करके अपने नगरको चला गया।

महामुनि जितशत्रु केवली भी संसारमे विहार करके कर्मबंधनसे मुक्त होकर मोक्ष गये। भगवान् महावीर भी जगत के नरनारियोंको अपना उपदेश देकर पावापुर नगरीमे पहुँचे और वहाँ के मनोहर उद्यानमे विराजमान हो गये। जब चतुर्थ कालमे तीन वर्ष साढे छह मास बाकी रहे, तब वे स्वाति नक्षत्रमे कार्तिकी अमावस्याके दिन प्रात कालके समय कर्मोको नष्ट करके सब बन्धन रहित होकर मोक्ष गये। उस समय सुर-असुरोके द्वारा जलाई हुई बहुत देदीप्यमान दीपकोंकी पंक्तिसे पावा नगरीका आकाश जगमगा उठा। राजा श्रेणिकने भी प्रजाके साथ तीर्थंकर महावीरके निर्वाण कल्याणकको पूजा की। तबसे भारतवर्षमे इस कल्याणककी स्मृतिके रूपमे यह निर्वाण उत्सव दीपमालिकाके रूपमे प्रतिवर्ष बडे उत्साह और हर्षसे मनाया जाता है और सभी नर-नारी भगवान्की पूजा करके निर्वाणपद प्राप्त करनेकी भावना करते है।

-: समाप्त :-